यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

ISSN 2231-1351

पदचिन्ह : बहुविषयक पीअर रिव्यूड एंड रेफेरीड जर्नल

Impact Factor: 8

Padchinha

February 2026 Volume: 15 Issue: 2

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

www.muditeducation.com/Padchinha

Impact Factor (IIFS): 8 ISSN 2231-1351
UGC Approved Journal No. 49359 (Old) यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

PADCHINHA

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

February 2026 Volume: 15 Issue: 2

EDITOR

DR. AJAY PARMAR

B-30/239 Nagavan, Lanka, Varanasi - 221005

CO-EDITOR

DR. PANKAJ KUMAR SINGH

Mudit Shiksha Sanstha, Trimurti Nagar

Wardha (Maharashtra) PIN Code - 442001

Contact: 9823696685 **E-mail: padchinha@muditeducation.com**

Note:

• The views expressed in the journal "Padchinha" are not necessarily the views of peer reviewing board or publisher. Neither any member of the peer reviewing board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings.

• All disputes are subject to Varanasi jurisdiction only.

www.muditeducation.com/Padchinha

संपादक-मंडल/ रेफेरीड बोर्ड

प्रो. प्रेमनारायण सिंह
निदेशक
अंतर विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षा केंद्र
बी. एच. यू. वाराणसी (उ. प्र.) पिन - 221005

प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
पूर्व अधिष्ठाता, संस्कृति विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. मनोज कुमार राय
एसोसिएट प्रोफेसर, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा
सहायक प्रोफेसर, मानविकी और भाषा संकाय
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी
(बिहार) पिन - 845401

डॉ. अनिल कुमार
वरीय सहायक प्राचार्य, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग
भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, पश्चिमी परिसर
पी.जी. सेंटर सहरसा, बिहार. पिन : 852201

डॉ. रणजीत कुमार
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
मौलाना मजहरूल हक अरबी व फारसी विश्वविद्यालय
पटना (बिहार) पिन - 800001

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
(सिक्किम) पिन - 737102

प्रो. अमरेन्द्र त्रिपाठी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(उत्तर प्रदेश) पिन - 211002

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.) – 221005

डॉ. निमिषा त्रिपाठी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर-सह-अध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, डोरण्डा महाविद्यालय, राँची

डॉ. राम मनोहर मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
अकबरपुर महाविद्यालय, अकबरपुर
कानपुर देहात (उ.प्र.) पिन : 209101

रवीन्द्र पाण्डेय
हिंदी विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर (उ. प्र.) पिन - 273009

सलाहकार समिति

डॉ. राजीव रंजन गिरि
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली – 110007

डॉ. रवेन्द्र राजपूत
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक-शिक्षा विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़
उत्तर प्रदेश. पिन - 202001

डॉ. निशीथ राय
सहायक प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन – 442001

पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी.- 30/239, नगवां, लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या आफसेट, 30, विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रित। संपादक : अजय परमार

UGC Approved Journal No. 49359 (Old) Impact Factor: 8
यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

पदचिन्ह PADCHINHA

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

फरवरी (February) 2026 वर्ष (Vol.): 15 अंक (Issue): 2

अनुक्रम

		पृष्ठ संख्या
	संपादकीय	
1.	श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में न्यायिक व्यवस्था और भ्रष्ट शासन : एक अध्ययन **_ओम प्रकाश _डॉ. अखिलेश कुमार**	1-5
2.	इतिहास लेखन में गुलबदन बेगम का महत्व : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन **_डॉ. रेनू देवी**	6-10
3.	अंबेडकर के आर्थिक विकास संबंधी विचारों और दृष्टिकोणों पर एक अध्ययन : आधुनिक भारत में प्रासंगिकता **_प्रो. विवेकानंद तिवारी**	11-15
4.	मानवाधिकार, लैंगिक असमानता और महिलाओं का मानसिक–शारीरिक स्वास्थ्य : एक अंतः विषयक विश्लेषण **_Dr. Upendra Kumar**	16-21
5.	भारतीय ज्ञान परंपरा में कला की विशेषताओं पर ग्रंथ **_राहुल यादव**	22-25
6.	Reflections on the work of non-party social movements A living joinery of Aruna Roy: The personal is political: An activist's memoir **_Randhir Kumar Gautam**	26-38
7.	आपातकाल के दौर में कुलदीप नैयर की पत्रकारिता पर आधारित एक अध्ययन **_डॉ संजीव कुमार _सिमरन चंद्राकर**	39-42
8.	Historical Analysis of United Bengal Movement and Influence of Shyama Prasad Mukherjee **_Dr. Alok Kumar _Swati Sharma**	43-48
9.	भारतीय स्थापत्य का उद्भव (नवपाषाण काल से प्राक मौर्य काल तक) **_डॉ. बृजेश रावत _शोभित कुमार पाण्डेय**	49-59
10.	इक्कीसवीं सदी का आदिवासी समाज : संघर्ष और संभावना (राणेन्द्र की कहानियों के विशेष संदर्भ में) **_सुसा राणा**	60-63
11.	अद्वैत वेदांत और 21वीं सदी का मनुष्य : आत्म की खोज या पहचान का संकट **_विष्णु कुमार _गौरव चौहान**	64-69
12.	Assessing The Impact of Government Disinvestment on Operational Efficiency of Balco **_Divyanshu Swarnkar _Dr. Ramesh Kumar Pandey**	70-77
13.	A Comparative Study on Quality of Life, Emotional Intelligence, and Academic Motivation among Rural & Urban Adolescents **_Geetam Mishra_Dr. Udayan Misra**	78-85
14.	किन्नर विमर्श के उपन्यासों का आलोचनात्मक एवं व्याख्यात्मक अध्ययन **_रजिता दूबे _प्रो.यशवंत कुमार वीरोदय**	86-89
15.	भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण **_डॉ. नीलिमा नागर**	90-95
16.	निर्गुण संत कविता का लोक अभिग्रहण **_संजय साव**	96-104
17.	ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा में अभिव्यक्त दलित चेतना के स्वर **_मनीष कुमार साव**	105-109
18.	तुलसीदास युगीन समाज **_प्रभाकर प्रकाश _प्रो. वज्रांग प्रताप केसरी**	110-113
19.	डिजिटल बैंकिंग और ग्रीन बैंकिंग के एकीकरण का उपभोक्ता व्यवहार पर प्रभाव **_अभिषेक ठाकुर**	114-118

UGC Approved Journal No. 49359 (Old) Impact Factor: 8
यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

पदचिन्ह PADCHINHA

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal
फरवरी (February) 2026 वर्ष (Vol.): 15 अंक (Issue): 2

20.	वेदांत दर्शन का हिंदी काव्य पर प्रभाव _**डॉ. कल्पना**	119-122
21.	लारा NTPC में रोजगार की संभावनाओं का विश्लेषण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन _**अंकित साव**	123-126
22.	डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नारीवादी दृष्टिकोण _**संजना यादव**	127-131
23.	मृदा नमी एवं तापमान का पौधों की वृद्धि पर प्रभाव : भौतिक एवं जैविक दृष्टिकोण पर आधारित अध्ययन _**डॉ. प्रियंका प्रसाद _मयंक कुमार**	132-136
24.	राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संघठनात्मक (शाखा रूपी) तंत्र का विश्लेषणात्मक अध्ययन _**डॉ चंदन कुमार _आलोक निरंजन शर्मा**	137-147
25.	वैदिक दर्शन, नैतिकता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता : मानवता के लिए नई दिशा _**डॉ. शालिनी सिंह**	148-150
26.	Effects of Surya Namaskar on Psychomotor Ability Depth Perception Between Kabaddi and Judo Players _**Digvijay Nath Yadav**	151-157
27.	किसान की कर्ज समस्या संदर्भ : अकाल में उत्सव _**डॉ. अनिता देवी**	158-160
28.	स्वामी विवेकानन्द जी के नारी विषयक विचार _**समीक्षा सिंह _डॉ. अभिलाष सिंह यादव**	161-164
29.	Importance of Menstrual Hygiene Management for Girls with Disabilities: An Exploratory Study _**Arshi _Dr. R. Jamuna**	165-170
30.	एकांत श्रीवास्तव की कविताओं में संवेदनशीलता और यथार्थवाद का चित्रण _**रवि शंकर आर्य**	171-176
31.	संस्कृत शिक्षण में श्रवण कौशल के विकास पर सहयोगात्मक अधिगम का प्रभाव _**जलि नायक**	177-180
32.	छत्तीसगढ़ में जनजाति विकास : सरकारी योजनाओं के प्रभाव का विश्लेषण _**दीपक कश्यप**	181-188
33.	मानवीय चेतना जागृति के प्रणेता 'संत रविदास जी' _**डॉ. तेजराम पाल**	189-193
34.	प्राचीनभारतीयज्ञानसंस्कृतेः विश्वव्यापिनी प्रवाहधारा; तक्षशीला-नालन्दा-विक्रमशीलानां ऐतिहासिकमीमांसा तथा अन्तर्राष्ट्रीयशिक्षाव्यवस्थायाः आधुनिकप्रासङ्गिकता _**उदयकर्मकारः**	194-200
35.	Holistic Educational Tradition in Ancient India and its Reflections in the Temple Architecture of Bengal _**Dr. Arijit Gupta**	201-206
36.	दामोदर खड़से के उपन्यासों में चित्रित नारी _**प्रणिता नासरे _डॉ. श्यामप्रकाश पाण्डे**	207-210
37.	दृश्यकाव्य में समवकार _**विवेकानंद**	211-214
38.	Notes For Authors	

संपादकीय

ज्ञान, विचार और शोध की निरंतर विकसित होती परंपरा में *पदचिन्ह* का फरवरी 2026 अंक आपके समक्ष अत्यंत गर्व और संतोष के साथ प्रस्तुत है। यह अंक अपने बहुआयामी स्वरूप, समसामयिक विषय-वस्तु तथा गंभीर अकादमिक दृष्टि के कारण विशेष महत्त्व रखता है। इसमें प्रकाशित शोध-पत्र साहित्य, इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षा, दर्शन, विज्ञान, महिला अध्ययन, जनजातीय विमर्श, पर्यावरण, स्वास्थ्य और भारतीय ज्ञान परंपरा जैसे विविध क्षेत्रों को समेटे हुए हैं। इस प्रकार यह अंक समकालीन बौद्धिक विमर्श का एक जीवंत दस्तावेज सिद्ध होता है।

इस अंक में साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों पर केंद्रित अनेक शोध-पत्र प्रकाशित हुए हैं। श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में न्यायिक व्यवस्था और भ्रष्ट शासन का अध्ययन समकालीन भारतीय व्यवस्था पर व्यंग्य और यथार्थ के माध्यम से गहन प्रश्न उठाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा में दलित चेतना, निर्गुण संत कविता का लोक अभिग्रहण, तुलसीदास युगीन समाज, एकांत श्रीवास्तव की कविताओं में संवेदनशीलता तथा दामोदर खड़से के उपन्यासों में नारी-चित्रण जैसे शोध-पत्र हिंदी साहित्य के सामाजिक सरोकारों को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार किन्नर विमर्श पर आधारित आलोचनात्मक अध्ययन समकालीन साहित्य में लैंगिक विविधता के प्रश्नों को गंभीरता से सामने लाता है।

इतिहास और राजनीतिक विमर्श से जुड़े शोध-पत्र इस अंक को विशेष वैचारिक गहराई प्रदान करते हैं। गुलबदन बेगम के इतिहास लेखन का महत्व, यूनाइटेड बंगाल आंदोलन और श्यामा प्रसाद मुखर्जी का प्रभाव, आपातकाल के दौर में कुलदीप नैयर की पत्रकारिता तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संगठनात्मक तंत्र का विश्लेषण—ये सभी शोध भारतीय इतिहास और राजनीति के विविध आयामों को समझने में सहायक हैं। भारतीय स्थापत्य के उद्भव पर आधारित अध्ययन नवपाषाण काल से प्राक्-मौर्य काल तक की सांस्कृतिक निरंतरता को उद्घाटित करता है।

सामाजिक न्याय, समावेशिता और लोकतांत्रिक मूल्यों से संबंधित शोध-पत्र इस अंक की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता हैं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के आर्थिक विकास संबंधी विचार, उनके नारीवादी दृष्टिकोण, मानवाधिकार और लैंगिक असमानता पर अंतःविषयक अध्ययन, तथा स्वामी विवेकानंद के नारी विषयक विचार—ये सभी लेख भारतीय समाज में समानता, न्याय और सशक्तिकरण के प्रश्नों को केंद्र में रखते हैं। साम्प्रदायिकता पर समाजशास्त्रीय विश्लेषण आज के समय में विशेष रूप से प्रासंगिक है, क्योंकि यह सामाजिक सौहार्द और राष्ट्रीय एकता के प्रश्नों से सीधा संबंध रखता है।

शिक्षा और मनोविज्ञान से जुड़े शोध-पत्र भी अत्यंत उपयोगी हैं। ग्रामीण और शहरी किशोरों के जीवन-स्तर, भावनात्मक बुद्धिमत्ता और शैक्षिक अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के विविध सामाजिक संदर्भों को स्पष्ट करता है। संस्कृत शिक्षण में श्रवण कौशल के विकास पर सहयोगात्मक अधिगम का प्रभाव, प्राचीन भारत की समग्र शिक्षा परंपरा और बंगाल की मंदिर स्थापत्य में उसकी झलक, तथा प्राचीन भारतीय

विश्वविद्यालयों—तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला—की ऐतिहासिक समीक्षा आज की शिक्षा प्रणाली के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

विज्ञान, स्वास्थ्य और खेल अध्ययन से जुड़े लेख इस अंक की समकालीनता को और अधिक सुदृढ़ करते हैं। मृदा नमी एवं तापमान का पौधों की वृद्धि पर प्रभाव कृषि-विज्ञान और पर्यावरणीय संतुलन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सूर्य नमस्कार का कबड्डी और जूडो खिलाड़ियों की मनोदैहिक क्षमता पर प्रभाव योग और खेल विज्ञान के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है। दिव्यांग बालिकाओं में मासिक धर्म स्वच्छता प्रबंधन पर आधारित अध्ययन सामाजिक स्वास्थ्य और समावेशी नीति की दिशा में उपयोगी योगदान है।

अर्थव्यवस्था और विकास से संबंधित शोध-पत्रों में BALCO पर विनिवेश के प्रभाव, डिजिटल बैंकिंग और ग्रीन बैंकिंग का उपभोक्ता व्यवहार पर प्रभाव, NTPC लारा में रोजगार की संभावनाएँ तथा किसान की कर्ज समस्या जैसे विषय शामिल हैं। ये शोध वर्तमान आर्थिक नीतियों, ग्रामीण संकट, औद्योगिक विकास और उपभोक्ता संस्कृति की जटिलताओं को समझने का अवसर प्रदान करते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा और दर्शन पर आधारित शोध-पत्र इस अंक की वैचारिक धुरी हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में कला की विशेषताएँ, अद्वैत वेदांत और 21वीं सदी का मनुष्य, वेदांत दर्शन का हिंदी काव्य पर प्रभाव, वैदिक दर्शन, नैतिकता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता, तथा संत रविदास जी की मानवीय चेतना—ये सभी अध्ययन भारतीय चिंतन को आधुनिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित करते हैं। यह विशेष उल्लेखनीय है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे समकालीन विषय को वैदिक नैतिकता के साथ जोड़ने का प्रयास भारतीय ज्ञान-परंपरा की जीवंतता को प्रमाणित करता है।

जनजातीय समाज और हाशिये के समुदायों पर केंद्रित शोध-पत्र भी इस अंक को समावेशी स्वर प्रदान करते हैं। इक्कीसवीं सदी के आदिवासी समाज की चुनौतियाँ और संभावनाएँ, छत्तीसगढ़ में जनजातीय विकास पर सरकारी योजनाओं का प्रभाव, तथा सामाजिक आंदोलनों पर अरुणा राय के कार्य का विश्लेषण—ये अध्ययन समाज परिवर्तन के वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत करते हैं।

समग्रतः *पदचिन्ह* का फरवरी 2026 अंक ज्ञान की विविध धाराओं का समन्वित रूप है। इसमें प्रकाशित शोध-पत्र न केवल अकादमिक उत्कृष्टता के मानकों को स्थापित करते हैं, बल्कि समाज, राष्ट्र और मानवता से जुड़े ज्वलंत प्रश्नों पर गंभीर संवाद भी प्रस्तुत करते हैं। हमें विश्वास है कि यह अंक शोधार्थियों, शिक्षकों, नीति-निर्माताओं और जागरूक पाठकों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगा।

अंत में, हम सभी लेखकों, समीक्षकों, संपादकीय सहयोगियों और पाठकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग से यह अंक संभव हो सका। आशा है कि *पदचिन्ह* का यह संस्करण ज्ञान-साधना की यात्रा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव सिद्ध होगा।

डॉ. पंकज कुमार सिंह

Received: 01.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में न्यायिक व्यवस्था और भ्रष्ट शासन: एक अध्ययन

ओम प्रकाश* **डॉ. अखिलेश कुमार†**

sarjuomprakash@gmail.com **drakhilesh369@gmail.com**

सारांश -

श्रीलाल शुक्ल का साहित्य अपनी तीखी व्यंग्य और भारतीय ग्रामीण जीवन, प्रशासन और शासन के यथार्थवादी चित्रण के लिए आधुनिक हिंदी लेखन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह अध्ययन शुक्ल की साहित्यिक कृतियों में न्याय प्रणाली और भ्रष्ट शासन के चित्रण की जांच करता है, विशेष रूप से राग दरबारी और अन्य चुनिंदा लेखन के संदर्भ में। यह पेपर बताता है कि शुक्ल स्वतंत्रता के बाद के भारत में नैतिक पतन, नौकरशाही हेरफेर और न्यायिक संस्थानों के राजनीतिकरण को कैसे उजागर करते हैं। विडंबना, हास्य और तीक्ष्ण कथात्मक अवलोकन के माध्यम से, शुक्ल न्यायपालिका को न्याय के एक स्वायत्त वितरक के रूप में नहीं, बल्कि शक्ति संरचनाओं, जाति पदानुक्रम और राजनीतिक संरक्षण से गहराई से जुड़ी एक इकाई के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह अध्ययन एक गुणात्मक पाठ्य विश्लेषण दृष्टिकोण अपनाता है ताकि यह उजागर किया जा सके कि कैसे कानूनी प्रक्रियाओं को निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए विकृत किया जाता है, जबकि आम नागरिक हाशिए पर और निराश रहता है। राजनीति, प्रशासन और न्यायिक प्रक्रिया के बीच सांठगांठ को सामने लाकर, शुक्ल लोकतांत्रिक आदर्शों और नैतिक शासन के क्षरण की आलोचना करते हैं। यह पेपर तर्क देता है कि शुक्ल की साहित्यिक आलोचना न्यायिक जवाबदेही और शासन सुधारों पर समकालीन चर्चाओं में प्रासंगिक बनी हुई है। अंततः, यह अध्ययन भारतीय समाज में संस्थागत भ्रष्टाचार पर सामाजिक आलोचना और नैतिक चिंतन के लिए एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में साहित्य की भूमिका को रेखांकित करता है।

बीज शब्द:- *श्रीलाल शुक्ल, भ्रष्टाचार, साहित्यिक, व्यंग्यात्मक, साहित्य*

न्यायपालिका और शासन के बीच संबंध भारतीय सामाजिक-राजनीतिक विमर्श में एक केंद्रीय चिंता का विषय रहा है, खासकर श्रीलाल शुक्ल आम नागरिकों पर न्यायिक भ्रष्टाचार के मनोवैज्ञानिक प्रभाव पर भी ज़ोर देते हैं। अन्याय के बार-बार संपर्क में आने से निराशा, डर और हार मानने की भावना पैदा होती है। शुक्ल की कहानियों में लोग शायद ही कभी न्याय की उम्मीद करते हैं; इसके बजाय, वे शोषण और अपमान की उम्मीद करते हैं। संस्थानों में भरोसे में इस कमी के लोकतांत्रिक समाज के लिए गंभीर परिणाम होते हैं, क्योंकि नागरिक कानूनी प्रक्रियाओं से दूर हो जाते हैं और संघर्षों को सुलझाने के लिए अनौपचारिक या गैर-कानूनी तरीकों का सहारा लेते हैं। ऐसे चित्रणों के माध्यम से, शुक्ला यह बताते हैं कि भ्रष्ट शासन न केवल संस्थानों को नुकसान पहुंचाता है बल्कि सामाजिक चेतना को भी नया आकार देता है।

शुक्ला के साहित्य में न्याय प्रणाली जातिगत गतिशीलता से और भी उलझी हुई है। सामाजिक पदानुक्रम कानूनी परिणामों को तय करने में निर्णायक भूमिका निभाता है। उच्च जाति और प्रभावशाली व्यक्ति आसानी से कानून में हेरफेर करते

* **शोधार्थी, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ**

† **शोध निर्देशक एवं असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग**
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

हैं, जबकि निचली जाति और हाशिए पर पड़े समूहों को व्यवस्थित भेदभाव का सामना करना पड़ता है। शुक्ला इस भेदभाव को असाधारण के रूप में चित्रित नहीं करते हैं; बल्कि, यह शासन के कामकाज में सामान्य हो गया है। अदालतें और पुलिस स्टेशन सामाजिक शक्ति के विस्तार बन जाते हैं, जो वैधता की आड़ में मौजूदा असमानताओं को मजबूत करते हैं[1]। राग दरबारी से परे, श्रीलाल शुक्ला की अन्य रचनाएँ, जैसे सीमाएँ टूटती हैं, मकान, और उनके व्यंग्यात्मक निबंध, शासन और संस्थागत क्षय की इस आलोचना को जारी रखते हैं। ये लेखन विश्लेषण के दायरे को गाँव से आगे बढ़ाकर शहरी प्रशासन और राष्ट्रीय राजनीति को शामिल करते हैं। शैलियों में, शुक्ला लगातार यह उजागर करते हैं कि कानूनों को कैसे बनाया जाता है, उनकी व्याख्या की जाती है, और अभिजात वर्ग के हितों की सेवा के लिए लागू किया जाता है। न्यायपालिका, एक सुधारात्मक शक्ति के रूप में कार्य करने के बजाय, अक्सर प्रक्रियात्मक औपचारिकता के माध्यम से अन्याय को वैध बनाती है।

शुक्ला का भ्रष्ट शासन का चित्रण सिर्फ़ व्यक्तिगत नैतिक विफलता तक सीमित नहीं है; यह एक सिस्टमैटिक समस्या है। वह सुझाव देते हैं कि भ्रष्टाचार शासन की संरचना में ही गहराई से जुड़ा हुआ है, जिसे राजनीतिक प्रोत्साहनों और सामाजिक मिलीभगत से बढ़ावा मिलता है। इस संदर्भ में, न्यायिक भ्रष्टाचार सिर्फ़ रिश्वतखोरी के बारे में नहीं है, बल्कि न्याय को जानबूझकर बिगाड़ने के बारे में है। देरी, तकनीकी बारीकियों और विवेकाधीन शक्तियों का इस्तेमाल मुक़दमेबाज़ों को थकाने और ताक़तवर लोगों को बचाने के लिए किया जाता है। यह संरचनात्मक आलोचना शुक्ला को उन लेखकों से अलग करती है जो सिर्फ़ व्यक्तिगत अनैतिकता पर ध्यान केंद्रित करते हैं[2]।शुक्ला की साहित्यिक आलोचना का एक महत्वपूर्ण आयाम इसका ऐतिहासिक संदर्भ है। आज़ादी के बाद के दशकों में लिखते हुए, शुक्ला उस मोहभंग को दर्शाते हैं जो आज़ादी के बाद के शासन के अपने वादों को पूरा करने में विफलता के बाद हुआ था। न्यायपालिका, जिसे लोकतंत्र का एक स्तंभ माना जाता था, उन्हीं ताक़तों से प्रभावित दिखती है जिन्होंने औपनिवेशिक प्रशासन को भ्रष्ट किया था। इस प्रकार शुक्ला का साहित्य भारतीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण क्षण को दर्शाता है जब संस्थानों में विश्वास लगातार कम हो रहा था। श्रीलाल शुक्ला द्वारा न्याय प्रणाली के चित्रण की प्रासंगिकता समकालीन भारत तक फैली हुई है। न्यायिक देरी, राजनीतिक हस्तक्षेप, भ्रष्टाचार और न्याय तक पहुँच की कमी जैसे मुद्दे आज भी चिंता का विषय बने हुए हैं। शुक्ला की रचनाएँ, हालांकि दशकों पहले लिखी गई थीं, न्यायिक जवाबदेही और शासन सुधार पर आज की बहसों से मेल खाती हैं। उनका साहित्य इस बात की याद दिलाता है कि भ्रष्टाचार सिर्फ़ एक कानूनी समस्या नहीं है, बल्कि एक सांस्कृतिक और नैतिक समस्या भी है, जिसके लिए सामाजिक आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता है।

कार्यप्रणाली के दृष्टिकोण से, यह अध्ययन शुक्ला के साहित्य को कानून और साहित्य के ढांचे में रखता है, जो एक अंतर-विषयक दृष्टिकोण है जो यह जाँचता है कि साहित्यिक ग्रंथ कानूनी संस्थानों को कैसे दर्शाते हैं, उनकी आलोचना करते हैं और उनकी पुनर्कल्पना करते हैं। साहित्य कानून के जीवित अनुभव में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है जिसे अकेले कानूनी ग्रंथ नहीं पकड़ सकते। शुक्ला की कहानियाँ न्यायिक भ्रष्टाचार के भावनात्मक, सामाजिक और नैतिक आयामों को उजागर करती हैं, जिससे वे औपचारिक संरचनाओं से परे शासन को समझने के लिए अमूल्य बन जाती हैं। इसके अलावा, शुक्ला द्वारा व्यंग्य का उपयोग उन्हें राजनीतिक व्यंग्य की वैश्विक परंपरा से जोड़ता है, फिर भी उनका काम अपने विषयों और सेटिंग्स में विशिष्ट रूप से भारतीय बना हुआ है। न्यायपालिका का उनका चित्रण अमूर्त नहीं है, बल्कि रोज़मर्रा के अनुभवों पर आधारित है पुलिस शिकायतें, अदालती सुनवाई, कानूनी नोटिस और नौकरशाही अनुष्ठान। ये ठोस विवरण उनकी आलोचना की विश्वसनीयता को बढ़ाते हैं और पाठकों को परिचित वास्तविकताओं को पहचानने की अनुमति देते हैं[3]।

वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि श्रीलाल शुक्ला न्याय प्रणाली को भ्रष्ट शासन के शिकार और एजेंट दोनों के रूप में कैसे प्रस्तुत करते हैं। जबकि न्यायपालिका को समझौतावादी दिखाया गया है, इसे सत्ता संरचनाओं को बनाए रखने में मिलीभगत के रूप में भी चित्रित किया गया है। यह दोहरापन शुक्ला के साहित्य में एक मुख्य तनाव पैदा करता है। यह अध्ययन उन प्रमुख घटनाओं, पात्रों और कथा रणनीतियों की जांच करेगा जो इस तनाव को दर्शाती हैं, जिसमें राग दरबारी पर विशेष ज़ोर दिया जाएगा। शुक्ला की रचनाओं में न्यायपालिका और शासन के मेल पर ध्यान केंद्रित करके, यह शोध हिंदी साहित्य आलोचना और सामाजिक-कानूनी अध्ययनों में योगदान देना चाहता है। यह संस्थागत वास्तविकताओं और लोकतांत्रिक चुनौतियों को समझने के स्रोत के रूप में साहित्यिक ग्रंथों के महत्व को रेखांकित करता है। श्रीलाल शुक्ला का साहित्य केवल भ्रष्टाचार का चित्रण नहीं करता; यह शासन की नैतिक नींव पर सवाल उठाता है और पाठकों से संस्थानों और व्यक्तियों दोनों की नैतिक जिम्मेदारियों पर विचार करने का आग्रह करता है। श्रीलाल शुक्ला का न्यायिक प्रणाली और भ्रष्ट शासन के साथ साहित्यिक जुड़ाव स्वतंत्रता के बाद के भारतीय लोकतंत्र की एक शक्तिशाली आलोचना प्रस्तुत करता है।

व्यंग्य, यथार्थवाद और गहरी अवलोकन क्षमता के माध्यम से, वह यह उजागर करते हैं कि कैसे शक्ति, विशेषाधिकार और राजनीतिक हेरफेर द्वारा न्याय को कमजोर किया जाता है। उनकी रचनाएँ न्यायपालिका की आदर्श छवि को चुनौती देती हैं और पाठकों को संवैधानिक आदर्शों और सामाजिक वास्तविकताओं के बीच की खाई का सामना करने के लिए मजबूर करती हैं। इसलिए, इस विषय का गहन अध्ययन न केवल एक साहित्यिक जांच है, बल्कि भारत में शासन, न्याय और लोकतंत्र की एक महत्वपूर्ण परीक्षा भी है।

श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में न्याय व्यवस्था और भ्रष्ट शासन का महत्व और भविष्य की जागरूकता के लिए इसकी प्रासंगिकता

श्रीलाल शुक्ल आधुनिक हिंदी साहित्य में एक ऐसे लेखक के रूप में एक खास जगह रखते हैं, जिन्होंने तीखे व्यंग्य और यथार्थवादी वर्णन के ज़रिए भारतीय लोकतंत्र की कमियों को बहादुरी से उजागर किया। उनकी साहित्यिक रचनाएँ आज़ादी के बाद के भारत में शासन, प्रशासन और न्याय व्यवस्था के कामकाज की आलोचनात्मक जाँच करती हैं। भ्रष्टाचार से भरे शासन और समझौतावादी न्याय व्यवस्था का शुक्ल का चित्रण न केवल उनके समय का प्रतिबिंब है, बल्कि संस्थागत पतन और नैतिक गिरावट पर एक कालातीत टिप्पणी भी है। उनके साहित्यिक जुड़ाव का महत्व जागरूकता बढ़ाने, आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देने और आने वाली पीढ़ियों के लिए मूल्यवान सबक देने की क्षमता में निहित है। न्याय व्यवस्था, जिसे आदर्श रूप से कानून और समानता का संरक्षक माना जाता है, श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में एक ऐसी संस्था के रूप में उभरती है जो राजनीतिक शक्ति और सामाजिक पदानुक्रम में गहराई से उलझी हुई है। एक निष्पक्ष तंत्र के रूप में काम करने के बजाय, यह अक्सर भ्रष्ट शासन का विस्तार बन जाती है। उनकी रचनाओं में, खासकर राग दरबारी में, अदालतों, पुलिस और प्रशासनिक अधिकारियों को स्थानीय अभिजात वर्ग और राजनीतिक हितों के प्रभाव में काम करते हुए दिखाया गया है। कानूनी प्रक्रियाओं में हेरफेर किया जाता है, जानबूझकर देरी की जाती है, और न्याय केवल शक्ति और कनेक्शन वाले लोगों के लिए उपलब्ध एक विशेषाधिकार में बदल जाता है। इस चित्रण के माध्यम से, शुक्ल एक भ्रष्ट राजनीतिक ढांचे के भीतर कानूनी संस्थानों की कमज़ोरी को रेखांकित करते हैं[4]।

शुक्ल के साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक यह है कि उन्होंने दिखाया है कि न्याय व्यवस्था के भीतर भ्रष्टाचार कैसे सामान्य हो जाता है। उनके पात्र अन्याय पर हैरानी व्यक्त नहीं करते; इसके बजाय, वे इसे जीवन का एक अपरिहार्य हिस्सा मान लेते हैं। यह सामान्यीकरण एक गहरे सामाजिक संकट को दर्शाता है, जहाँ नैतिक मानदंड ढह जाते हैं और नागरिक उन संस्थानों में विश्वास खो देते हैं जो उनकी रक्षा के लिए बने हैं। शुक्ल का व्यंग्यात्मक लहजा इस स्वीकृति की बेतुकीपन को उजागर करता है, जिससे पाठकों को यह एहसास होता है कि अन्याय के प्रति उदासीनता उतनी ही खतरनाक हो सकती है जितनी कि भ्रष्टाचार खुद। भ्रष्टाचार को आकस्मिक के बजाय व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करके, शुक्ल पाठक को इसकी गहरी जड़ों वाली प्रकृति को पहचानने की चुनौती देते हैं।

श्रीलाल शुक्ल शासन और न्याय व्यवस्था के बीच परस्पर निर्भरता पर भी ज़ोर देते हैं। उनकी कहानियों में, राजनीतिक नेता, नौकरशाह, पुलिस अधिकारी और न्यायिक अधिकारी एक ऐसा गठजोड़ बनाते हैं जो सत्ता को बनाए रखता है और असहमति को दबाता है। शासन को सेवा-उन्मुख प्रणाली के रूप में नहीं, बल्कि नियंत्रण के तंत्र के रूप में चित्रित किया गया है। न्याय व्यवस्था, एक सुधारात्मक शक्ति के रूप में कार्य करने के बजाय, अक्सर प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं के माध्यम से अन्यायपूर्ण शासन को वैध बनाती है। यह चित्रण बताता है कि लोकतांत्रिक संस्थानों को भीतर से कैसे खोखला किया जा सकता है, भले ही वे वैधता का दिखावा बनाए रखें[5]।

शुक्ला के भ्रष्ट शासन के चित्रण की प्रासंगिकता आम नागरिकों के अनुभवों को दर्शाने में है। उनका साहित्य उन लोगों की निराशा, लाचारी और मोहभंग को दिखाता है जो अदालतों और प्रशासनिक कार्यालयों में जाते हैं और उत्पीड़न और शोषण का सामना करते हैं। गरीब और हाशिए पर पड़े लोग, खासकर, कानूनी संसाधनों और राजनीतिक प्रभाव तक पहुंच की कमी के कारण पीड़ित होते हैं। इस प्रकार, शुक्ला की रचनाएँ उन लोगों की आवाज़ बनती हैं जिन्हें औपचारिक न्याय से बाहर रखा गया है, और संस्थागत भ्रष्टाचार की मानवीय कीमत को उजागर करती हैं।

शुक्ला के साहित्यिक महत्व का एक और महत्वपूर्ण पहलू प्रतिरोध के साधन के रूप में व्यंग्य का उनका उपयोग है। हास्य और विडंबना उन्हें बिना नैतिकता का पाठ पढ़ाए या उपदेश दिए शक्तिशाली संस्थानों की आलोचना करने की अनुमति देते हैं। व्यंग्य भ्रष्टाचार के तंत्र को बढ़ा-चढ़ाकर और उसकी विरोधाभासों को उजागर करके उसे दृश्यमान बनाता है। पाठकों को

हंसने के लिए आमंत्रित किया जाता है, लेकिन हंसी अक्सर असहज होती है, क्योंकि यह समाज के बारे में दर्दनाक सच्चाइयों को उजागर करती है। यह कथा रणनीति यह सुनिश्चित करती है कि आलोचना आकर्षक और यादगार बनी रहे, जिससे सामाजिक जागरूकता पैदा करने की इसकी क्षमता बढ़ती है[6]।

भविष्य की प्रासंगिकता के दृष्टिकोण से, श्रीलाल शुक्ला का साहित्य लोकतांत्रिक समाजों में आत्मसंतुष्टि के खिलाफ एक चेतावनी के रूप में काम करता है। जिन मुद्दों को वे उजागर करते हैं -न्यायिक देरी, राजनीतिक हस्तक्षेप, नौकरशाही का अहंकार, और नैतिक मूल्यों का क्षरण - आज भी विभिन्न रूपों में मौजूद हैं। उनकी रचनाएँ भावी पीढ़ियों को याद दिलाती हैं कि लोकतंत्र केवल संवैधानिक प्रावधानों पर जीवित नहीं रह सकता; इसके लिए सतर्क नागरिकों और जवाबदेह संस्थानों की आवश्यकता होती है। भ्रष्ट शासन के तहत न्याय प्रणाली की विफलताओं का दस्तावेजीकरण करके, शुक्ला पाठकों को सत्ता पर सवाल उठाने और पारदर्शिता की मांग करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसके अलावा, शुक्ला का साहित्य नागरिक जिम्मेदारी पर व्यापक विमर्श में योगदान देता है। भ्रष्ट संस्थानों के उनके चित्रण के साथ सामाजिक मिलीभगत की एक निहित आलोचना भी है। भ्रष्टाचार न केवल शक्तिशाली व्यक्तियों के कारण पनपता है, बल्कि व्यापक स्वीकृति और चुप्पी के कारण भी। यह खुलासा करके कि आम लोग अन्याय का विरोध करने के बजाय उससे कैसे तालमेल बिठाते हैं, शुक्ला नैतिक जागरूकता और सामूहिक कार्रवाई के महत्व पर जोर देते हैं। यह संदेश विशेष रूप से भावी पीढ़ियों के लिए प्रासंगिक है जो शासन और सार्वजनिक जीवन की दिशा तय करेंगी।

शैक्षणिक और शैक्षिक संदर्भों में, श्रीलाल शुक्ला की रचनाएँ साहित्य, कानून और राजनीति के अंतर्संबंध को समझने के लिए मूल्यवान सामग्री प्रदान करती हैं। वे प्रदर्शित करते हैं कि साहित्यिक ग्रंथ सामाजिक वास्तविकता के वैकल्पिक अभिलेखागार के रूप में कैसे काम कर सकते हैं, उन अनुभवों को कैप्चर करते हैं जो अक्सर आधिकारिक रिकॉर्ड से अनुपस्थित होते हैं। उनके साहित्य का अध्ययन छात्रों और विद्वानों को सैद्धांतिक ढाँचों से परे न्याय, शक्ति और शासन जैसी अवधारणाओं के साथ आलोचनात्मक रूप से जुड़ने में सक्षम बनाता है। यह अंतःविषय प्रासंगिकता उनके काम के स्थायी महत्व को बढ़ाती है। निष्कर्ष के तौर पर, श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में न्याय व्यवस्था और भ्रष्ट शासन का महत्व आज़ादी के बाद के भारत में संस्थागत विफलता और नैतिक गिरावट पर उनकी ज़ोरदार आलोचना में निहित है। व्यंग्य और यथार्थवाद के ज़रिए, वह दिखाते हैं कि कैसे भ्रष्ट शासन न्याय व्यवस्था को कमज़ोर कर सकता है, जिससे बड़े पैमाने पर निराशा और असमानता फैलती है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि उनका साहित्य आलोचनात्मक सोच, नैतिक ज़िम्मेदारी और लोकतांत्रिक सतर्कता को बढ़ावा देकर भविष्य की जागरूकता के लिए प्रासंगिक बना हुआ है। श्रीलाल शुक्ल की रचनाएँ पाठकों को यह याद दिलाती रहती हैं कि न्याय सिर्फ़ एक कानूनी अवधारणा नहीं है, बल्कि समाज के स्वास्थ्य और लोकतंत्र के अस्तित्व के लिए ज़रूरी एक नैतिक आधार है।

निष्कर्ष

यह अध्ययन बताता है कि श्रीलाल शुक्ल का साहित्य आज़ादी के बाद के भारत में भ्रष्ट शासन के दायरे में काम करने वाली न्याय प्रणाली की एक शक्तिशाली और स्थायी आलोचना पेश करता है। व्यंग्य, यथार्थवाद और तीखे कथात्मक अवलोकन के माध्यम से, शुक्ल यह उजागर करते हैं कि न्याय बनाए रखने के लिए बनी संस्थाएँ अक्सर शक्ति, विशेषाधिकार और राजनीतिक हेरफेर का साधन कैसे बन जाती हैं। अदालतों, पुलिस और प्रशासनिक मशीनरी का उनका चित्रण कानून के शासन में एक व्यवस्थित विकृति को दिखाता है, जहाँ कानूनी प्रक्रियाओं में देरी की जाती है, हेरफेर किया जाता है, और सामाजिक न्याय के बजाय निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए चुनिंदा रूप से लागू किया जाता है। शुक्ल की रचनाएँ, विशेष रूप से राग दरबारी, यह दिखाती हैं कि न्याय प्रणाली के भीतर भ्रष्टाचार केवल व्यक्तिगत नैतिक विफलता का परिणाम नहीं है, बल्कि शासन और सामाजिक पदानुक्रम की संरचनाओं में गहराई से जुड़ा हुआ है। न्यायपालिका, एक स्वतंत्र और सुधारात्मक शक्ति के रूप में कार्य करने के बजाय, अक्सर असमान शक्ति संबंधों को बनाए रखने में शामिल दिखाई देती है। आम नागरिक, विशेष रूप से हाशिए पर पड़े लोग, शोषण, मोहभंग और निराशा के चक्र में फंसे रहते हैं, जो लोकतांत्रिक संस्थाओं में जनता के विश्वास के क्षरण को दर्शाता है[7]। शुक्ल की साहित्यिक आलोचना का महत्व इसकी निरंतर प्रासंगिकता में निहित है। जिन मुद्दों को वह उठाते हैं न्यायिक अक्षमता, राजनीतिक हस्तक्षेप, नौकरशाही भ्रष्टाचार और सामाजिक मिलीभगत - वे समकालीन शासन में केंद्रीय चिंताएँ बनी हुई हैं। साहित्य के माध्यम से इन वास्तविकताओं को चित्रित करके, शुक्ल

सामाजिक अनुभव को नैतिक जाँच में बदलते हैं, जिससे पाठक संवैधानिक आदर्शों और जीती-जागती वास्तविकताओं के बीच के अंतर पर सवाल उठाने के लिए मजबूर होते हैं। श्रीलाल शुक्ल का साहित्य न केवल संस्थागत पतन का दर्पण है, बल्कि जागरूकता, जवाबदेही और लोकतांत्रिक सतर्कता का आह्वान भी है। उनकी रचनाएँ साहित्य की भूमिका को एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में पुनः पुष्टि करती हैं जो अन्याय को चुनौती देने और शासन और न्याय प्रणाली की नैतिक जिम्मेदारियों पर चिंतन को प्रेरित करने में सक्षम है।

संदर्भ :-

[1] शुक्ला, श्रीलाल. (2014). *अंगद का पाँव*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 55–61, 98–104

[2] मिश्र, विद्यानिवास. (2008). *हिंदी साहित्य में व्यंग्य परंपरा*. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी. पृ. 245–258

[3] द्विवेदी, नंदकिशोर नवल. (2012). *हिंदी उपन्यास और सामाजिक यथार्थ*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 211–230

[4] साठे, एस. पी. (2003). *भारत में न्यायिक सक्रियता*. नई दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ. 67–75, 142–150

[5] साठे, एस. पी. (2003). *भारत में न्यायिक सक्रियता*. नई दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ. 142–150

[6] पांडेय, रामविलास. (2010). *हिंदी साहित्य और समाज*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 178–189

[7] शुक्ला, श्रीलाल. (2014). *अंगद का पाँव*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 55-61, 98-104.

अन्य संदर्भ -

शुक्ला, श्रीलाल. (2018). *राग दरबारी*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

शुक्ला, श्रीलाल. (2016). *सीमाएँ टूटती हैं*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

शुक्ला, श्रीलाल. (2015). *मकान*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

मिश्र, विद्यानिवास. (2008). *हिंदी साहित्य में व्यंग्य परंपरा*. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी.

सिंह, नामवर. (2009). *कहानी: नई कहानी*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

गुहा, रामचन्द्र. (2017). *गांधी के बाद का भारत*. नई दिल्ली: हार्पर कॉलिन्स इंडिया.

बक्सी, उपेन्द्र. (1982). *भारतीय कानूनी व्यवस्था का संकट*. नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस.

Received: 02.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

इतिहास लेखन में गुलबदन बेगम का महत्व : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. रेनू देवी*

renudevi150782@gmail.com

सारांश

भारतीय इतिहास में मुगल युग में इतिहास लेखन में वृद्धि हुई। विभिन्न प्रकार से ऐतिहासिक घटनाओं को लेखक व इतिहासकार लिपिबद्ध कर रहे थे, परन्तु स्त्री लेखक की संख्या अत्यन्त सीमित थी। उस युग में मात्र एक गुलबदन बेगम का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने हुमायूँनामा के माध्यम से न केवल अपने परिवार अपितु दरबार की विभिन्न गतिविधियों को इतिहास के पन्नों पर उकेरा, अपितु इतिहास लेखन की एक विशिष्ट परम्परा को भी स्थापित किया। यह शोध पत्र गुलबदन बेगम की इतिहास-लेखन स्वरूप, शैली, दृष्टिगत तथा ऐतिहासिक मूल्य का ऐतिहासिक साक्ष्य और सांस्कृतिक यर्थाथ का अनोखा संगम दृष्टिगत होता है। जिसमें मुगलकालीन समाज, नारी की स्थिति और राजकीय जीवन की वास्तविक झलक परिलक्षित होती है।

कुन्जी शब्द –

हुमायूँनामा, गुलबदन बेगम, बादशाह बाबर, हुमायूँ, सामाजिक, सांस्कृतिक, इतिहास, राजनीतिक दृष्टिकोण आदि।

इतिहास-लेखन किसी भी समाज का दस्तावेज होता है। भारत के मध्यकालीन इतिहास में जहाँ पुरुष इतिहासकारों में अबुल फजल, अब्दुल कादिर बदायूनी, निजामुद्दीन अहमद, इत्यादि का प्रभुत्व रहा वहीं महिला लेखन लगभग शून्य था। इसी पृष्ठभूमि में गुलबदन बेगम का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। वह बाबर की पुत्री तथा हुमायूँ की बहन एवं सम्राट अकबर की बुआ थी। एक महिला होने के बावजूद उन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक घटनाओं का ऐसा सजीव चित्र प्रस्तुत किया जो समसामयिक दरबारी इतिहासकारों से भिन्न और अधिक मानवीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। गुलबदन बेगम की कृति हुमायूँनामा या (अहल-ए-हुमायूँ बादशाह) मुगल युग के पारिवारिक और राजनीतिक जीवन की आत्मीय झांकी प्रस्तुत करता है। यह ग्रन्थ न केवल ऐतिहासिक दस्तावेज है, अपितु स्त्री दृष्टि से लिपिबद्ध किया गया एक अनूठा अनुभव भी है। इसी कारण इतिहास-लेखन में गुलबदन बेगम का योगदान अद्वितीय माना जाता है।

गुलबदन बेगम का जन्म 1523 ई. के लगभग काबुल में हुआ था। वह बाबर की पत्नी दिलदार बेगम से उत्पन्न तीसरी सन्तान थी। दो वर्ष की अवस्था में ही बाबर की विशिष्ट अथवा वरिष्ठ पत्नी माहम बेगम ने इन्हें दत्तक पुत्री के रूप में स्वीकार की थी। इनका लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा उन्हीं के संरक्षण में हुई थी।[1]

गुलबदन बेगम ने अपने जन्म के विषय में मात्र बाबर की पत्नियों एवं उनसे उत्पन्न सन्तानों के विषय में प्रकाश डाला है। वह लिखती है, कि फिरदौसी मकानी (बाबर) की सात पत्नियाँ थी जिसमें से दिलदार बेगम जो बाबर की चौथी पत्नी थी जिन्होंने पाँच सन्तानों को जन्म दिया जो क्रमशः गुलरंग बेगम, गुलचेहरा बेगम, मिर्जा हिन्दाल, गुलबदन बेगम और अलवर (इसकी आगरा में मृत्यु हो गई थी) आदि थे।[2]

* **इतिहास विभाग, डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ**

बाल्यावस्था से ही उन्होंने पिता के साथ अनेक राजनीतिक घटनाओं को देखा। वह मात्र छः वर्ष की अवस्था में माहम बेगम के साथ भारत की यात्रा की थी। यह लगभग 1529 ई. में आगरा शहर में प्रविष्ट हुई। भारत प्रवास का वर्णन इन्होंने किया है कि राणा सांगा के साथ युद्ध करने के उपरान्त लगभग एक वर्ष पश्चात् काबुल की बेगमों को फिरदौसी मकानी भारत बुलाया और उनके पहुँचने पर वह कितनी तत्परता से उनका स्वागत करने के लिए पग यात्रा करके ही उस स्थान पर पहुँच गए जहाँ मुगलशाही महिलाओं का काफिला ठहरा था।[3] बाबर की मृत्यु के उपरान्त इन्होंने भारत में मुगल साम्राज्य के उतार-चढ़ाव एवं हुमायूँ की निर्वास यात्रा तथा अकबर के आरम्भिक शासनकाल का अनुभव किया।

यह लगभग 1557 ई. में अकबर के शासनकाल में काबुल से पुनः भारत वापस आई और शासन की गतिविधियों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अकबर के आग्रह पर इन्होंने हुमायूँनामा ग्रन्थ का सृजन किया। लेखिका लिखती हैं, कि आज्ञा हुई कि जो कुछ वृतान्त फिरदौसी मकानी (बाबर) एवं जन्नत आशियानी का ज्ञात हो वह लिपिबद्ध किया जाए।[4] उन्होंने शाही आदेशानुसार ग्रन्थ का सृजन किया। हुमायूँनामा में लेखिका ने जिन घटनाओं का वर्णन किया है वह योजनाबद्ध है। वह ग्रन्थ का निर्माण दो खण्डों में किया है। प्रथम खण्ड में बाबर के समसामयिक विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला है और द्वितीय खण्ड में बादशाह हुमायूँ की तत्कालीन विभिन्न पक्षों को उल्लिखित किया है। हालांकि बाबर का इतिहास लेखक ने संक्षिप्त रूप से लिखा है, परन्तु हुमायूँ के जीवन चरित्र को बड़े ही मार्मिक ढंग से उकेरा है। बाबर के विषय में वह लिखती है, कि फिरदौसी मकानी ने अपना इतिहास अपनी आत्मकथा में लिपिबद्ध कर दिया है यहाँ जो उनसे सम्बन्धित इतिहास वर्णित किया जायेगा वह आशीर्वाद मात्र है।[5] हालांकि गुलबदन बेगम का हुमायूँनामा पारम्परिक ग्रन्थ नहीं है (इतिहास नहीं है) यह दरबारी वृतान्तों के अतिरिक्त आत्मीय संस्मरण के रूप में लिपिबद्ध किया है। इसमें घटनाओं का वर्णन तो क्रमानुसार है, परन्तु लेखिका का उद्देश्य सत्ता की प्रशंसा या राजनीतिक औचित्य सिद्ध करता नहीं, बल्कि मुगल राज परिवार के वृतान्तों को प्रस्तुत करना है।

इस ग्रन्थ में हुमायूँ का प्रारम्भिक जीवन उसका शासनकाल तथा भारत से उसका निष्कासन बाबर की स्मृतियाँ और उसके पुत्रों के मध्य उसका सम्बन्ध। हुमायूँ की ईरान यात्रा (निर्वासन) और पुनः भारत में सत्ता प्राप्ति। स्त्रियों की भूमिकाएँ विशेषकर मुगल परिवार की महिलाएँ जैसे हमीदाबानो बेगम, माहम बेगम, माहचूचक बेगम आदि अनेक ऐसी महिलाएँ हैं जिनका नाम गुलबदन बेगम के इतिहास में दर्ज है। पारिवारिक प्रेम, ईर्ष्या, स्नेह और संघर्ष की झलकियाँ विद्यमान हैं। गुलबदन बेगम द्वारा लिपिबद्ध किया गया ग्रन्थ मात्र राजनीतिक घटनाओं का नहीं बल्कि मानवीय सम्बन्धों, भावनाओं और महिलाओं की विभिन्न गतिविधियों को बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

इतिहास लेखन का राजनीतिक पक्ष –

राजनीतिक इतिहास में लेखक ने बाबर के राज्य-रोहण से प्रारम्भ करके (फरगना काबुल) हुमायूँ के भारत में शेरशाह के मध्य संघर्ष एवं उसके ईरान यात्रा का विवरण प्रस्तुत करती है। बाबर के राज्य रोहण के विषय में लिपिबद्ध किया है, कि साहिब किरानी के समय से फिरदौसी मकानी (बाबर) तक भूतपूर्व राजाओं में से किसी ने उनके समान परिश्रम नहीं किया होगा। वह बारह वर्ष की अवस्था में बादशाह हुए और रमजान 909 हि. (909 हि0 दस वर्ष की अशुद्धि है। 899 हि. होना चाहिए)[6] अन्दजान नगर में जो फरगना की राजधानी थी अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और ग्यारह वर्ष तक इन्होंने मावरून्नतर प्रान्तों में चंगताई तैमूरी और उजवेगों के साथ इतने युद्ध किए और अनेक प्रकार के संकट झेले कि लेखनी की जिभ्या उनके वर्णन में अयोग्य और असमर्थ है। राज्य प्राप्त करने में जितना परिश्रम और कष्ट उन्होंने उठाया था उतना कम मनुष्यों ने उठाया होगा जितनी वीरता व पुरुषार्थ और धैर्य इन्होंने युद्धों और कष्टों में दिखाया उतना कम बादशाहों के सम्बन्ध में वर्णित किया गया।[7]

लेखक ने बाबर से सम्बन्धित भेरा, समरकन्द, अफगानिस्तान काबुल तथा भारत के पानीपत के प्रथम युद्ध के अतिरिक्त चन्देरी और अन्य संघर्ष के विषय में लिखा है, कि कैसे उसकी सेना जब राणा सांगा से पराजित होकर विचलित होने लगी थी तब अनेक प्रयासों से सेना को पुनः रोपित करने का काम किया था। भारत के प्रथम विजय के सम्बन्ध में वह प्रकाश डालती है, कि इस विजय में फिरदौसी मकानी ने पांच राजाओं का खजाना प्राप्त किया था जिसको काबुल में रह रहे सम्बन्धियों एवं शाही परिवारों में वितरण किया था।[8] उसने बाबर की मृत्यु पर प्रकाश डालते हुए राजकुमार हुमायूँ के सिंहासन रोहण की

गतिविधियों को रेखांकित किया है। वह लिखती है, कि जब बादशाह की मृत्यु हुई तो सभी को बड़ा आघात पहुँचा उसकी मृत्यु के समाचार दरबार से बाहर नहीं जाने दिया गया था। अन्ततः आराइश खाँ नामक हिन्दुस्तान के एक अमीर ने प्रार्थना की, कि इस बात को छिपाना ठीक नहीं है क्योंकि हिन्दुस्तान में यह प्रथा है कि जब बादशाह की मृत्यु होती है तो बाजार (अन्य राज्यों के विरोधी) घुसकर लूट मचाते हैं यह सही होगा कि एक आदमी को लाल वस्त्र धारण कराकर हाथी पर बैठाकर साम्राज्य में यह संदेश दिया जाय कि बादशाह अब दरवेश हो गए है और राज्य का उत्तरदायित्व हुमायूँ को दे दिया है। उसी माह की 9 तारीख शुक्रवार को हुमायूँ बादशाह गद्दी पर बैठा (30 दिसम्बर 1530 ई.)[9] लेखक ने हुमायूँ एवं शेरशाह के मध्य हुए विभिन्न संघर्षां पर प्रकाश डाला है जिसमें बंगाल अभियान और कन्नौज युद्ध प्रमुख है। हालांकि कन्नौज युद्ध के समय वह भारत में उपस्थित नहीं थी फिर भी उसने सटीक वर्णन किया है। लेखक के सूचना सूत्र मजबूत थे। उसने सम्राट अकबर के सिंहासन रोहण के एक वर्ष पश्चात् (1557 ई.) भारत में पुनः प्रविष्ट किया और दरबारी विभिन्न गतिविधियों में अपना योगदान दिया।

इतिहास लेखन का सांस्कृतिक पक्ष –

हुमायूँनामा में ऐसी अनेक तत्कालीन गतिविधियों का वर्णन प्राप्त है जो समसामयिक गतिविधियों को उजागर करती है। मुगलकालीन शासन के अन्तर्गत भारत में सांस्कृतिक गतिविधियों का बहुमुखी विकास हुआ। वास्तुकला, चित्रकला, साहित्य और संगीत जैसे क्षेत्रों में जिन परम्पराओं को स्थापित किया गया वह आगामी पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुई। मुगल युग के सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के सम्बन्ध में अनेक स्रोत उपलब्ध है, परन्तु गुलबदन बेगम के हुमायूँनामा में इन महत्वपूर्ण स्रोतों में मूल्यवान है जिसमें तत्कालीन समाज, संस्कृति, परम्पराओं आदि की निरन्तरता उनके स्वरूप के विषय में वृतान्त प्राप्त होता है। लेखक ने मुगलकालीन समाज में प्रचलित बहुपत्नि, बहुविवाह, बाल-विवाह, तलाक जैसी कुप्रथाओं का वर्णन किया है। सामाजिक दृष्टि से हिन्दू तथा मुस्लिम वर्ग थे जिसमें मुख्यतः मुस्लिम तत्कालीन शासक वर्ग था। मुस्लिम वर्ग भी निम्न और उच्च वर्ग में विभक्त था जो सामाजिक ढाँचे का मूल आधार था। लेखिका ने समाज के विभिन्न गतिविधियों को रेखांकित किया है जैसे खान-पान, नीति-नियम परम्पराएँ जातियाँ एवं उपजातियाँ समाज के उस निचले तबके जो कामगार परम्परा से सम्बन्धित था। प्रथाएँ, वैवाहिक प्रसंग, पुरुष एवं महिला का सामाजिक स्तर, मनोरंजन के साधनों, इमारतों, नदियों व विभिन्न अवसरों पर आयोजित उत्सव आयोजनों को बड़े ही रोचक ढंग से वृतान्तित किया है। लेखिका ने बहुविवाह व बहुपत्नियों के सन्दर्भ में लिखा है, कि बादशाह बाबर की छः पत्नियाँ थी और हुमायूँ की चार पत्नियाँ थी।[10]

वह दरबारी विभिन्न गतिविधियों में उत्सवों आयोजन पर बड़े ही विस्तार से चर्चा की है उसने दरबार में आयोजित किए गए उत्सव जिसमें विभिन्न साज-सज्जा तथा दावतों का वर्णन किया है। उसने महिलाओं तथा पुरुषों के मध्य सम्बन्धों की भी चर्चा की है। वह लिखती है, कि जिस समय भारत में मुगल सत्ता स्थापित हुई थी उसी समय काबुल से भारत में प्रविष्ट हुए शाही परिवार को महिलाओं के निवास हेतु बाबर ने उचित प्रबन्ध किए और भवन निर्माण भी कराए। वह शाही घराने की महिलाओं से प्रत्येक शुक्रवार को भेंट करने जाया करता था, परन्तु एक दिन अत्यधिक गर्मी के कारण माहम बेगम ने उसे बाहर न जाने का आग्रह किया कि गर्मी अधिक है, परन्तु उन्होंने बेगम की उपेक्षा की और उन परिवारों से भेंट करने गए जिससे लेखिका ने यह प्रकाशित करने का प्रयास किया है, कि बाबर एक कर्तव्य परायण व्यक्ति था जो विषम परिस्थितियों में भी अपने कर्तव्यों को भी नहीं भूलता था। वह सभी को संगठित रखने में विश्वास रखता था।[11] वह आगरा में हुए उत्सव के विषय में लिखती है, कि यह आयोजन हुमायूँ के राज्य-रोहण के उपलक्ष्य में कराया गया था जो बादशाह की माता माहम बेगम ने कराया था। उसके उपलक्ष्य में विभिन्न प्रकार से दरबार, मार्ग, तालाब तथा अन्य स्थानों को सुसज्जित किया गया था। नाना प्रकार के सज्जा युक्त सामग्रियों को स्थापित किया गया था। दरबार में लगे मण्डपों को विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे कपड़ों एवं झालरों से सुसज्जित किया गया था। गुलबदन बेगम ने बताया है, कि जो मण्डपों में सज्जा हेतु कपड़ा लगाया गया था उसमें विशेष को गुजरात से निर्यात किया गया था। उसने रेखांकित किया है, कि भारत में प्रथम बार आइन-ए-बन्दी (सज्जा प्रथा) मुगल युग में प्रचलन में हुई।[12] इस अवसर पर विभिन्न प्रकार के सेवादारों एवं अन्य सम्बन्धियों को उपहार भी वितरण किए गए

थे। जिसका उल्लेख प्राप्त होता है। अतः उपरोक्त विवरण जो दरबार की आन्तरिक गतिविधियों को प्रकाशित करता है जिस पर मात्र एक महिला लेखक लेखनी कर सकती है पुरुष वर्ग इतिहासकार उक्त बिन्दुओं पर विशेष बल नहीं दिया है। यद्यपि गुलबदन बेगम के ग्रन्थ से मुगलकालीन पारम्परिक सांस्कृतिक एवं अनुष्ठानों का बोध होता जो कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण भी है। लेखिका ने हुमायूँ तथा मिर्जा हिन्दाल के विवाह समारोहों का बड़ा ही मार्मिक विवरण प्रस्तुत किया है। वह लिखती है, कि विवाह के विभिन्न कार्यक्रम में अन्य लोगों की भांति बादशाह हुमायूँ ने भी तत्कालीन रीति-रिवाजों में हिस्सा लिया था। विवाह संस्कार में उसके समीप बैठकर मुगल घराने की विशिष्ट महिलाओं ने पंक्तिबद्ध होकर भाग लिया जिसका रेखांकन सूचीबद्ध के साथ प्राप्त होता है।[13] वह यह भी उल्लिखित करती है, कि ऐसा वैवाहिक उत्सव बादशाह की किसी भी सन्तान का नहीं हुआ जैसा मिर्जा हिन्दाल का हुआ था।[14] हुमायूँनामा से हमें ऐसे अनेक तत्कालीन मनोरंजन से सम्बन्धित वृतान्त प्राप्त हुए है जो तत्कालीन रंग-मंच को प्रदर्शित करते हैं। जिसमें मुख्यतः खेल आखेट नाव की सैर करना, चौगान खेलना, ताश के पत्तों का खेल, मेला, बाजार इत्यादि है जो मुगल युग के वैभव युक्त जीवन को दर्शाते हैं।

गुलबदन बेगम का लेखन मुगल काल के सामाजिक इतिहास को समझने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है जिसमें राजपरिवार की आन्तरिक संरचना आदि। उन्होंने भाई-बहनों पत्नियों माताओं और दासियों के मध्य सम्बन्धों की जटिलताओं को उभारा है जिससे राजपरिवार के मानवीय पक्षों की झलक दृष्टिगत होती है। महिला शिक्षा विशेष रूप से शाही बालिकों के लिए शिक्षा के उचित प्रबन्ध किए जाते थे। महिलाएँ शिक्षित बुद्धिमान और सामाजिक जीवन में सक्रिय थी। वे राजनीति धर्म और सांस्कृतिक गतिविधियों में भी भूमिका निभाती थी। उनके वर्णन से यह ज्ञात होता है, कि मुगल समाज में विभिन्न धर्मां तथा संस्कृतियों के प्रति एक सहिष्णु वातावरण था।

यद्यपि हुमायूँनामा को गुलबदन बेगम ने फारसी भाषा में लिपिबद्ध किया जो उस समय की दरबारी भाषा थी। उनकी भाषा सरल, स्वाभाविक और भावपूर्ण है। उसमें किसी भी प्रकार की चाटुकारिता नहीं है। उनकी शैली में सजीवता और स्वाभाविकता संवादात्मकता, मानवीय संवेदना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

हुमायूँनामा का ऐतिहासिक महत्व अनेक दृष्टियों से स्थपित होता है जैसे प्राथमिक स्रोत के रूप में उपयोग इसमें मुगल परिवार की आन्तरिक घटनाओं का प्रत्यक्ष विवरण है। जिसके कारण गुलबदन बेगम का लेखन अन्य दरबारी ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक प्रमाणित है। गुलबदन बेगम को भारतीय उपमहाद्वीप की प्रथम महिला इतिहासकार की दृष्टि से देखा जा सकता है। उन्होंने इतिहास लेखन में महिलाओं के इतिहास को स्थान दिया। उसने मुगल युग की जीवन शैली परिधान खान-पान, रीति-रिवाज, परम्परा मात्र और आचार-व्यवहार की जानकारी उपलब्ध कराई है। उन्होंने इतिहास को मात्र राजाओं और युद्धों की कथा न बनाकर मानवीय संवेदनाओं से जोड़ा है। यद्यपि गुलबदन बेगम का लेखन अत्यन्त महत्वपूर्ण है फिर भी कुछ सीमाएँ है।

उन्होंने घटनाओं का वर्णन अधूरा छोड़ा सम्भवतः सामाजिक मर्यादा के कारण। कालक्रम की क्रमबद्धता है, परन्तु अनेक स्थानों पर अप्राप्य है। राजनीतिक विश्लेषण की दृष्टि से अपेक्षा कृत कमजोर है, क्योंकि वे मुख्यतः पारिवारिक पक्ष पर केन्द्रित रही। सम्भवतः ऐसा भी हो सकता है, कि राजनीतिक विश्लेषण समसामयिक दरबारी इतिहासकार कर रहे थे, कारण मुगल आन्तरिक गतिविधियों पर अधिक केन्द्रित इतिहास लिपिबद्ध किया।

निष्कर्ष -

गुलबदन बेगम का भारतीय इतिहास लेखन परम्परा में अग्रणी एवं विशिष्ट नाम है। उन्होंने उस काल में लेखन किया जब महिलाओं का सार्वजनिक जीवन में भाग लेना भी असामान्य था। उनके हुमायूँनामा में इतिहास की घटनाएँ स्त्री संवेदना के साथ प्रस्तुत हुई है, जिसमें इतिहास अधिक जीवान्त और मानवीय बन गया। उनका लेखन केवल मुगल इतिहास के अध्ययन में नहीं, बल्कि स्त्री लेखन आत्मकथात्मक साहित्य और सांस्कृतिक इतिहास के क्षेत्र में भी मील का पत्थर है। इस प्रकार इतिहास लेखन में गुलबदन बेगम का योगदान अनन्य और प्रेरणाप्रद है। हुमायूँनामा कृति लम्बे समय तक उपेक्षित रहीं। अबुल फजल ने अपने ग्रन्थ में इसका उपयोग किया ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु कहीं पर भी सन्दर्भ नहीं दिया है। 20वीं शताब्दी में

इसका अनुवाद और प्रकाशन हुआ जो आज मुगल इतिहास को समृद्ध बनाता है। गुलबदन बेगम न केवल मुगल इतिहास की ध्वजवाहक है, अपितु भारतीय इतिहास लेखन में महिलाओं की उपस्थिति का प्रतीक भी है। उनकी रचना हमें यह स्मरण कराती है, कि इतिहास मात्र युद्धों का नहीं सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का भी संग्रह है।

सन्दर्भ-

1. बाबर, जहीरूद्दीन मोहम्मद. (1960). *मध्य कालीन भारत का इतिहास भाग-एक* [हिं. अनु.]. (सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी, अनु.). अलीगढ़, भारत.
2. गुलबदन, बेगम. (1902). *द हिस्ट्री ऑफ हुमायूँ* [अं. अनु.]. (ए. एस. बेवरिज, अनु.). एशियाटिक सोसाइटी ऑफ लन्दन. पृ. 82-84.
3. गुलबदन, बेगम. (1902). *द हिस्ट्री ऑफ हुमायूँ* [अं. अनु.]. (ए. एस. बेवरिज, अनु.). एशियाटिक सोसाइटी ऑफ लन्दन. पृ. 84.
4. गुलबदन, बेगम. (1902). *द हिस्ट्री ऑफ हुमायूँ* [अं. अनु.]. (ए. एस. बेवरिज, अनु.). एशियाटिक सोसाइटी ऑफ लन्दन. पृ. 83.
5. गुलबदन, बेगम. (1902). *द हिस्ट्री ऑफ हुमायूँ* [अं. अनु.]. (ए. एस. बेवरिज, अनु.). एशियाटिक सोसाइटी ऑफ लन्दन. पृ. 84.
6. गुलबदन, बेगम. (2014). *गुलबदन का हुमायूँनामा* [हिं. अनु.]. (दास बृजरतन, अनु.). देवनारी प्रचारणी सभा, काशी.
7. गुलबदन, बेगम. (1902). *द हिस्ट्री ऑफ हुमायूँ* [अं. अनु.]. (ए. एस. बेवरिज, अनु.). एशियाटिक सोसाइटी ऑफ लन्दन. पृ. 85-86.
8. गुलबदन, बेगम. (1902). *द हिस्ट्री ऑफ हुमायूँ* [अं. अनु.]. (ए. एस. बेवरिज, अनु.). एशियाटिक सोसाइटी ऑफ लन्दन. पृ. 102-103.
9. गुलबदन, बेगम. (1960). *मध्यकालीन भारत हुमायूँ भाग-दो* [हिं. अनु.]. (सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी, अनु.). अलीगढ़, भारत. पृ. 237.
10. गुलबदन, बेगम. (1902). *द हिस्ट्री ऑफ हुमायूँ* [अं. अनु.]. (ए. एस. बेवरिज, अनु.). एशियाटिक सोसाइटी ऑफ लन्दन. पृ. 88, 102, 122.
11. गुलबदन, बेगम. (1902). *द हिस्ट्री ऑफ हुमायूँ* [अं. अनु.]. (ए. एस. बेवरिज, अनु.). एशियाटिक सोसाइटी ऑफ लन्दन. पृ. 97-98.
12. गुलबदन, बेगम. (1902). *द हिस्ट्री ऑफ हुमायूँ* [अं. अनु.]. (ए. एस. बेवरिज, अनु.). एशियाटिक सोसाइटी ऑफ लन्दन. पृ. 113.
13. गुलबदन, बेगम. (1902). *द हिस्ट्री ऑफ हुमायूँ* [अं. अनु.]. (ए. एस. बेवरिज, अनु.). एशियाटिक सोसाइटी ऑफ लन्दन. पृ. 122-123.
14. गुलबदन, बेगम. (1902). *द हिस्ट्री ऑफ हुमायूँ* [अं. अनु.]. (ए. एस. बेवरिज, अनु.). एशियाटिक सोसाइटी ऑफ लन्दन. पृ. 128.

Received: 02.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

अंबेडकर के आर्थिक विकास संबंधी विचारों और दृष्टिकोणों पर एक अध्ययन: आधुनिक भारत में प्रासंगिकता

प्रो. विवेकानंद तिवारी*

vivek_tiwari1097@rediffmail.com

शोध सारांश

भारतीय इतिहास के एक महान व्यक्तित्व डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने आधुनिक भारत के आर्थिक चिंतन और दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आर्थिक विकास पर उनके विचार सामाजिक न्याय, समानता और समावेशिता के सिद्धांतों पर आधारित थे। अंबेडकर ने गहरी जड़ें जमा चुकी सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को दूर करने के लिए संरचनात्मक सुधारों की वकालत की, जिसमें भूमि पुनर्वितरण, प्रमुख उद्योगों का राज्य स्वामित्व और हाशिए पर पड़े समुदायों के उत्थान के लिए श्रम कल्याण की आवश्यकता पर बल दिया गया। उन्होंने एक ऐसे आर्थिक मॉडल की परिकल्पना की जिसमें औद्योगीकरण, तर्कसंगत कराधान और कमजोर समूहों, विशेष रूप से दलितों और महिलाओं के सशक्तिकरण को प्राथमिकता दी गई। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को औद्योगिक विकास के साथ एकीकृत करने, जाति-आधारित भेदभाव को समाप्त करने और एक समान श्रम बाजार के निर्माण पर अंबेडकर की अंतर्दृष्टि समकालीन भारत के लिए अत्यंत प्रासंगिक बनी हुई है। शिक्षा, आर्थिक नियोजन और सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को सुनिश्चित करने में संविधान की भूमिका पर उनका जोर गरीबी, बेरोजगारी और असमानता जैसी चुनौतियों से निपटने के लिए मूल्यवान मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह शोधपत्र अंबेडकर के आर्थिक दर्शन, भारत के नीतिगत ढांचे पर इसके प्रभाव और एक समावेशी और टिकाऊ आधुनिक भारत को आकार देने में इसकी स्थायी प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है।

बीज शब्द:

अंबेडकर, आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय, समावेशिता, औद्योगीकरण, श्रम कल्याण, भूमि सुधार, आधुनिक भारत, समानता, हाशिए पर स्थित समुदाय, मिश्रित अर्थव्यवस्था, समाजवाद

शोध विस्तार

सामाजिक मुद्दों पर काम करते हुए भी उनके कार्य को देखा जाए तो ये कहीं ना कहीं आर्थिक पक्ष के साथ भी जुड़े हैं, जब वो महिलाओं को उद्यमी बनाने की बात करते या दलितों को भी उद्यमी बनाने में सरकार की सहायता की बात करते हैं. उनका मानना था कि "आर्थिक उत्थान के बिना कोई भी सामाजिक एवं राजनीतिक भागीदारी संभव नही होगी. डॉ. अंबेडकर ने भारतीय मुद्रा (रुपए) की समस्या, महंगाई तथा विनिमय दर, भारत का राष्ट्रीय लाभांश, ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास, प्राचीन भारतीय वाणिज्य, ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रशासन एवं वित्त, भूमिहीन मजदूरों की समस्या तथा भारतीय कृषि की समस्या जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर शोध ही नहीं किया बल्कि इन मुद्दों से सम्बंधित समस्याओं के तर्किक एवं व्यावहारिक समाधान भी दिए.

20वीं सदी के शुरुआत में विश्व के लगभग सभी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने डॉ अंबेडकर के अर्थशास्त्र विषय की समझ तथा उनके योगदान को सराहा और उनके शोध पर महत्वपूर्ण टिप्पणी भी की. अभी हाल के दिनो मे नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री आमर्त्य सेन ने कहा "डॉ. अंबेडकर अर्थशास्त्र के विषय मे मेरे पिता हैं". सन 1917 में पीएचडी. शोध पूरा कर पाए, उनकी एमए. की थीसिस का विषय 'प्राचीन भारतीय वाणिज्य' (Ancient Indian Commerce) था, जो कि प्राचीन भारतीय वाणिज्य के प्रति उनकी समझ को दर्शाता है, इस थीसिस में उन्होंने प्राचीन भारतीय वाणिज्य की समस्याओं

* **अध्यक्ष, बी. आर. आम्बेडकर पीठ एचपीयू, शिमला**

को रखा तथा उनके संभावित कारगर समाधान भी बताए विचारकों के मन में हमेशा आर्थिक विकास का प्रश्न होता है। उन्होंने समसामयिक परिस्थितियों से उबरने के लिए आर्थिक समस्याओं पर कुछ विचार और समाधान रखे हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे विचार और समाधान आज पुराने हो चुके हैं। उन विचारों में वर्तमान अर्थव्यवस्था को सही दिशा में निर्देशित करने की क्षमता है। भारत के मामले में अनेक विशेषज्ञों ने सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र से संबंधित अपने बहुमूल्य विचार रखे हैं। हालांकि उनके विचार सिद्धांत के रूप में नहीं हैं लेकिन आर्थिक विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। जब हम डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के आर्थिक विचारों पर गौर करते हैं तो हमने उन्हें बहुत महत्वपूर्ण आर्थिक विचारकों में पाया है। डॉ बी आर अंबेडकर को 'बाबासाहेब' के नाम से जाना जाता है। वह एक भारतीय विधिवेत्ता, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, मानवविज्ञानी, इतिहासकार और अर्थशास्त्री थे। डॉ. अम्बेडकर भारत के संविधान के महान शिल्पकार थे। आर्थिक चिंतन में डॉ. अम्बेडकर का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने भारत में लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संबंध में कुछ मुद्दों और विकल्पों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कृषि, केंद्र और राज्य सरकार के बीच संबंध, औद्योगीकरण, मुद्रा, वित्त प्रणाली, बीमा, शिक्षा, मिश्रित अर्थव्यवस्था, समाजवाद, आर्थिक असमानता, गरीबी एवं बेरोजगारी आदि पर अपने आर्थिक विचार व्यक्त किए हैं। उनके आर्थिक विचार आज भी प्रासंगिक हैं। प्रस्तुत पत्र उनके कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक विचारों को उजागर करने का एक प्रयास है।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर 20 वीं शताब्दी में भारत के सबसे उत्कृष्ट बुद्धिजीवियों में से थे। डॉ बी. आर. अंबेडकर को 'बाबासाहेब' के नाम से जाना जाता है। वह एक भारतीय विधिवेत्ता, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, मानवविज्ञानी, इतिहासकार और अर्थशास्त्री थे। डॉ. अम्बेडकर भारत के संविधान के महान शिल्पकार थे। आर्थिक चिंतन में डॉ. अम्बेडकर का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। डॉ. अम्बेडकर विदेश से अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट की डिग्री लेने वाले पहले भारतीय थे। [1] उन्होंने तर्क दिया कि औद्योगिकीकरण और कृषि विकास से भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि हो सकती है। [2] उन्होंने भारत में प्राथमिक उद्योग के रूप में कृषि में निवेश पर बल दिया। शरद पवार के अनुसार, अम्बेडकर के दर्शन ने सरकार को अपने खाद्य सुरक्षा लक्ष्य हासिल करने में मदद की। (3) अम्बेडकर ने राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक विकास की वकालत की, शिक्षा, सार्वजनिक स्वच्छता, समुदाय स्वास्थ्य, आवासीय सुविधाओं को बुनियादी सुविधाओं के रूप में जोर दियज्ञं [2],

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के प्रमुख अर्थशास्त्र प्रकाशन हैं "द प्रॉब्लम ऑफ रुपी" (पी एस किंग एंड सन लिमिटेड, लंदन 1923), और " द इवोल्यूशन ऑफ प्रोविंशियल फाइनेंस इन ब्रिटिश इंडिया" (पी एस किंग एंड सन) लिमिटेड, लंदन 1925)। एक महत्वपूर्ण अकादमिक पेपर है जिसे उन्होंने 1918 में लिखा था, 'स्मॉल होल्डिंग्स इन इंडिया एंड देयर रेमेडीज' जर्नल ऑफ द इंडियन इकोनॉमिक सोसाइटी, खंड 1, 1918।

इन अकादमिक आर्थिक लेखों के अलावा, उनके ज्ञापन और विभिन्न सरकारी आयोगों को दिए गए साक्ष्य, विभिन्न विधायी निकायों में भाषण, और पुस्तक समीक्षाएं हैं जिनमें सभी में कुछ आर्थिक सामग्री है। डॉक्टर अंबेडकर के आर्थिक विचारों का अध्ययन हम कृषि, उद्योग, श्रम, मुद्रा वित्तीय स्थिति बिंदुओं के अंतर्गत विभाजित करके कर सकते हैं।

कृषि व्यवस्था

डॉ. अम्बेडकर कृषि को महत्व देते हैं क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था इसी क्षेत्र पर आधारित है। अंबेडकर के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का मूलभूत कारण भूमि व्यवस्था में परिवर्तन में देरी है। [१] उनका विचार था कि कृषि और अंततः भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के बिना ग्रामीण समाज का विकास असंभव है। उन्होंने मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी का समर्थन किया। उन्होंने भारतीय कृषि का राष्ट्रीयकरण सामूहिक खेती के साथ अपनाने का सुझाव दिया। उन्होंने भारतीय कृषि समस्याओं के समाधान के लिए कृषि पर निर्भर भूमिहीन मजदूरों पर जोर दिया। उन्होंने खेत के आकार को कभी महत्व नहीं दिया। उनके अनुसार पूंजी और अन्य संसाधन, छोटे आकार के खेत की तुलना में भारतीय कृषि क्षेत्र की मुख्य समस्याएं हैं। मशीनीकरण की मदद से कृषि के आधुनिकीकरण पर भी उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए हैं। आधुनिकीकरण से उत्पादन बढ़ेगा और इस क्षेत्र का विकास होगा। वे सामूहिक खेती में विश्वास करते थे। उनके अनुसार खेत के आवंटन का आधार जाति नहीं होनी चाहिए और सरकार को खेती और पानी की आपूर्ति के उपकरण उपलब्ध कराने चाहिए। सरकार को कृषि आय पर कर नहीं लगाना चाहिए और खेती से होने वाली आय को बिना किसी जाति के भेदभाव के किसानों के बीच वितरित किया जाना चाहिएस [4], अंबेडकर ने कृषि सुधार को औद्योगिकरण के साथ जोड़ा ताकि ग्रामीण व शहरी प्रगति में एक प्रकार का संपर्क बना रहे। वास्तव में उन्होंने कृषि उद्योग दोनों को एक दूसरे का पूरक क्षेत्र माना है यही कारण है कि जो

बात अंबेडकर ने 1918 में कहीं उसे ही हमारे विशेषज्ञों ने 1950 के पश्चात स्वीकार कर यह महसूस किया कि भारत की आर्थिक प्रगति के लिए ना केवल कृषि सुधार बल्कि साथ ही समूचे भारत में औद्योगिकरण की भी परम आवश्यकता है।

श्रम

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के अनुसार समाज में भेदभाव विशेष रूप से शोषण पर आधारित था और उन्होंने इस बात की पुष्टि की कि प्रत्येक श्रम को मनुष्य के रूप में माना जाना चाहिए, उन्होंने सभी के लिए समानता और स्वतंत्रता का परिचय देने की आवश्यकता का सुझाव दिया। 1937 में उन्होंने लेबर पार्टी की स्थापना की।

लेबर पार्टी की मान्यता थी कि किसान की जमीन के निरंतर टुकड़े होना और उन पर जनसंख्या का दबाव होना किसानों की गरीबी का मुख्य कारण है, इसका समाधान यह है कि पुराने लघु उद्योगों को बहाल किया जाए और नए उद्योग शुरू किए जाए। लोगों की योग्यता और उत्पादन शक्ति बढ़ाने के लिए उन्हें तकनीकी शिक्षा दी जाए। इसके लिए सरकार की ओर से उद्योग चलाने और प्रबंध करने का सुझाव दिया गया। कारखाने के कामगारों के रोजगार तथा कल्याण के लिए बेहतर कानून बनवाना भी पार्टी का एक लक्ष्य था। काम के घंटे तय करना, प्रमोशन के अवसर देना, वेतन, छुट्टियां, आवास की उपयुक्त सुविधा आदि के लिए प्रभावी कानून बनवाने के लिए सरकार को बाध्य करना दल के अन्य लक्ष्य थे। [5], अंबेडकर के अनुसार जो सुविधाएं औद्योगिक श्रमिकों को दी जाती है वहीं सुविधाएं कृषि श्रमिकों की जानी चाहिए क्योंकि कृषि श्रम भी इससे अलग नहीं है। उनके अनुसार कार्य की दशाएं प्रावधाई निधि, नियोक्ता के दायित्व, कार्य की क्षति पूर्ति, स्वास्थ्य बीमा, पेंशन आदि के लाभ सभी प्रकार के श्रम को प्राप्त होने चाहिए चाहे वह औद्योगिक श्रमिक हो या कृषि श्रमिक। [6]

औद्योगिकीकरण

अंबेडकर सभी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में नहीं थे। वे केवल महत्वपूर्ण उद्योगों का ही स्वामित्व और कार्यप्रणाली राज्य के अधीन करने के पक्ष में थे। वह यह भी सुझाव देते थे कि जो उद्योग महत्वपूर्ण उद्योग नहीं है परंतु जो मूल उद्योग हैं उन्हें या तो राज्य चलाएं या राज्य द्वारा स्थापित निगम संचालित करें।[7] डॉक्टर अंबेडकर ने निजी क्षेत्र का कभी भी विरोध नहीं किया। उनका यह निश्चित मत था कि मूलभूत उद्योगों के अतिरिक्त उत्पादन के क्षेत्र निजी उद्यमियों के स्वामित्व में होने चाहिए परंतु साथ ही साथ उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि निजी उद्यमियों को समाज के वृहत्त हितों को ध्यान में रखना होगा। सरकार को स्वयं निश्चित करना होगा कि कौन से उद्योग राज्य के द्वारा चलाए जाए या निजी क्षेत्र के द्वारा या निजी क्षेत्र तथा राज्य दोनों के नियंत्रण में हो।

वित्त का विकेन्द्रीकरण

अम्बेडकर ने अर्थव्यवस्था के राष्ट्रीयकरण पर जोर दिया। उनका विचार था कि राज्य को अर्थव्यवस्था का प्रबंधन करना चाहिए ताकि उत्पादन इष्टतम स्तर तक पहुंच सके और पूंजीपति द्वारालाभ नहीं लिया जाना चाहिए। लाभ समान रूप से वितरित किया जाना चाहिए। वह पूंजीवादी व्यवस्था के कारण होने वाली स्पष्ट सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को दूर करते हुए समाज के प्रगतिशील परिवर्तन के लिए खड़े थे। अम्बेडकर समाजवाद के दृढ़ विश्वासी थे। उद्योगों के राष्ट्रीयकरण और जीवन बीमा पर उनके विचार ने भारत के सामने आने वाली आर्थिक समस्याओं के प्रति उनकी बड़ी चिंता को दर्शाया। सार्वजनिक क्षेत्र के गठन और जीवन बीमा निगम की स्थापना से पता चला कि वह अन्य प्रमुख अर्थशास्त्रियों के साथ सहमत थे। उन्होंने टिप्पणी की कि भारत का औद्योगीकरण एक आवश्यक चीज थी। लेकिन साथ-साथ राज्य प्रबंधन और उद्योग के राज्य स्वामित्व के सिद्धांत को अपनाया जाना चाहिए। सामाजिक बीमा और रोजगार पर नियंत्रण, बर्खास्तगी जैसी सुविधाएं उद्योग की प्रगति के लिए महत्वपूर्ण थीं। इन उपायों के बारे में निम्न मध्यम वर्ग की रक्षा की जानी चाहिए। उनका दृढ़ विश्वास था कि शोषण को समाप्त करके, श्रम कल्याण और अनुकूल औद्योगिक संबंध के माध्यम से औद्योगिक सद्भाव स्थापित किया जा सकता है। उन्होंने टिप्पणी की "हमने राजनीतिक स्वतंत्रता और समानता प्राप्त की है लेकिन आर्थिक और सामाजिक समानता के बिना यह काफी अपर्याप्त है।" अम्बेडकर ने आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता और समानता पर अधिक जोर दिया। समाज और समाजवाद की उनकी अवधारणा का उद्देश्य गरीब वर्गों के कल्याण के लिए आधारित असमानता को समाप्त करना था। जन्म पर सामाजिक व्यवहार पैटर्न में भेदभावपूर्ण प्रथाओं को समाप्त करना, सभी के लाभ के लिए राजनीतिक अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन करना, पूर्ण रोजगार और शिक्षा बनाए रखना, कमजोर और बीमारों के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना। [8]

मुद्रा के संबंध में विचार

डॉ. अम्बेडकर के विचार वर्तमान भारतीय नकदी ढांचे को बहुत प्रभावित करते हैं। ब्रिटिश मानक के तहत जब भारत सरकार भारतीय रुपये के गिरते अनुमान से जूझ रहे थे, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने 1923 में 'रुपये का मुद्दा, 'इसकी जन्मस्थली और व्यवस्था' की रचना की। उन्होंने ब्रिटिश भारत के दौरान भारतीय धन की स्थिति पर अपनी जांच और शोध को केंद्रित किया। उन्होंने इस पर शोध प्रस्ताव तैयार किया। अपने सिद्धांत में, उन्होंने तर्क दिया कि सोने के व्यापार मानक में स्थिरता नहीं है। भारत जैसे निर्माण करने वाले देश सोने के व्यापार मानदंडों की लागत का प्रबंधन नहीं कर सकते हैं, इससे अधिक यह मूल्य वृद्धि के खतरे को भी बढ़ाता है। उन्होंने अंतर्दृष्टि की जानकारी और कारणों के साथ प्रदर्शित किया कि कैसे भारतीय रुपये ने अपना मूल्य खो दिया है और इस प्रकार रुपये की खरीद तीव्रता गिर रही है। उन्होंने सुझाव दिया कि सरकारी कमी को दूर किया जाना चाहिए और पैसे का एक वृत्ताकार प्रवाह होना चाहिए। उन्होंने यह भी प्रस्तावित किया कि रूपांतरण पैमाने पर निर्भरता की तुलना में मूल्य ठोसता पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए यह पुस्तक अनिवार्य रूप से भारतीय रिजर्व बैंक की नींव को प्रेरित करती है।

समान कार्य के लिए समान वेतन

डॉ. अम्बेडकर प्रमुख व्यक्ति थे जिन्होंने वायसराय आधिकारिक सभा में श्रम मंत्री के रूप में औद्योगिक विशेषज्ञों के रूप में भारत में "समान कार्य के लिए समान वेतन" कानून लाया। भारतीय संविधान का मसौदा तैयार करते समय, डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 39 (डी) को समाहित करने के लिए महत्वपूर्ण प्रतिबद्धता निभाई, जो राज्य को समकक्ष के लिए समान वेतन की पुष्टि करने के लिए एक निर्णय लेने के लिए संबंधित है। [10], उनके द्वारा इंगित किया गया है, महिलाओं की सामाजिक स्थिति और निष्पक्षता के निर्माण के बिना वित्तीय सुधार में समर्थन की कल्पना नहीं की जा सकती है। जो भी हो, भारत में महिलाओं की भयानक आर्थिक स्थिति के कारण भारत की आर्थिक उन्नति बाधित है। इस प्रकार, महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार करना और उन्हें समान अधिकार और व्यवसाय का अवसर देना महत्वपूर्ण है।

गरीबी एवं बेरोजगारी

डॉ. अम्बेडकर ने यह स्वीकार किया कि भूमि के टुकड़े-टुकड़े होना और उन पर जनसंख्या के दबाव के कारण ही कृषक गरीब है। इसका समाधान यह है कि पुराने उद्योगों को बहाल किया जाय और नये उद्योग चालू किये जायें। उन्हें तकनीकी शिक्षा प्रदान की जाय। स्पष्ट है कि अम्बेडकर गरीबी एवं बेरोजगारी समाप्त करने के लिए कृषि क्षेत्र में सामूहिक कृषि को अपनाने तथा उद्योग क्षेत्र में नये उद्योग लगाने एवं पुराने उद्योगों को बहाल करना मुख्य उपचार मानते थे। उन्होंने बताया कि किसानों और मजदूरों को बिना किसी जाति पांति के भेद के एक मजदूर संगठन कायम करना चाहिए और विधानसभाओं में योग्य वक्ता चुनकर भेजना चाहिए। जो उनका प्रतिनिधित्व कर सके। आर्थिक असमानता के बारे में उन्होंने लिखा है कि जब तक समाज में आर्थिक समानता के साथ सामाजिक समानता स्थापित नहीं हो जाती देश का सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता।

अन्य विचार

बी आर अंबेडकर ने नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यों की चर्चा करते हुए 1949 में हमारे संविधान के निर्माण के दौरान कहा था कि सरकारों को जनता से प्राप्त संसाधनों को न केवल नियमों, कानूनों और विनियमों के अनुसार खर्च करना चाहिए, बल्कि यह भी देखना चाहिए कि "वफादारी, ज्ञान और अर्थव्यवस्था" सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा व्यय के कृत्यों में चला गया है। इसलिए सरकार के लिए मूल इरादों के प्रति वफादार होना और भी आवश्यक हो जाता है।

डॉ अम्बेडकर ने दामोदर महानदी बेसिन पर बहुआयामी परियोजना को भी अंजाम दिया। जलग्रहण क्षेत्र को विकसित करने के लिए बिजली को उत्पादन करने के लिए, बाढ़ को पूर्ण विराम देने के लिए, सिंचाई के लिए पानी की आपूर्ति, जलमार्ग के रूप में और उन सभी उद्देश्यों के लिए औद्योगिक उपयोग के लिए परियोजनाओं को पूरा किया। उन्होंने बिजली उत्पादन को भी दिशा दी। बिजली की निरंतर और समृद्ध उपलब्धता बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने नई जल नीति, जलमार्ग, जल निकासी व्यवस्था आदि मुद्दों पर भी अपने विचार व्यक्त किये।

निष्कर्ष

विभिन्न आर्थिक विषयों पर, जिनसे अम्बेडकर का संबंध था, उनके निष्कर्षों का मूल्य काफी सटीक है क्योंकि उनका विश्लेषण अनुभवजन्य और ऐतिहासिक नींव पर आधारित था। उनके अनुसार प्रमुख उद्योग राज्य के स्वामित्व में

संचालित होंगे। बुनियादी लेकिन गैर-महत्वपूर्ण उद्योग राज्य के स्वामित्व में होंगे और राज्य या उसके द्वारा स्थापित निगमों द्वारा संचालित होंगे। कृषि एक राज्य उद्योग होगा, और सामूहिक कृषि को प्राथमिकता दी जायेगी। उन्होंने औद्योगीकरण की आवश्यकता पर भी जोर दिया ताकि अधिशेष श्रम को कृषि से अन्य उत्पादक में स्थानांतरित किया जा सके।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि डॉ अंबेडकर के आर्थिक दर्शन सिद्धांत महत्वपूर्ण होने के साथ व्यवहार में भी लागू किये गये। उनका दर्शन मानवतावादी था जो सीधा मनुष्य के कल्याण से जुड़ा हुआ था। उनके महत्वपूर्ण विचारों का स्वतंत्रता, समानता, प्रजातंत्र, समाजवाद आदि में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ. अंबेडकर भारतीय अर्थव्यवस्था को एक न्यायसंगत अर्थव्यवस्था के रूप में स्थापित करना चाहते थे, जिसमें समानता हो, गरीबी, बेरोजगारी और महंगाई ख़त्म हो, लोगों का आर्थिक शोषण न हो तथा सामाजिक न्याय हो, सामान्यत: ऐसा लग सकता है कि डॉ. अंबेडकर ने यदि केवल अर्थशास्त्र को ही अपना करियर बनाया होता तो संभवत: वे अपने समय के दुनिया के दस प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों में से एक होते. लेकिन डॉ. अंबेडकर का योगदान किसी भी अर्थशास्त्री से कहीं ज्यादा है, डॉ. अंबेडकर ने अर्थशास्त्र के सिद्धांतों और शोधों का भारतीय समाज के संदर्भ में व्यावहारिक उपयोग किया. शोध का जब तक अनुप्रयोग (एप्लीकेशन) न हो तब तक उसकी सामाजिक उपयोगिता संदिग्ध है, भारतीय समाज व्यवस्था को आमूल बदलकर डॉ. अंबेडकर ने अर्थशास्त्र के उद्देश्यों को वास्तविक अर्थ में साकार किया, उनका यह अविस्मरणीय योगदान उनकी सशक्त सामाजिक-आर्थिक संवेदना और सामाजिक-आर्थिक गहन वैचारिकी का परिणाम हैं.

संदर्भ :-

1. Indian Economic Association. (2013). Dr. B.R. Ambedkar's economic and social thoughts and their contemporary relevance. *IEA Newsletter*, 10.
2. Mishra, S. N. (Ed.). (2010). *Socio-economic and political vision of Dr. B.R. Ambedkar*. New Delhi: Concept Publishing Company.
3. "Ambedkar had a vision for food self-sufficiency." (2013, [month day if available]). *The Times of India*.
4. Chavan, H. V. (2013). The economic thought of Dr. Babasaheb Ambedkar. *The Indian Economic Journal*, 155.
5. परिहार, एम.एल. डॉ. (2017). *बाबा साहब अम्बेडकर लाइफ एंड मिशन*. p. 181.
6. Kuber, W. N. (n.d.). *B.R. Ambedkar*. p. 130.
7. Ambedkar, B. R. (1947). *State and minorities*. p. 15.
8. छीपा, एम.एल. डॉ., शर्मा, शंकर लाल, & सिद्ध, जे.के. (n.d.). *भारतीय आर्थिक चिंतन*. pp. 205-207.
9. Nageswari, R. (2019). Economic vision of Dr. B.R. Ambedkar. *Shanlax International Journal of Economics*. Retrieved from researchget.net
10. Ram, O. P., Singh, S. R., & Shankar, S. (2013). डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के आर्थिक विचारः एक सिंहावलोकन. *The Indian Economic Journal*, 61-63.
11. Singariya, M. R. (2013). Dr. BR Ambedkar: As an economist. *International Journal of Humanities and Social Science Invention, 2*(3), 24-27. Retrieved from academia.edu

Received: 02.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

मानवाधिकार, लैंगिक असमानता और महिलाओं का मानसिक–शारीरिक स्वास्थ्य: एक अंत: विषयक विश्लेषण

Dr. Upendra Kumar[1]
upendra.pankaj@gmail.com

शोध सारांश-

मानवाधिकारों की उपलब्धता अथवा अनुपलब्धता महिलाओं के समग्र स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रभावित करती है। इस शोध पत्र का मूल तर्क यह है कि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य केवल चिकित्सकीय प्रश्न नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और कानूनी संरचनाओं से गहराई से जुड़े हुए मानवाधिकार हैं। लैंगिक भेदभाव, घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, बाल विवाह, प्रजनन स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच, कार्यस्थल पर असमानता तथा देखभाल-कार्य का असमान बोझ महिलाओं के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। शोध में भारत सहित वैश्विक परिप्रेक्ष्य में संवैधानिक प्रावधानों, अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों और सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों का विश्लेषण किया गया है। द्वितीयक स्रोतों, सरकारी रिपोर्टों, राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षणों और विद्यमान शोध-साहित्य के आधार पर यह अध्ययन दर्शाता है कि अधिकार-आधारित दृष्टिकोण अपनाने से मातृ स्वास्थ्य, पोषण, मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच तथा हिंसा-निवारण में सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। मानसिक स्वास्थ्य को अक्सर सामाजिक कलंक, संसाधनों की कमी और लिंग-आधारित असमानताओं के कारण उपेक्षित किया जाता है, जिससे महिलाओं की गरिमा और जीवन-गुणवत्ता प्रभावित होती है। यह शोध नीति-निर्माण में जेंडर-संवेदी और अधिकार-आधारित हस्तक्षेपों, स्वास्थ्य सेवाओं की सुलभता, कानूनी संरक्षण तथा सामाजिक जागरूकता को सुदृढ़ करने की आवश्यकता पर बल देता है, ताकि महिलाओं के मानवाधिकारों की वास्तविक सुरक्षा के साथ उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में सतत सुधार सुनिश्चित किया जा सके|

मुख्य शब्द *:*

मानव अधिकार, महिला,शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्, कानूनी संरक्षण

प्रस्तावना-

किसी भी डेमोक्रेटिक समाज में बराबरी, इज्ज़त और सोशल जस्टिस पाने के लिए महिलाओं के मानवाधिकार बहुत ज़रूरी हैं। इन राइट्स में, महिलाओं की शारीरिक और मानसिक स्वास्थ की सुरक्षा और उसे बढ़ावा देना एक अहम जगह रखता है, क्योंकि स्वास्थ्य एक बुनियादी मानवाधिकार भी है और दूसरे राइट्स के इस्तेमाल के लिए एक ज़रूरी शर्त भी। नेशनल और अंतर्राष्ट्रीय लेवल पर ज़रूरी कानूनी और पॉलिसी फ्रेमवर्क के बावजूद, दुनिया भर में महिलाओं को-खासकर विकसित समाजों में स्ट्रक्चरल रुकावटों का सामना करना पड़ता है जो उनकी भलाई पर बुरा असर डालती हैं। जेंडर के आधार पर भेदभाव, स्वास्थ्य केयर तक असमान पहुँच, गरीबी, कम उम्र में शादी, रिप्रोडक्टिव स्वास्थ्य से जुड़ी चुनौतियाँ, घरेलू हिंसा और मेंटल बीमारी से जुड़ा सोशल स्टिग्मा महिलाओं की स्वास्थ्य पर बहुत ज़्यादा असर डालता है।डिप्रेशन, एंग्जायटी, ट्रॉमा और स्ट्रेस जैसी मानसिक स्वास्थ से जुड़ी चिंताएँ अक्सर पित्रसत्ता, देखभाल के बोझ और कम सोशल सपोर्ट की वजह से बढ़ जाती हैं, जबकि शारीरिक स्वास्थ्य पर कम न्यूट्रिशन, माँ की स्वास्थ्य से जुड़े खतरे और अच्छी क्वालिटी की मेडिकल सर्विस तक सीमित पहुँच की वजह से असर पड़ता है। यह रिसर्च पेपर महिलाओं के मानवाधिकार की जांच करता है, खासकर उनकी मेंटल और शारीरिक स्वास्थ्य के रेफरेंस में, और कानूनी अधिकारों, सामाजिक हकीकतों और स्वास्थ्य नतीजों

[1] **Assistant Professor, Nand Lal Singh College, Jaitpur Daudpur (Saran)**

के बीच के कनेक्शन को हाईलाइट करता है। मौजूदा फ्रेमवर्क और अपने अनुभवों को एनालाइज करके, इस स्टडी का मकसद महिलाओं की पूरी भलाई पक्का करने के लिए राइट्स-बेस्ड, जेंडर-सेंसिटिव स्वास्थ्य पॉलिसी और इनक्लूसिव इंटरवेंशन की तुरंत जरूरत पर जोर देना है। मानवाधिकार इंसानी इज्ज़त की रक्षा के लिए ज़रूरी हैं और इंसानी दौलत के उल्लंघन और शोषण का विरोध करने के लिए एक ताकतवर हथियार साबित हुए हैं। हर इंसान को बिना किसी भेदभाव के पूरी दुनिया में मानवाधिकार का मज़ा लेने का हक है। हर देश अपने इलाके के नागरिकों को सुरक्षा देने के लिए ज़िम्मेदार है। मानवाधिकार सभी इंसानों के अंदरूनी अधिकार हैं, चाहे हमारी राष्ट्रीयता, रहने की जगह, लिंग, राष्ट्रीय या जातीय मूल, रंग, धर्म, भाषा, या कोई और हैसियत कुछ भी हो। हम सभी बिना किसी भेदभाव के अपने मानवाधिकार के बराबर हकदार हैं।" मानवाधिकार का कॉन्सेप्ट इंसानों के बुनियादी अधिकारों से जुड़ा है। मानवाधिकार का यूनिवर्सल डिक्लेरेशन 10 दिसंबर, 1948 को यूनाइटेड नेशंस जनरल असेंबली द्वारा अपनाया गया एक डिक्लेरेशन है। "यह डिक्लेरेशन सीधे दूसरे विश्व युद्ध के अनुभव से पैदा हुआ और उन अधिकारों की पहली वैश्विक अभिव्यक्ति को दिखाता है जिनके सभी इंसान स्वाभाविक रूप से हकदार हैं। इसमें 30 अनुच्छेद हैं जिन्हें बाद की अंतर्राष्ट्रीय ट्रीटी, रीजनल मानवाधिकार इंस्ट्रूमेंट, राष्ट्रीय संविधान और कानूनों में विस्तार से बताया गया है।" ये शोधपत्र बताते हैं कि सभी इंसान एक जैसे पैदा होते हैं और उन्हें बराबर मौके और अधिकार मिल सकते हैं। उन्हें बराबर इज्ज़त और ज़िंदगी, आज़ादी और सुरक्षा के बराबर अधिकार हैं। किसी को भी टॉर्चर या बेरहम, अमानवीय या अपमानजनक बर्ताव या सज़ा नहीं दी जाएगी। कानून के सामने सभी बराबर हैं और बिना किसी भेदभाव के कानून से बराबर सुरक्षा पाने के हकदार हैं। इन मानवाधिकार के उल्लंघन के खिलाफ कानूनी नियम हैं[2]। स्वास्थ्य और मानवाधिकार के बीच साफ़ तौर पर अंदरूनी कनेक्शन हैं और ये राइट्स बेस्ड अप्रोच के अंदर एक मज़बूत कॉन्सेप्ट के तौर पर उभरे हैं, खासकर तब जब पब्लिक स्वास्थ्य सिस्टम कमज़ोर हो रहा है, प्राइवेट सेक्टर की बिना नियम के ग्रोथ हो रही है और स्वास्थ्य केयर सिस्टम तक सीमित पहुँच है, जिससे यूनिवर्सल और कॉम्प्रिहेंसिव स्वास्थ्य केयर की उपलब्धता और एक्सेस लगभग पूरी तरह खत्म हो गई है। स्वास्थ्य के लिए राइट्स-बेस्ड अप्रोच, सरकारों को ट्रीटी के तहत उनकी ज़िम्मेदारियों के लिए ज़िम्मेदार ठहराने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार ट्रीटी और नॉर्म्स का इस्तेमाल करता है। दुनिया भर की ज़्यादातर दूसरी संस्कृतियों की तरह, भारतीय समाज में भी पित्रसत्ता और वैल्यूज़ गहराई से जमे हुए हैं। देश में महिलाओं की ज़िंदगी के पब्लिक और प्राइवेट दोनों क्षेत्रों में दिखाई देती है, जो उनके 'ज़िंदगी के मौके' तय करती है और इसका नतीजा यह होता है कि अलग-अलग सोशियो-इकोनॉमिक क्षेत्रों में उनकी क्वालिटेटिवली कमज़ोर स्थिति होती है। यह इंस्टीट्यूशन और ऑर्गनाइज़ेशन में फैली हुई है और महिलाओं के इज्ज़तदार ज़िंदगी के अधिकार को कमज़ोर करने के लिए कई खतरनाक तरीकों से काम करती है[3]।

अच्छी स्वास्थ्य सर्विसेज़ पाने का अधिकार:

सबसे साफ़ मानवाधिकार जिसका उल्लंघन टाली जा सकने वाली मौत से होता है- सिर्फ़ प्रेग्नेंसी या बच्चे के जन्म के दौरान ही नहीं, बल्कि स्वास्थ्य प्रॉब्लम के कुल नतीजे के तौर पर भी-वह है एक महिला का जीने का अधिकार, जिसे ज़िंदा रहने का अधिकार भी कहा जाता है। मैटरनल मॉर्टेलिटी और बीमारी का संबंध ज़्यादा फर्टिलिटी से है। मैटरनल मॉर्टेलिटी रेश्यो, यानी हर **100,000** ज़िंदा जन्मों पर मैटरनल डेथ की संख्या, **1997-1998** में **398** से घटकर **2001-2003** में **301** हो गई है। यह रेश्यो अभी भी **USA** से **57** गुना ज़्यादा है। वर्ल्ड स्वास्थ्य ऑर्गनाइज़ेशन और यूनाइटेड नेशंस चिल्ड्रन्स फंड का अनुमान है कि भारत का मैटरनल मॉर्टेलिटी रेश्यो बांग्लादेश और नेपाल से कम है, लेकिन पाकिस्तान और श्रीलंका से ज़्यादा है। मैटरनल मॉर्टेलिटी का लेवल हर राज्य में बहुत अलग-अलग होता है, गुजरात में सबसे कम रेश्यो (**47**) है और चार राज्यों (असम, बिहार, राजस्थान और उत्तर प्रदेश) में यह रेश्यो **500** से ज़्यादा है। मैटरनल मॉर्टेलिटी का ज़्यादा लेवल खास तौर पर परेशान करने वाला है क्योंकि इनमें से ज़्यादातर मौतों को रोका जा सकता था अगर महिलाओं को सही स्वास्थ्य सर्विस (या तो असरदार प्री-नेटल केयर या सही स्वास्थ्य केयर सुविधाओं के लिए रेफरेंस) मिलती। असल में, भारत में ज़्यादा **MMR** का मुख्य कारण स्वास्थ्य केयर तक पहुंच की कमी है। ऐसा माना जाता है कि जिन ज़्यादातर महिलाओं को प्रेग्नेंसी के दौरान स्वास्थ्य केयर नहीं मिली, उन्होंने कहा कि ऐसा इसलिए था क्योंकि उन्हें लगा कि यह ज़रूरी नहीं है। अभी यह अनुमान है कि गांव की **16%** आबादी किसी भी मेडिकल सुविधा से **10 km** से ज़्यादा दूर रहती है। यह स्वास्थ्य केयर के इस्तेमाल न होने

[2] वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइज़ेशन. (2013). महिलाओं की मेंटल हेल्थ: एक सबूत पर आधारित रिव्यू (pp. 1–68). WHO प्रेस.

[3] यूनाइटेड नेशंस ह्यूमन राइट्स काउंसिल. (2017). मेंटल हेल्थ और ह्यूमन राइट्स: हेल्थ के अधिकार पर स्पेशल रैपोर्टर की रिपोर्ट (pp. 3–22). यूनाइटेड नेशंस.

का एक और कारण हो सकता है। इसलिए, हेल्दी प्रेग्नेंसी और सुरक्षित बच्चे के जन्म के लिए स्वास्थ्य केयर के महत्व के बारे में महिलाओं को एजुकेट करने की ज़रूरत है। प्री-नेटल केयर के कम लेवल का एक और कारण सही स्वास्थ्य केयर सेंटर की कमी है, खासकर गांव के इलाकों में[4]।

प्रोटीनयुक्त भोजन का अधिकार:

न्यूट्रिशन सेहत तय करने वाला एक ज़रूरी हिस्सा है। एक बैलेंस्ड डाइट शरीर की इन्फेक्शन से लड़ने की ताकत बढ़ाती है, जिससे कई तरह के इन्फेक्शन से बचाव होता है और शरीर को पहले से मौजूद इन्फेक्शन से लड़ने में भी मदद मिलती है। जिस न्यूट्रिएंट की बात हो रही है, उसके आधार पर, न्यूट्रिशन की कमी से कई तरह की बीमारियां हो सकती हैं, जैसे प्रोटीन एनर्जी कुपोषण, रतौंधी, आयोडीन की कमी से होने वाली बीमारियां, एनीमिया, बौनापन, कम बॉडी मास इंडेक्स और जन्म के समय कम वज़न। गलत न्यूट्रिशन लेने से कोरोनरी हार्ट डिज़ीज़, हाइपरटेंशन, नॉन-इंसुलिन-डिपेंडेंट डायबिटीज़ मेलिटस और कैंसर जैसी बीमारियां भी होती हैं।

महिलाओं की शारीरिक बनावट के लिए खास न्यूट्रिशनल सप्लीमेंट्स की ज़रूरत होती है। पीरियड्स और बच्चे का जन्म आयरन कम करने वाले शारीरिक प्रोसेस हैं। बाद की ज़िंदगी में ऑस्टियोपोरोसिस से बचने के लिए महिला के पूरे जीवन में कैल्शियम की लगातार ज़रूरत होती है। भारतीयों का ज़्यादातर शाकाहारी खाना उनकी कई न्यूट्रिशनल ज़रूरतों को पूरा नहीं करता है। इसके अलावा, कल्चरल रीति-रिवाज महिलाओं को कई तरह से नुकसान पहुंचाते हैं और उनके खराब न्यूट्रिशनल स्टेटस को और खराब करते हैं। देश भर में कई घरों में यह रिवाज है कि औरतें सबसे आखिर में खाना खाती हैं और मर्दों के खाना खाने के बाद बचा हुआ खाना खाती हैं[5]।

रिप्रोडक्टिव स्वास्थ्य:

लगभग पूरे साउथ-ईस्ट एशियाई इलाके में मैटरनल मॉर्बिडिटी और मॉर्टेलिटी बड़ी पब्लिक स्वास्थ्य प्रॉब्लम हैं, जो न सिर्फ इस इलाके में महिलाओं की खराब हालत को दिखाती हैं, बल्कि बेसिक स्वास्थ्य केयर के अक्सर खराब स्टैंडर्ड को भी दिखाती हैं। मैटरनल मॉर्टेलिटी को 'प्रेग्नेंसी के दौरान या प्रेग्नेंसी खत्म होने के **42** दिनों के अंदर महिला की मौत के तौर पर बताया गया है, चाहे प्रेग्नेंसी कितनी भी समय और जगह पर हो, प्रेग्नेंसी या उसके मैनेजमेंट से जुड़े या उससे बढ़े किसी भी कारण से, लेकिन एक्सीडेंटल या इंसिडेंटल कारणों से नहीं'। भारत में महिलाओं की रिप्रोडक्टिव स्वास्थ्य में पिछले दो दशक में काफी बदलाव आया है, जिसका मुख्य कारण **1994** में काहिरा में अंतर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस ऑन पॉपुलेशन एंड डेवलपमेंट के बाद बदले पॉलिटिकल एक्सप्रेशन हैं। इससे पहले, महिलाओं की रिप्रोडक्टिव स्वास्थ्य के मुद्दे पर बातचीत कम थी। जन्म की जगह और जन्म के दौरान मदद के तरीके का मैटरनल स्वास्थ्य और मॉर्टेलिटी पर असर पड़ता है। जो बच्चे खराब हालत में पैदा होते हैं या जिन बच्चों की देखभाल ट्रेंड मेडिकल स्टाफ़ नहीं करता, उनके माँ और बच्चे दोनों के लिए बुरे नतीजे होने की संभावना ज़्यादा होती है।

हिंसा के खिलाफ अधिकार:

हिंसा एक महिला की रिप्रोडक्टिव स्वास्थ्य के साथ-साथ उसकी शारीरिक और मानसिक सेहत के दूसरे पहलुओं पर भी असर डालती है। चोट पहुंचाने के अलावा, हिंसा से महिलाओं को लंबे समय तक कई दूसरी स्वास्थ्य प्रॉब्लम होने का खतरा बढ़ जाता है, जिसमें पुराना दर्द, शारीरिक विकलांगता, ड्रग्स और शराब का गलत इस्तेमाल, और अवसाद शामिल हैं। जिन महिलाओं का शारीरिक या यौन शोषण का इतिहास रहा है, उन्हें अनचाही प्रेग्नेंसी, यौन संचारित इन्फेक्शन और प्रेग्नेंसी के बुरे नतीजों का भी खतरा बढ़ जाता है। रेप, घरेलू हिंसा, ऑनर किलिंग और ट्रैफिकिंग के रूप में जेंडर पर आधारित हिंसा से प्रभावित महिलाओं की मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। जेंडर पर आधारित हिंसा भारत में तेज़ी से एक बड़ी पब्लिक स्वास्थ्य चिंता बनती जा रही है, और यह बुनियादी मानवाधिकारों का गंभीर उल्लंघन है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो के डेटा के अनुसार-यह सरकारी एजेंसी देश के क्राइम रेट पर नज़र रखती है-**2009** से महिलाओं के साथ

---

[4] कबीर, एन. (1999). रिसोर्स, एजेंसी, उपलब्धियां: महिलाओं के एम्पावरमेंट को मापने पर विचार। डेवलपमेंट एंड चेंज, 30(3), 435–464. https://doi.org/10.1111/1467-7660.00125

[5] कोर्टेने, डब्ल्यू. एच. (2000). मर्दानगी की बनावट और पुरुषों की भलाई पर उनका असर: जेंडर और हेल्थ की एक थ्योरी. सोशल साइंस एंड मेडिसिन, 50(10), 1385–1401.

हिंसक शोषण के मामले लगातार बढ़े हैं। **2013** तक, ऐसे मामलों की संख्या **50** प्रतिशत से ज़्यादा बढ़ गई है[6]। हर दिन **848** से ज़्यादा महिलाओं को परेशान किया जाता है, उनका रेप किया जाता है या किडनैपिंग के बाद मार दिया जाता है। पिछले दस सालों में महिलाओं के खिलाफ़ **2.24** मिलियन क्राइम रिपोर्ट हुए: पिछले दस सालों के डेटा पर आधारित इंडिया स्पेंड एनालिसिस से पता चलता है कि हर घंटे महिलाओं के खिलाफ़ **26** क्राइम रिपोर्ट होते हैं, या हर दो मिनट में एक शिकायत आती है[7]। सरकार इन मामलों को लेकर सीरियस है और ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए पिछले एक्ट और कानूनों को मजबूत करने के लिए कदम उठा रही है। भारतीय संविधान में महिलाओं को क्राइम और हिंसा से बचाने के लिए कई एक्ट लाए गए हैं। इन एक्ट की लिस्ट नीचे दी गई है:

(1) दहेज प्रोहिबिशन एक्ट**, 1961**
(2) घरेलू हिंसा से महिलाओं का प्रोटेक्शन एक्ट**, 2005**
(3) सती कमीशन (प्रिवेंशन) एक्ट**, 1987,**
(4) इम्मोरल ट्रैफिक प्रिवेंशन एक्ट**, 1956,**
(5) सिविल प्रोसीजर कोड**, 1973,**
(6) इंडियन पीनल कोड**, 1960,**
(7) हिंदू मैरिज एक्ट**, 1955,**
(8) चाइल्ड मैरिज रेस्ट्रेंट एक्ट**, 1929,**
(9) मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेग्नेंसी एक्ट**, 1971,**
(10) नेशनल कमीशन ऑफ विमेन एक्ट**, 1990,**
(11) मिनिमम वेज एक्ट**, 1948,**
(12) बॉन्डेड लेबर सिस्टम एबोलिशन एक्ट**, 1976,**
(13) स्पेशल मैरिज एक्ट**, 1954,**
(14) विदेशी विवाह अधिनियम**, 1969,**
(15) भारतीय तलाक अधिनियम**, 1969**[8]**.**
(16) महिलाओं का अशिष्ट प्रतिनिधित्व निषेध अधिनियम**, 1986,**
(17) संरक्षक और वार्ड अधिनियम**, 1869,**
(18) समान पारिश्रमिक अधिनियम**, 1976.**

ऊपर बताए गए काम हिंसा के खिलाफ महिलाओं के मानवाधिकार की रक्षा के लिए ज़रूरी हैं।

हर तरह के भेदभाव से आज़ादी का अधिकार:

पुरुष-प्रधान सामाजिक ढांचे में महिलाओं को उनके पुरुष पार्टनर से कमतर माना जाता है। उनके बायोलॉजिकल अंतर को उनकी कमज़ोरी और उनके दबने का आधार माना जाता है। विमेंस कन्वेंशन महिलाओं की कमज़ोर स्थिति और ज़ुल्म को सिर्फ़ पुरुषों और महिलाओं के बीच असमानता की समस्या के तौर पर नहीं, बल्कि महिलाओं के साथ सेक्स और जेंडर भेदभाव का नतीजा मानता है। कन्वेंशन का मकसद महिलाओं को उनकी निजी और सामूहिक क्षमता को पहचानने में असरदार होना है, न कि सिर्फ़ महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकारों की सुरक्षा देना[9]।

भारत के संविधान ने महिलाओं को बराबरी का बुनियादी अधिकार और धर्म, जाति और लिंग के आधार पर भेदभाव न किए जाने का अधिकार दिया है। उनके साथ हुए अन्याय को खत्म करने के लिए, संविधान ने अनुच्छेद 15 (3) में एक खास नियम शामिल किया, जिससे राज्य को महिलाओं के पक्ष में कानून/नियम बनाकर उनकी सामाजिक, आर्थिक और

[6] मर्मोट, एम. (2005). हेल्थ में असमानता के सामाजिक कारण। द लैंसेट, 365(9464), 1099–1104. https://doi.org/10.1016/S0140-6736(05)71146-6

[7] ग्रुस्किन, एस., मिल्स, ई. जे., और टारनटोला, डी. (2007). हेल्थ और ह्यूमन राइट्स का इतिहास, सिद्धांत और प्रैक्टिस. द लैंसेट, 370(9585), 449–455. https://doi.org/10.1016/S0140-6736(07)60309-7

[8] वही

[9] वही

राजनीतिक हालत सुधारने और उन्हें बराबरी देने की इजाजत मिली। प्राइवेट और फ़ैमिली लाइफ़ का अधिकार: अमेरिकन कन्वेंशन ऑन मानवाधिकार के अनुच्छेद 11 में प्राइवेसी के अधिकार का ज़िक्र है, जिसमें यह बताया गया है:

हर किसी को अपने सम्मान का सम्मान और अपनी इज़्ज़त को पहचान दिलाने का अधिकार है।

सम्मान और इज़्ज़त प्राइवेट गुण हैं जिन्हें कम करने में सरकार की कोई दिलचस्पी नहीं है। प्राइवेट और फ़ैमिली लाइफ़ का अधिकार, परिवार बनाने के अधिकार से अलग है, हालाँकि कुछ मकसदों के लिए बाद वाले अधिकार को पहले वाले का हिस्सा माना जा सकता है। प्राइवेट और फ़ैमिली लाइफ़ के अधिकार में आज़ादी के हित शामिल हैं। पॉलिटिकल कवनेंट का अनुच्छेद 17 यह बताता है कि: किसी की भी प्राइवेसी, परिवार, घर या लेटर में मनमाना या गलत दखल नहीं दिया जाएगा, न ही उसके सम्मान और इज़्ज़त पर गैर-कानूनी हमला किया जाएगा[10]।

पॉलिटिकल कवनेंट का अनुच्छेद 23 और इकोनॉमिक कवनेंट का अनुच्छेद 10 दोनों ही परिवार को समाज की नैचुरल और बुनियादी ग्रुप यूनिट के तौर पर पहचानते हैं। पहले वाले में कहा गया है कि शादी की उम्र के पुरुषों और महिलाओं के शादी करने और परिवार बनाने के अधिकार को मान्यता दी जाएगी। बाद वाला यह मानता है कि बच्चे के जन्म से पहले और बाद में एक सही समय के दौरान माताओं को खास सुरक्षा दी जानी चाहिए। ऐसे समय में काम करने वाली मांओं को पेड़ लीव या सही सोशल सिक्योरिटी बेनिफिट्स के साथ छुट्टी मिलनी चाहिए।

मानसिक स्वस्थया:

मानसिक स्वास्थ्य में महिलाओं के मेंटल और बिहेवियरल डिसऑर्डर से जुड़ी स्वास्थ्य शामिल है, जो दुनिया में लोग महसूस करते हैं। इसमें ऑर्गेनिक, जिसमें सिम्प्टोमैटिक, मेंटल डिसऑर्डर शामिल हैं; साइकोएक्टिव सब्सटेंस के इस्तेमाल से होने वाले मेंटल और बिहेवियरल डिसऑर्डर; सिज़ोफ्रेनिया, सिज़ोटाइपल और डिल्यूज़नल डिसऑर्डर; मूड (अफेक्टिव) डिसऑर्डर; न्यूरोटिक, स्ट्रेस से जुड़े और सोमैटोफॉर्म डिसऑर्डर; फिजियोलॉजिकल गड़बड़ी और शारीरिक फैक्टर से जुड़े बिहेवियरल सिंड्रोम; एडल्ट पर्सनैलिटी और बिहेवियर के डिसऑर्डर; मेंटल रिटार्डेशन; साइकोलॉजिकल डेवलपमेंट के डिसऑर्डर; बिहेवियरल और इमोशनल डिसऑर्डर जो आमतौर पर बचपन और टीनएज में शुरू होते हैं; और अनस्पेसिफाइड मेंटल डिसऑर्डर शामिल हैं। महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी रिपोर्ट और फैक्ट्स नीचे दिए गए हैं:

- महिलाओं में न्यूरोसाइकिएट्रिक डिसऑर्डर से होने वाली डिसेबिलिटी का लगभग 41.9% हिस्सा अवसाद से होता है, जबकि पुरुषों में यह 29.3% है।
- बुज़ुर्गों की मुख्य मानसिक स्वास्थ्य प्रॉब्लम अवसाद , ऑर्गेनिक ब्रेन सिंड्रोम और डिमेंशिया हैं। ज़्यादातर औरतें हैं
- हिंसक लड़ाइयों, सिविल वॉर, आपदाओं और जगह बदलने से प्रभावित 50 मिलियन लोगों में से लगभग 80% औरतें और बच्चे हैं
- औरतों के खिलाफ़ हिंसा की लाइफ़टाइम प्रिवेलेंस रेट 16% से 50% तक है
- पाँच में से कम से कम एक औरत अपनी ज़िंदगी में रेप या रेप की कोशिश का शिकार होती है[11]।

इसलिए, औरतों की स्वास्थ्य औरतों का बेसिक मानवाधिकार है। औरतों के खिलाफ़ भेदभाव को दूर करने के लिए एक्शन लेने से ही भारत की आज़ादी का सपना पूरा हो सकता है - एक ऐसा भारत जहाँ सभी लोगों को हेल्दी और प्रोडक्टिव ज़िंदगी जीने का मौका मिले। पब्लिक और प्राइवेट लेवल पर कई ऑर्गनाइज़ेशन देश के दूर-दराज के इलाकों में औरतों की स्वास्थ्य के लिए सुविधाएँ देने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। औरतों की स्वास्थ्य पॉलिसी और प्रोग्राम को औरतों के ग्रुप, डेवलपमेंट ग्रुप, स्वास्थ्य वर्कर एसोसिएशन और मीडिया जैसे संभावित साथियों के साथ काम करने की ज़रूरत है। औरतों के सशक्त मेंट और औरतों की स्वास्थ्य पॉलिसी के बीच के लिंक पर मज़बूती से ध्यान दिए बिना, प्रोग्राम 'बिना जड़ों वाली घास' जैसे हो सकते हैं। सरकार ने औरतों की स्वास्थ्य के लिए कई पॉलिसी शुरू की हैं। समाज के अलग-अलग हिस्सों की भागीदारी से बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं देने और महिलाओं की स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं को दूर करने का लक्ष्य हासिल किया जा सकता है।

[10] वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइज़ेशन. (2012). महिलाओं के खिलाफ हिंसा को समझना और उससे निपटना (पेज 1–12). WHO प्रेस.

[11] वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइज़ेशन. (2012). महिलाओं के खिलाफ हिंसा को समझना और उससे निपटना (पेज 1–12). WHO प्रेस.

निष्कर्ष

महिलाओं के मानवाधिकार पर चर्चा, खासकर उनकी मेंटल और शारीरिक स्वास्थ्य के संदर्भ में, यह बताती है कि स्वास्थ्य सिर्फ़ एक मेडिकल चिंता नहीं है, बल्कि यह एक बुनियादी मानवाधिकार है जो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक हालात से बनता है। महिलाओं की भलाई पर जेंडर के आधार पर भेदभाव, शिक्षा और स्वास्थ्य केयर तक असमान पहुंच, गरीबी, हिंसा और रोक लगाने वाले सामाजिक नियमों का बहुत असर पड़ता है। ये वजहें कई तरह की कमज़ोरियां पैदा करती हैं जो कुपोषण, मां की स्वास्थ्य के खतरों, प्रजनन के सीमित विकल्पों और काम से जुड़े खतरों के ज़रिए महिलाओं की शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा असर डालती हैं, साथ ही स्ट्रेस, एंग्जायटी, ट्रॉमा और अवसाद के ज़रिए उनकी मानसिक स्वास्थ्य को भी कमज़ोर करती हैं।

संवैधानिक गारंटी और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार फ्रेमवर्क होने के बावजूद, पॉलिसी कमिटमेंट और असलियत के बीच एक बड़ा अंतर बना हुआ है। स्वास्थ्य केयर का अपर्याप्त इंफ्रास्ट्रक्चर, मानसिक स्वास्थ्य को लेकर कलंक, जेंडर के प्रति संवेदनशील सेवाओं की कमी और अधिकारों के बारे में कम जागरूकता जैसी रुकावटें महिलाओं की अच्छी देखभाल तक पहुंच को रोकती रहती हैं। इसके अलावा, क्लास, जाति, गांव-शहरी जगह, विकलांगता और हाशिए पर मौजूद पहचान के आधार पर अलग-अलग तरह के नुकसान महिलाओं के बीच स्वास्थ्य में असमानता को और बढ़ाते हैं। इसलिए, मेंटल और शारीरिक स्वास्थ्य के मामले में महिलाओं के मानवाधिकार को पूरा करने के लिए एक समान और राइट्स-बेस्ड अप्रोच की ज़रूरत है। इसमें पब्लिक स्वास्थ्य सिस्टम को मजबूत करना, सस्ती और आसानी से मिलने वाली जेंडर-रिस्पॉन्सिव स्वास्थ्य केयर पक्का करना, मानसिक स्वास्थ्य को प्राइमरी केयर में शामिल करना, एजुकेशन और लीगल अवेयरनेस को बढ़ावा देना, और स्ट्रक्चरल इनसमानता और जेंडर-बेस्ड वायलेंस को एड्रेस करना शामिल है। डिसीजन-मेकिंग, इकोनॉमिक मौकों और कम्युनिटी सपोर्ट मैकेनिज्म में पार्टिसिपेशन के ज़रिए महिलाओं को सशक्त करना भी उतना ही ज़रूरी है। स्वास्थ्य पॉलिसी को डिग्निटी, समानता और जस्टिस के मानवाधिकार प्रिंसिपल्स से जोड़कर ही समाज सभी महिलाओं के लिए कॉम्प्रिहेंसिव वेल-बीइंग और डिग्निटी वाली ज़िंदगी पक्का करने की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

संदर्भ–

1. वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइज़ेशन. (2015). *मैटरनल मॉर्टेलिटी में ट्रेंड्स: 1990 से 2015*. WHO प्रेस.
2. यूनाइटेड नेशंस. (2015). *हमारी दुनिया को बदलना: सस्टेनेबल डेवलपमेंट के लिए 2030 एजेंडा*. यूनाइटेड नेशंस.
3. यूनाइटेड नेशंस विमेन. (2020). *कोविड-19 प्रतिक्रिया में जेंडर समानता और महिलाओं का सशक्तिकरण*. UN विमेन.
4. सेन, ए. (1999). *डेवलपमेंट ऐज़ फ्रीडम*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
5. पटेल, वी., क्लेनमैन, ए., और सारासेनो, बी. (2016). मानसिक विकारों वाले लोगों के मानवाधिकारों की रक्षा। द *लैंसेट साइकियाट्री*, *3*(10), 944–946. https://doi.org/10.1016/S2215-0366(16)30218-2
6. फार्मर, पी. (2003). *पावर की बीमारियां: स्वास्थ्य, मानवाधिकार, और गरीबों पर नया युद्ध*. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.
7. फ्रीडमैन, एल. पी., वाल्डमैन, आर. जे., डी पिन्हो, एच., और विर्थ, एम. ई. (2005). *पावर किसके पास है? महिलाओं और बच्चों के लिए स्वास्थ्य प्रणाली को बदलना*. अर्थस्कैन.
8. हॉक्स, एस., और ब्यूज़, के. (2013). जेंडर और वैश्विक स्वास्थ्य: सबूत, नीति, और असुविधाजनक सत्य। द *लैंसेट*, *381*(9879), 1783–1787. https://doi.org/10.1016/S0140-6736(13)60253-6
9. वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइज़ेशन. (2018). *मानसिक स्वास्थ्य एटलस 2017*. WHO प्रेस.
10. यूनाइटेड नेशंस. (1979). *महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने पर कन्वेंशन*. यूनाइटेड नेशंस.
11. क्रीगर, एन. (2003). जेंडर, सेक्स और स्वास्थ्य: इनके बीच क्या संबंध हैं—और यह क्यों महत्वपूर्ण है? *अंतर्राष्ट्रीय महामारी विज्ञान जर्नल*, *32*(4), 652–657. https://doi.org/10.1093/ije/dyg156
12. वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइज़ेशन और यूनाइटेड नेशंस पॉपुलेशन फंड. (2019). *मैटरनल मानसिक स्वास्थ्य*. WHO प्रेस.
13. UNFPA. (2014). *1.8 बिलियन की ताकत: किशोर, युवा और भविष्य का परिवर्तन*. यूनाइटेड नेशंस पॉपुलेशन फंड.

Received: 02.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

भारतीय ज्ञान परंपरा में कला की विशेषताओं पर ग्रंथ

राहुल यादव[1]
gwalrahul42@gmail.com

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा जिसकी जड़ें प्राचीन संस्कृत साहित्य और वैदिक काल से चली आ रही मौखिक परंपराओं में गहरी जमी हैं कला को केवल सजावट या मनोरंजन के रूप में नहीं, बल्कि एक पवित्र साधना के रूप में देखी जा शक्ति है, जो भौतिक और दिव्य जगत के बीच सेतु का काम करती है। कला के विभिन्न रूप चाहे वे नृत्य और नाटक जैसी प्रदर्शन कलाएँ हों, चित्रकला और मूर्तिकला जैसी दृश्य कलाएँ हों, या वास्तुकला संबंधी अभिव्यक्तियाँ हों उन्हें 'रस' सौंदर्यपरक भावना जगाने, ब्रह्मांडीय सिद्धांतों में सामंजस्य स्थापित करने, और कलाकार तथा दर्शकों को 'मोक्ष' की ओर ले जाने का माध्यम माना जाता है। कला की विशेषताओं पर लिखे गए ग्रंथ इस परंपरा की आधार शिला हैं; ये तकनीकी नियमों (शिल्प या कला विद्या), सौंदर्य सिद्धांतों, प्रतिमा-माप संबंधी अनुपातों, प्रतीकात्मक परिपाटियों और दार्शनिक आदर्शों को संहिताबद्ध करते हैं। ये ग्रंथ इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सच्ची कला 'शास्त्र-बद्ध' होनी चाहिए अर्थात् शास्त्र-सम्मत नियमों द्वारा शासित किंतु साथ ही यह कुशल कलाकार (शिल्पी या नर्तक) को अपनी रचनात्मक व्याख्या करने की स्वतंत्रता भी प्रदान करती है।

प्रमुख ग्रंथों में भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' (लगभग 200 ईसा पूर्व–200 ईस्वी), 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' का 'चित्रसूत्र' खंड (लगभग 5वीं–6वीं शताब्दी ईस्वी), और 'शिल्पशास्त्र' जैसे कि 'मानसार', 'मयमत', तथा इनसे संबंधित ग्रंथ जैसे 'समरांगण सूत्रधार' शामिल हैं। ये सभी ग्रंथ मिलकर कला के 'लक्षणों' (विशेषताओं) पर प्रकाश डालते हैं: अनुपात (प्रमाण या ताल), समरूपता (सम), संतुलन, भावनात्मक अभिव्यक्ति (भाव और रस), रंग सिद्धांत, परिप्रेक्ष्य, और आध्यात्मिक उद्देश्य। कला मूलतः 'अनुकृति' (प्रकृति की नकल) है, जो परिष्कृत होकर 'अनुभव' (अनुभवजन्य साक्षात्कार) के स्तर तक पहुँच जाती है; इस प्रक्रिया में कलाकार दिव्य ऊर्जा के एक माध्यम (वाहक) के रूप में कार्य करता है। पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र के विपरीत जो अक्सर रूप और कार्य को अलग-अलग करके देखता है भारतीय ज्ञान परंपरा कला को जीवन के चार लक्ष्यों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साथ एकाकार करके देखती है।

नाट्यशास्त्र: प्रदर्शन कलाओं और रस सिद्धांत की आधारशिला

'नाट्यशास्त्र' जिसका श्रेय भरत मुनि को दिया जाता है और जिसे अक्सर 'पंचम वेद' की संज्ञा दी जाती है प्रदर्शन कलाओं पर लिखा गया अब तक का सबसे प्राचीन और सर्वाधिक व्यापक विश्वकोशीय ग्रंथ है। इसमें 36–37 अध्याय और 6000 से ज़्यादा श्लोक हैं; यह नाटक, नृत्य, संगीत और मंच कला को व्यवस्थित रूप देता है। भरत इसे ब्रह्मा द्वारा दिव्य रूप से प्रकट किया गया मानते हैं, इसकी संरचना की शुरुआत उत्पत्ति अध्याय एक से होती है, जिसके बाद नाट्यशाला की वास्तुकला अध्याय द्वितीय और तृतीय , पूर्वरंग जैसी प्रारंभिक विधियाँ अध्याय पंचम, और अध्याय षष्टः में 'रस' पर आधारित मुख्य सौंदर्य-सिद्धांत आते हैं। बाद के अध्यायों में अभिनय चार प्रकार की अभिव्यक्ति आंगिक, वाचिक, आहार्य, सात्विक, मुद्राओं, वेशभूषा, संगीत और यहाँ तक कि प्रदर्शन की कमियों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ का समापन नाटक के सामाजिक और अनुष्ठानिक कार्यों के वर्णन के साथ होता है।

नाट्यशास्त्र में कला की सबसे खास विशेषता 'रस सिद्धांत' है जिसे "नाटक की आत्मा" कहा जाता है। 'रस' का शाब्दिक अर्थ है "सार" या "तत्व"; यह उस परिष्कृत सौंदर्य-भाव को दर्शाता है जिसका अनुभव एक संवेदनशील दर्शक करता है। भरत का प्रसिद्ध रस-सूत्र कहता है: "विभावानुभावव्यभिचारिभाव-संयोगाद् रस-निष्पत्तिः" रस की उत्पत्ति विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के, स्थायी भाव के साथ होने वाले संयोग से होती है।

[1] **शोधार्थी, प्रदर्शनकारी कला विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

भरत ने मूल रूप से आठ रसों की सूची दी है: श्रृंगार (प्रेम/कामुक), हास्य (हास्य), करुण (शोक/करुणा), रौद्र (क्रोध), वीर (वीरता), भयानक (भय/डर), बीभत्स (घृणा/जुगुप्सा) और अद्भुत (आश्चर्य/विस्मय)। बाद के टीकाकारों, जैसे अभिनवगुप्त (10वीं–11वीं शताब्दी), ने 'शांत' (शांति/प्रशांतता) को नौवें रस के रूप में जोड़ा, और इसे आध्यात्मिक परमानंद की ओर ले जाने वाला सर्वोच्च रस माना।

रस कोई कच्चा या अनगढ़ भाव नहीं है, बल्कि यह एक सार्वभौमिक और वैयक्तिक-मुक्त अनुभव है। कलाकार इसे विभाव (जैसे, श्रृंगार रस के लिए नायक-नायिका), शारीरिक प्रतिक्रियाओं (करुण रस के लिए आँसुओं जैसा अनुभव), और क्षणिक भावों के माध्यम से व्यक्त करता है। दर्शक के मन में दबी हुई भावनाएँ जागृत हो जाती हैं, जिससे एक ऐसा गहन आनंद उत्पन्न होता है जो ब्रह्मानंद के समान होता है। अभिनवगुप्त की टीका 'अभिनवभारती' इस विचार को और अधिक परिष्कृत करती है रस स्वतः-प्रमाणित होता है, कलाकृति में मूर्त रूप लेता है, और अहंकार से परे होता है; यह मोक्ष की एक झलक या पूर्वाभास प्रदान करता है।

कला की विशेषताएँ व्यावहारिक तत्वों तक भी विस्तृत हैं। नृत्य को ताल और लय का पालन करना अनिवार्य है इसमें अभिनय प्राकृतिक गतियों का ही दर्पण होता है, किंतु उसे एक आदर्श रूप प्रदान किया जाता है। संगीत में स्वर, राग, और वाद्य यंत्रों का समावेश होता है, जिन्हें तार वाले, फूँक वाले, ताल वाले और ठोस वाद्य यंत्रों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। मंच-सज्जा शुभ दिशा-विन्यास सुनिश्चित करने हेतु वास्तु-शास्त्र के सिद्धांतों का अनुसरण करती है। अभिनय में अतिशयोक्ति अथवा तालमेल की कमी जैसे दोषों की आलोचना की जाती है, और इसके विपरीत सामंजस्य तथा उचित अनुपात पर विशेष बल दिया जाता है।

'नाट्यशास्त्र' का प्रभाव समस्त भारतीय कलाओं पर परिलक्षित होता है: उदाहरणार्थ, मंदिरों में किया जाने वाला नृत्य देवदासी परंपरा। भरतनाट्यम और ओडिसी जैसी शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ इसके करणों (108 नृत्य इकाइयाँ) और हस्त से प्रत्यक्ष रूप से प्रेरित हैं। इसका रस ढाँचा काव्य, चित्रकला और मूर्तिकला में व्याप्त है, जहाँ आकृतियाँ मुद्रा और अभिव्यक्ति के माध्यम से भाव व्यक्त करती हैं। आईकेटी में, प्रदर्शन कला समग्र हैनाट्य में शिल्प और कला दोनों समाहित हैं,

विष्णुधर्मोत्तर पुराण का चित्रसूत्र: चित्रकला का सिद्धांत और अभ्यास

नाट्य शास्त्र प्रदर्शन पर केंद्रित है, जबकि चित्रसूत्र (विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तीसरे खंड के अध्याय 35-43) चित्रकला को समर्पित प्रमुख प्राचीन ग्रंथ है। लगभग 5वीं-6वीं शताब्दी ईस्वी में संकलित, यह लुप्त हो चुके प्राचीन ज्ञान को संरक्षित करने का दावा करता है और चित्रकला को कलाओं में सर्वोच्च स्थान देता है "पक्षियों में बाज के समान"। यह चित्रकला को चित्र-योग के रूप में देखता है, जो मंदिर अनुष्ठानों के समान एक ध्यानपूर्ण पूजा है।

ग्रन्थ की शुरुआत चित्रकला को नृत्य से जोड़ते हुए होती है: "जो नृत्य जानता है, वह चित्र जानता है", जो चित्रसूत्र कलाओं के अंतर्संबंध को रेखांकित करता है। इसमें सतहों की तैयारी मिट्टी या मिट्टी, गोंद से बना कैनवास, रंगद्रव्य पांच प्राथमिक रंग सफेद, पीला, लाल, काला, नीला, सैकड़ों में मिश्रित, ब्रश और वर्ण रंग लगाना, रेखा, भंग और प्रमाण जैसी तकनीकें शामिल हैं।

प्रमुख विशेषताओं में प्रतिमा विज्ञान और अनुपात शामिल हैं। आकृतियों को ताल चेहरे की लंबाई इकाई में मापा जाता है। देवी-देवताओं और नायकों की आकृतियाँ नवताल नौ मुखों की ऊँचाई के अनुसार आदर्श अनुपात में होती हैं: सिर 1 ताल, धड़ 3, पैर 4, इत्यादि। विभिन्न वर्गों में भिन्नताएँ होती हैं उत्तम आकृतियाँ लंबी और आनुपातिक होती हैं, मध्यम और अधम आकृतियाँ छोटी या कथात्मक प्रभाव के लिए विकृत होती हैं। क्षय-वृद्धि, परिप्रेक्ष् और प्रक्षेपण गहराई उत्पन्न करते हैं। इस ग्रंथ में 12 प्रकार के भंग (मुद्राओं) और आंखों, हाथों और मुद्राओं के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति का विस्तृत वर्णन है।

रंगों का प्रतीकात्मक अर्थ रसों से जुड़ा है: हरा रंग श्रृंगार के लिए, सफेद हास्य के लिए, लाल रौद्र के लिए, इत्यादि, जो भरत की छवि प्रस्तुत करते हैं। रचना कर्म-विन्यास का अनुसरण करती है, जिसमें पृष्ठभूमि प्राकृतिक दृश्यों या दिव्य लोकों का आभास कराती है। कलाकार को विषय पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए और श्रद्धापूर्वक सृजन करना चाहिए कला दर्शकों को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है और मन को शुद्ध करती है।

दार्शनिक दृष्टि से, चित्रसूत्र चित्रकला को मानव जाति का खजाना मानता है, जो धर्म का उपदेश देने और भक्ति को जागृत करने में सक्षम है। यह मंदिर भित्ति चित्रों, पांडुलिपि चित्रण और सुवाह्य कलाकृतियों के लिए नियम निर्धारित करता है। लेप और रेखा तकनीकें चित्रों की टिकाऊपन और स्पष्टता सुनिश्चित करती हैं। बाद के फ़ारसी-प्रभावित मुग़ल लघुचित्रों के विपरीत, यह परंपरा रेखीय लालित्य, सपाट रंग-क्षेत्रों और यथार्थवादी के बजाय प्रतीकात्मक दृष्टिकोण पर ज़ोर देती है।

चित्रसूत्र की विरासत अजंता, बाघ और एलोरा के भित्तिचित्रों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जहाँ चित्रों का अनुपात और रस-उद्भावक भाव इन्हीं दिशानिर्देशों का पालन करते हैं। यह नाट्य और शिल्प के बीच एक सेतु का काम करता है, जिससे चित्रकला दीवारों पर अंकित नाटक का ही एक त्रि-आयामी विस्तार बन जाती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में, दृश्य कला की विशिष्टताएँ माप में सटीकता, भावनात्मक उद्बोधन और भक्तिपूर्ण उद्देश्य यह सुनिश्चित करती हैं कि यह कला 'दर्शन' के रूप में कार्य करे।

शिल्प शास्त्र: वास्तुकला, मूर्तिकला और प्रतिमा विज्ञान

शिल्प शास्त्रों में शिल्प हस्तकला, मूर्तिकला, वास्तुकला से संबंधित ग्रंथों का समावेश है। इनमें प्रमुख हैं मानसार (लगभग 7वीं-8वीं शताब्दी, 70 अध्याय, ~10,000 श्लोक), मयमत, राजा भोज द्वारा रचित समरांगण सूत्रधार और शिल्प रत्न। ये ग्रंथ वास्तु शास्त्र, मंदिर निर्माण, प्रतिमा निर्माण और शहरी डिज़ाइन का विस्तृत विवरण देते हैं।

इनकी मूल विशेषताएँ 'प्रमाण' और प्रतिमा-माप विज्ञान पर केंद्रित हैं। मूर्तियों में 'ताल' प्रणालियों का उपयोग किया जाता है विष्णु के रूपों के लिए 'दशताल', और अधिकांश देवी-देवताओं के लिए 'नवताल'; इनमें अंगों, चेहरों और आभूषणों के लिए विशिष्ट अनुपात निर्धारित होते हैं। उदाहरण के लिए, मानसार में पीठिका की ऊँचाई, शरीर की भंगिमाओं (सौंदर्य के लिए 'त्रिभंग' या त्रि-वक्रता), और 'लक्षणों' का विधान है: जैसे शिव के साथ डमरू और त्रिशूल, तथा विशिष्ट मुद्राएँ। ये अनुपात 'सम' और 'सुंदर' सुनिश्चित करते हैं, जो ब्रह्मांडीय व्यवस्था को परिलक्षित करते हैं।

वास्तुकला 'वास्तु पुरुष मंडल' का अनुसरण करती है यह एक ऐसी ग्रिड है जिसमें स्थल को 64 या 81 वर्गों में विभाजित किया जाता है, और प्रत्येक स्थान पर विशिष्ट देवी-देवताओं को स्थापित किया जाता है। मंदिरों का मुख प्रमुख दिशाओं की ओर होता है, और केंद्र में 'गर्भ गृह' स्थित होता है, जो सृष्टि के गर्भ का प्रतीक है। मंदिर की ऊँचाई 'अधिष्ठान', पाद, प्रस्तर, और शिखर के क्रमिक और आनुपातिक क्रम का अनुसरण करती है।

इसमें प्रतीकात्मकता सर्वोपरि है मूर्तियाँ 'रस' को अभिव्यक्त करती हैं ध्यानमग्न देवी-देवताओं के लिए शांत और सौम्य 'शांत रस', तथा योद्धाओं के लिए ओजपूर्ण और गतिशील 'वीर रस'। शिल्प ग्रंथ नाट्य कला के तत्वों को भी समाहित करते हैं मूर्तियाँ 'अभिनय' के समान भंगिमाएँ प्रदर्शित करती हैं। मानसार में नगर नियोजन के अंतर्गत बस्तियों का वर्गीकरण किया गया है इनमें सड़कें ब्रह्मांडीय अक्षों के अनुरूप संरेखित होती हैं, तथा शुभता सुनिश्चित करने के लिए प्रवेश द्वार और जल-निकायों का विधान होता है।

दार्शनिक दृष्टिकोण से, ये ग्रंथ कलाकार को 'विश्वकर्मा' का ही अवतार मानते हैं। सृजन की प्रक्रिया शास्त्रीय नियमों का अनुसरण करती है, ताकि प्रकृति को पुरुष के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से अभिव्यक्त किया जा सके। अनुपातों में किसी भी प्रकार की त्रुटि दुर्भाग्य को आमंत्रित करती है जबकि पूर्णता दैवीय उपस्थिति का आभास कराती है। मायामाता जैसे ग्रंथ मूर्तिकला को लिंग-लक्षण और प्रतिमा-लक्षण अध्यायों में संक्षेपित करते हैं, जिनमें प्रतिष्ठा पर जोर दिया गया है।

ग्रंथों के बीच अंतर्संबंध स्पष्ट हैं: चित्रसूत्र चित्रकला के लिए नृत्य का संदर्भ देता है; शिल्प ग्रंथ अभिव्यंजक रूपों के लिए नाट्य शास्त्र का हवाला देते हैं सभी में ताल माप और रस-प्रेरित भाव समान हैं। आईकेटी में, कला की विशेषताएं मानकीकृत होते हुए भी लचीली हैं शास्त्र ढांचा प्रदान करता है, प्रयोग उसे साकार रूप देता है।

अंतर्संबंध, दार्शनिक आधार और विरासत

ये ग्रंथ एक एकीकृत प्रणाली का निर्माण करते हैं। नाट्य शास्त्र का रस मूर्तिकला और चित्रकला को जीवंत करता है, जहां एक सुगठित प्रतिमा श्रृंगार या भक्ति को प्रेरित करती है। तकनीकी प्रमाण विभिन्न माध्यमों में सौंदर्यपरक सामंजस्य सुनिश्चित करता है। दार्शनिक दृष्टि से, कला उपयोगिता से परे है: यह आनंद उत्पन्न करती है और वेदांतिक या शैव दर्शन के

अनुरूप है जहाँ सौंदर्य ब्रह्म का प्रतिबिंब है। अभिनवगुप्त ने इसे संश्लेषित करते हुए सभी कलाओं को शांत रस के मार्ग के रूप में देखा है।

व्यवहार में, आईकेटी कला ने अजंता गुफाओं, खजुराहो मंदिरों और कथकली नृत्य को प्रभावित किया। आज भी, पारंपरिक कलाकार मंदिर पुनरुद्धार के लिए इन ग्रंथों का अध्ययन करते हैं। रवि वर्मा के चित्रों या भरतनाट्यम नृत्यकला में आधुनिक व्याख्याएँ दिखाई देती हैं, जो मूल विशेषताओं को संरक्षित रखते हुए रस को समकालीन संदर्भों के अनुकूल बनाती हैं। चुनौतियों में लुप्त ग्रंथ और क्षेत्रीय विविधताएँ शामिल हैं, फिर भी परंपरा का लचीलापन लिखित शास्त्रों के साथ-साथ इसके मौखिक गुरु-शिष्य प्रसारण में निहित है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्षतः भारतीय ज्ञान परंपरा में कला पर लिखे गए ग्रंथ उन विशेषताओं को संहिताबद्ध करते हैं जो शिल्प को ब्रह्मांडीय अभिव्यक्ति तक पहुंचाती हैं: सामंजस्य के लिए अनुपात, भावपूर्ण उत्थान के लिए रस, और दिव्यता के लिए प्रतीकवाद। वे समग्र मानव विकास में कला की भूमिका की पुष्टि करते हैं, और रचनाकारों और कला प्रेमियों दोनों के लिए शाश्वत ज्ञान प्रदान करते हैं। भरत की परिकल्पना के अनुसार, सच्ची कला शुद्ध करती है, शिक्षित करती है और मुक्ति प्रदान करती है जो भारतीय ज्ञान परंपरा के सार को समाहित करती है।

संदर्भ

1. भरत मुनि. (1951). *नाट्यशास्त्र* (मनोहर घोष, अनुवाद). कोलकाता: एशियाटिक सोसाइटी
2. अभिनवगुप्त. *अभिनवभारती* (मैसन एवं पटवर्धन के अध्ययन सहित).
3. Kramrisch, S. (1928). *Vishnudharmottara (Part III)*. Calcutta: University of Calcutta Press.
4. मुखर्जी, पारुल. (2001). *विष्णुधर्मोत्तर पुराण का चित्रसूत्र*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
5. आचार्य, पी. के. *मानसार की वास्तुकला* (अनुवादित संस्करण, बहुखंडी).
6. मुखोपाध्याय, द्युतिमान. (2021). भारतीय रस सिद्धांत की नौ भावनात्मक अवस्थाएँ.
7. Cherian, L. B. (2017). *A psychological study of rasa* (UGC Project).
8. भरत मुनि. *नाट्यशास्त्र* (बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, हिंदी अनुवाद). वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान.
9. नगेन्द्र (सं.). *अभिनवभारती* (हिंदी संस्करण). दिल्ली: दिल्ली विश्वविद्यालय.
10. *चित्रसूत्रम्: विष्णुधर्मोत्तर पुराण* (हिंदी व्याख्या सहित संस्करण).
11. पाण्डेय, शैलजा. *मयमतम्* (संस्कृत एवं हिंदी अनुवाद). वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती.
12. शर्मा, श्याम *प्राचीन भारतीय कला, वास्तुकला एवं मूर्तिकला*.

Received: 03.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

Reflections on the work of non-party social movements A living joinery of Aruna Roy: The personal is political: An activist's memoir

RANDHIR KUMAR GAUTAM*
gautamrandhir964@gmail.com

Introduction –

There are many approaches to reading an intellectual biography: (1) To answer the question of the quest within the biography. (2) To understand the charisma of the personality. (3) To gain insight into the society itself. I found all these approaches while reading this autobiography, titled "The Personal Is Political: An Activist's Memoir." One of the invitations in this book is to revisit power and democracy and empower marginalised communities. The emphasis is on holding power accountable by dismantling centres of authority.

A movement towards a just society, emphasising awareness of citizenship rights, human rights, and environmental justice, marks the 21st century. Social movements possess their own epistemologies, yet only a few contributions represent and integrate activist knowledge into mainstream intellectual discourse. Knowledge can be categorised into two forms: experts and activists, with the latter being transformative in nature. Aruna's approach is rooted in an emancipatory and transformative methodology, reflecting a new kind of praxeology.

We live in a rapidly changing and challenging time, where civil society in particular, and non-party politics in general, have lost their potential and legitimacy to build people's movements and challenge anti-democratic governance. However, Aruna Roy, through her social movements, re-established the non-party dynamics of power and a distinction between activists and civil society. Civil society, she notes, is often more faceless and quieter. She believes that for democracy to thrive, civil society must speak out. Through the initiatives of mass movement and citizenship building a commitment to constitutional morality, social movement creates agencies that hold the government accountable and creates a condition for people's democracy. As a result, she cultivated a non-party movement, as explained further.

This book focuses on the challenges of 21st-century India, bringing a legacy of people's movements, and also attempts to engage with the youth—India's future—in a language that resonates with them. The structure of the book is as follows:

1. A Prelude
2. The Personal Is Political
3. Our Politics, Our Bodies, Our Lives
4. Our Development... at Their Cost
5. Work as Politics of Inequality and Justice in Practice

* **Executive Co-Nurturer, Vishwaneedam Center for Asian Blossoming, Chennai**

6. Voices of Conscience: To Act or Not to Act, That Is the Question
7. The Complexities of Activism
8. Mazdoor Kisan Shakti Sangathan: The Early Years
9. (In) Spite of It All: Parochialism, Identity, Religion – and Politics
10. What Shapes Us: Culture – The Subtext of Life
11. Moral Choices: The Continuing Dilemma
12. Great Expectations and Hard Times
13. The Power of People's Participation
14. Crafty Inversions of Democracy: Ideas and Ideologies
15. No Full Stops: The End Is the Beginning

The unique contributions of the book, particularly for readers, Gandhian scholars, and public intellectuals in general, lie in its attempt to effectively communicate with the youth in an accessible and relatable language. It depicts the new dynamics of social movements, such as the Right to Information Act and the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act. Aruna's influence extends significantly to the struggle for justice for the vast unorganised working-class people in rural areas as well as her work for transparency in the nation's governance. The mainstream intellectual discussion finds in her an activist dimension, creating hope among the activists and providing new intellectual perspectives.

Offering of sociological insights –

Sociologist C. Wright Mills once wrote, "Politics is the public construction of private troubles." Aruna Roy titled her book *The Personal is Political* to be understood in sociological terms, as a reflection of her life as a social contribution. The phrase "the personal is political" can reveal a lot about the book through this lens. She has become a phenomenon, which later contributes to the charisma of her personality. In the Weberian sense, that charisma also functions as authority.

While explaining the title, Aruna Roy says, "There are two words: 'personal' and 'political', but there is a third word, which is 'private'. It remains silent in this book." She emphasises that the private world should remain private. She believes the personal and the political are interlinked because personal life is often shaped by political actions, and political actions are motivated and influenced by personal reactions and reflections. Furthermore, she explains that an activist's personal life is often shaped by political dilemmas. A deeper reading of the book reveals the political dilemmas Aruna has faced in contexts such as gender, caste, region, and more. Her personal responses to these dilemmas and the actions she took paved the journey of Aruna Roy. How she channelled her anger into social empowerment and betterment offers valuable lessons, both for activists and activist intellectuals. The story of most activists' lives illustrates a profound interrelationship between the personal and the political. After all, the motivation—whether love or anger—stems from a personal reaction to injustice, poverty, patriarchy, or even grief. Most of us feel upset about injustice, but the difference between those who don't act, referred to as civil society, and those called activists is that activists take action. This idea resonates with Arnold Toynbee's concept of the "creative minority". The sociologist described the creative minority as a group capable of driving social transformation within society.

She also discusses how the concept of service (bureaucratic position) becomes meaningful when the self recognises its connection to a larger society and how the quest for social transformation originates from the seeds of ideas. She questions the value of her role as an IAS officer, which she found meaningless in the context of her desire to build a career aligned with societal values and free from a power-centric approach.

In 1975, Aruna Roy resigned from the IAS to work with peasants and workers in rural Rajasthan. In 1990, she co-founded the Mazdoor Kisan Shakti Sangathan (MKSS). The MKSS struggles of the mid-1990s for wages and other rights led to the emergence of the now-celebrated Right to Information movement. Aruna Roy continues to actively participate in various democratic struggles and campaigns. (Roy, 2018)

From her early days, she realised that state power and the agencies operating under it imposed significant limitations. She, instead, preferred to be a co-traveller with those who worked for social welfare. She gave preference to society over state, a tradition which was rooted deeply in Gandhi, Vinoba Bhave, Jayaprakash Narayan and M.N. Roy.

She embraced what can be described as a "non-party orientation" in both her politics and personality. Her life was marked by *sadhana* (dedication) and struggle, as she strove to create a world where dignity exists in its truest and fullest sense.

This book addresses the enduring social problems in society while reflecting Aruna Roy's love for rural, natural, and communal life. Her life journey advocates for constitutional morality, environmental justice, workers' rights, people's democracy, and feminism. From childhood, she exhibited great sensitivity, and the Gandhian way became the guiding orientation of her life.

Her early career amidst Delhi's urban middle class did not captivate her. She was rather attracted towards the rural areas, in which, as Gandhi ji said, lived the heart of India. Gandhi's assassination and the Partition of India had a deep impact on her. She looked upon politics not only as a means of power, but she felt it offered an opportunity to achieve freedom, justice and liberty. This shows her commitment to a life focused on politics. Her feminist perspectives were tempered by Gandhi's philosophy of balancing justice and compassion with action and purpose.

As sociologist C. Wright Mills said, "History and biography cannot be studied separately." In this book, there are stories of many Arunas. By this, I mean that while writing her biography, she also gave significant space to her fellow travellers. She writes, "The women in Tilonia—Naurti, whom I met at a literacy class in 1982, and from whom I learnt of the politics of poverty; and Bhuriya, the rugged old woman who gave us the courage to fight economic and feudal oppression head-on in the initial struggles of the MKSS" (page 31). As the living legacy of leadership, she has cultivated a peculiar leadership style rooted in togetherness and fraternity. We find her fighting the stereotypes of society with a sense of collectivity and fraternity in mobilising the masses, and she is quite affable. For her, friendship is not confined by formal boundaries, and she never approaches any group in society as "others.".

The book brings people together, transcending even ideological barriers and uniting diverse groups. Aruna Roy promotes a sense of sisterhood and togetherness in being, doing, and thinking, creating a powerful example of inclusive and compassionate leadership.

Journey for Feminism

"Feminism comes from her reading of books and learning from the field. She writes, *'Feminist theory and writings by Mary Wollstonecraft, Virginia Woolf, Germaine Greer, Jill Tweedie, Vina Mazumdar, and Devaki Jain have all provided me a framework to lodge many of the questions that troubled me as a young middle-class woman. That was the beginning. Later, in rural India, and in the many years spent with Naurti, Bhuriya, and many other rural working-class women, inequality was first and foremost a question of hunger and work'*" (page 36). For her, feminism asserts that for women, everything personal is political, and the demand for equality arises from this very idea.

The title of Aruna Roy's memoir, The Personal is Political, reflects the feminist catchphrase that gained popularity during the second wave of the movement in the 1960s. The phrase aptly encapsulates the book's core concept: the convergence of personal experiences with broader political issues. In this book, Roy examines how female activists confront patriarchy and gender injustice. She delves into the deeply embedded social conditioning of masculinity, which is so sophisticated and internalised that fully understanding and addressing it requires a thoughtful and compassionate approach.

In a similar vein, she recognises the intersectionality of oppression. Aruna's mention of working with an intersectional understanding before the term was coined is especially enlightening. The oppression faced by the women she worked with in rural Rajasthan was rooted not only in their gender identity but also in their status as Dalit and working-class women.

The recurring themes of communication and non-violence in her memoirs are both understandable and integral to her perspective. In another section of the book, Aruna recalls her mother imparting an early feminist lesson: that what society often refers to as "the labour of love" can, in many lived situations, feel like "monotony and tedium." Aruna writes, "She told me when I was about eleven not to give in to pressure to get married and get caught up in the cycle of the home and its chores." Aruna Roy's feminist and political philosophy shows forth in the way she blends personal anecdotes with broader social insights.

Aruna's work offers a critique of monopoly capitalism, state repression, and neoliberalism. This raises important questions about the structural issues and potential solutions needed to address the larger political and socioeconomic challenges of our time, paving the way for new and transformative avenues for the future. She has consistently drawn attention to the need for a shared public sphere, the increasing crime against women, and the legitimacy crisis affecting governance and civil society movements alike.

In her deeply evocative review of Aruna's memoir 'The Personal is Political', Kamayani Swami (2024) remarks that, far from being a personal story, it depicts the narrative of the collective journey of which Aruna has been a part.

Swami highlights how Aruna cherishes the idea that *love is not confrontational or competitive*—a perspective women inherently understand. This love provides great reassurance and is almost entirely absent in the male-dominated world. The memoir underlines that the personal is political, which is intrinsically tied to the liberation of the personal.

Aruna's story is a journey that exemplifies the collective narratives of leadership, sisterhood, and a spirit of citizenship. It underlines her faith in community, non-violence, and the transformative power of a life rooted in solidarity and justice.

Lessons from the Activists –

Social activists are expected to react to injustice and give voice to the powerful, the vulnerable and the underprivileged and make the power transparent, accountable and just.

It is through people's education, agitation and activism that Aruna Roy seeks to lead social movements which hold politicians and those in power accountable. She has opposed govt-sponsored violence, corruption and capitalist-centric policies. The movements have been a journey of living, learning and doing. The journey to Devdungri was a microscopic study in a laboratory focused on the intricate details of socio-political interactions in an attempt to understand the logic of events which build up a certain way. She was inspired by Gandhi's 'tapasya' [sacrifice], which reflected a complex interplay of power and non-power. Confronting the powers with truth is not easy; yet, following the Gandhian principles, constitutional morality and feminist quest, Aruna embraces this challenge. Democracy, she believed, could be strengthened only through vigilance and accountability.

Exploration of voluntarism in 21st-century India, through the 'Citizenship Building Initiative', was one of the greatest achievements of her book, which raises critical questions about the limitations of ideology and re-evaluates the values of the freedom movement.

For Aruna, democracy is an ongoing process quest which remains at the centre of her work, providing insights into the dynamics of grassroots democracy, emphasising how societal agencies can transcend state agencies for the promotion of accountability and justice. Aruna's quest represents the enduring power of collective action which believes in the supremacy of societal values over state mechanisms. Thus, she offers a transformative model for building a just and democratic society.

Aruna Roy makes an intriguing distinction between rural and urban movements. She observes, *"Unlike the rural activist, the urban activist separates home and the workplace, and some aspects of privilege continue. In rural India, even though things have changed for the better, it is much more difficult not to match means and ends"* (page 126).

At the end of the day, the hope for people's movements lies with villages or the movements led by Adivasis and the disadvantaged. Like Gandhi, Aruna places a strong emphasis on communication, considering it the most vital aspect of an activist's life, in the absence of which motivation or even organisation are inconceivable. *"If we do not communicate, how can we motivate? How can we organise? It is extremely important."*

Aruna also critiques today's movements, highlighting not only a leadership deficit but also a communication deficit. A significant reason for this, she notes, is that many activists do not live among the people, and leadership often fails to emerge from the grassroots.

Not many activists engage as deeply with issues as Aruna does, as she takes time to read and understand things. She realised how important it was to engage in a dialogue with other ideological

groups, working for social empowerment and peacebuilding. The Right to Information and the Right to Work Movement, her movements, are guide maps for functional coordination for serving the collective will, leading to effective mass mobilisation. She highlights the interconnectedness of communication, culture and activism, inspiring those committed to creating a more just and inclusive society.

"Great political downfalls have occurred not only because ideologies are defective but also because of the misuse of unquestioned power and impunity. The slogan of the MKSS is 'The *right to know is the right to live*.' 'We will create a world based on justice and equality.'" (Page 143)

Devotion, dedication, determination, and discipline are the four important life lessons we draw from Aruna's journey. While reading the book, we often had to put it down because it was so emotionally overwhelming and appealing. It is a stunning work, written with remarkable self-restraint and profound self-awareness, aiming for mass awakening. The honesty in this book is difficult to digest and even harder to come by in our times, especially from someone like Aruna, who has dedicated five decades of her life to activism.

The book could have centred on her personal achievements, but instead, it focuses on strategy, learning, and the collective successes of movements. It is a work of reflection and profound self-inquiry. As I mentioned, it embodies a continuous process of self-denial (in the Gandhian sense), where Aruna chooses to place her identity behind the people's movement. This self-renunciation permeates the entire narrative. The framework of this memoir is a quest—one that extends beyond the pages of the book.

As Aruna stated, when she decided to work with people, life led her to unknown geographies, cultures, and languages. This resonates with Professor Purshottam Agrawal's work, *Bharat Mata Kon*.

Although she was moved by the struggles and hardships of the people, she did not look at them as a city-bred, middle-class, all-knowing individual. She always looks upon herself as a co-traveller. In this book, she takes us along on her arduous journey, introducing us to remarkable individuals—unsung heroes with strong convictions and a clear sense of right and wrong—who continue their struggles in the spirit of the Indian Constitution. Throughout the narration, Aruna reminds me of the great Jayaprakash Narayan.

She is a symbol of modesty, Sarvodaya, and Satyagraha. Ideologies, ethics, discriminatory politics, principles, and emotions define the permissible limits of what a social group may consider proper. This book explores the origins and evolution of these concepts, highlighting the conflicting obligations and choices between personal commitments and public action, which often occupy a contentious space. Through her journey, Aruna navigates these complexities, shedding light on the challenges and responsibilities inherent in social activism.

Quest for People's Democracy and Dignity –

Reading the book explains how and why, from an activist's perspective, people view their individual sense of well-being as intertwined with the maintenance of shared public ethics. For Aruna, people are the ultimate source of happiness. One of the significant lessons of the book is understanding how

people's democracy can be maintained, sustained, and achieved, and it can be used to develop alternative governance models ensuring deep participation by common people.

Through this lens, the book invites readers to reflect on the active role individuals can play in shaping a more inclusive and responsive democratic process. In India, this tradition continued with Jayaprakash Narayan (JP) and many others who used these methods to challenge immorality within power structures and state controls. JP's Total Revolution was a large movement that placed ethical resistance and non-violence at the centre of its struggle.

It has long been a tradition for leaders from the civil service, such as IAS officers, to engage in social movements. Social activists like Harsh Mander, Medha Patkar, Aruna Roy, and many others exemplify this. Their choices demonstrate that public engagement is essential for societal transformation. They also highlight the limitations of the state and bureaucracy while reflecting the quest of social reformers to work beyond these confines. Leaders such as Buddha and Gandhi nurtured this spirit.

Her quest for people's dignity arises from the pain of patriarchy, the pain of migration, the pain of untouchability, and the suffering of poverty. Her quest for movement is also concerned with India's major social problems. This book is a gift to readers, not just for reading, but as a call to work towards empowerment, improvement, and civic duty.

Aruna's journey can be described as a Gandhian quest, with Nehru's scientific temper, Ambedkar's constitutional morality, Lohia's dissent, and feminist values. The most marginalised, whom Gandhi described as 'the last person', the discriminated against, whose conditions Ambedkar seeks to ameliorate, wait eagerly for the realisation of that promise. This vision synchronises with Ambedkar's ideals, Jayaprakash Narayan's concept of communitarian democracy, and Gandhian politics, forming a praxis for social justice and equity.

Non-party Initiatives

Non-party politics is a move shaped by Gandhi, M.N. Roy, Vinoba Bhave and Jayaprakash Narayan, which meant moving away from state-centric governance. It represents the building of alternative systems that are moral and people-centric.

The state can do little to promote genuine democracy (*lokniti*) because democracy is, first and foremost, a moral issue.

It necessitates some moral and spiritual qualities, which are not innate but can be cultivated through training and practice. These qualities include:

1. Concern for truth.
2. These qualities also include an aversion to violence.
3. A passion for liberty and resistance to oppression and tyranny.
4. The spirit of cooperation.
5. The willingness to adjust self-interest to larger societal interests.
6. Respect for others' opinions and tolerance.
7. Readiness to take responsibility.
8. Belief in the fundamental equality of all people.

9. Faith in the educability of human nature (*Narayan, 1959*).

According to Aruna, “If power so derived gains mass support and the blessings of a manipulative power elite, democracy is threatened” (*Page 208*).

The function of alternative or non-party politics is rooted in ethical principles and the capacity to challenge authority, often overlooked in academic discourse although it is a crucial aspect of civil society. Volunteer organisations are drawing the attention of planners, policymakers and governments, which underscores their indispensable role. Aruna’s central pursuit was to engage with people’s politics through a non-party lens.

For her, politics transcends elections; it embodies access to power that upholds rights, justice, equality, and freedom. She recognises that the dynamics of social movements differ fundamentally from party politics. Aruna perceives non-party politics as a framework for people’s politics, especially in terms of its epistemology. Her idea of moving away from power-centric politics reflects the Sarvodayan vision of “Shaashan Mukt Samaj”, a society free from the state.

This vision emphasises the creation of a self-governing community rooted in ethical principles, fostering a more egalitarian and participatory social order.

Politics, at its core, is intrinsically tied to power. Every ideology deals with power, manifesting in its relationship with gender, class, caste, and transparency. These manifestations are reflected in codes for apparel, strict social norms, stereotyped definitions of propriety, and even the minutiae of etiquette.

This book plays a significant role in developing alternative knowledge systems and ways of thinking about politics, the self, and culture. It is a unique form of biography that embodies a living and celebrated idea of social transformation, the genesis of various non-party movements, and, importantly, a feminist approach to shaping culture through praxis.

One can observe the significant role of the non-party movement in India’s fight against corruption. This movement fostered mass mobilisation and demonstrated that the general public holds a deep respect for such politics, especially during a time when party politics faces a crisis of legitimacy.

Corruption acts as a veil, obscuring more profound issues such as inequality, injustice, casteism, racism, and patriarchy. These arguments can logically be traced back to the moral framework provided by the Constitution of India. Ultimately, corruption is a symptom of a malfunctioning and unaccountable state, which points to the urgent need for reform and greater transparency in governance.

The response to the preoccupation with corruption came through two distinct movements. The first was a painstaking, participatory, eleven-year-long campaign for the Right to Information (RTI), a transparency law carefully and rigorously constructed with multiple drafts prepared by the people.

Non-party politics also represents a new vision of the citizen-building movement. Sociologically termed as *New Social Movements* (civil and democratic human rights, ecological, gender, identity politics, farmer movements, and eco-feminist movements), this vision is exemplified by the *India Against Corruption* (IAC) campaign, which drew inspiration from the Arab Spring. Additionally,

the RTI and MGNREGA campaigns have shown that public action can effectively bring about meaningful change.

These initiatives by people's movements serve as an invitation to all—students of society, activists, and citizens alike—to understand how accountability can be achieved, sustained, and maintained. They also provide a framework for dissent, debate, and dialogue, helping to identify problems, mobilise the masses toward solutions, and hold those in power accountable to the people.

The non-party protagonist draws battle lines not on winning or gaining power but on questions of right and wrong, justice and injustice. Power in one area does not easily translate into another, as we have seen. Often, very credible and successful activists fail the test of the ballot. This is because voters tend to perceive a pragmatic division between the power to rule and the power to protect and protest. For the non-party protagonist, victory lies not in gaining office but in vindicating the principles of public constitutional morality.

She writes, "The largest organised effort I have been part of was the Lok Rajniti Manch of the NAPM, an attempt to answer the dilemmas of electoral politics. We began with two propositions, both important but requiring different architectures. We could not resolve absolutely whether we were sitting together to discuss alternative politics (movement politics) or political alternatives (to oust the parties in power, replacing them with comparatively more ethical ones)." (*Page 233*).

She further reflects: "The core issue was to look for alternative politics, not a political alternative. However, given the complicated demands of alternative politics—requiring us to examine each subset before making decisions, while ensuring that the whole structure included every detail—the discussion shifted toward evolving a political alternative. To be fair, the time was likely too short, and the committee too varied in its expectations, to reach any conclusion. Looking back, this probably explains the NAPM's divide when the Aam Aadmi Party (AAP) fielded candidates. Some NAPM members stood for election, while others refrained on various grounds" (*Page 234*).

Gandhi proposed dissolving the Congress after independence and advocated for the formation of new parties. Similarly, M.N. Roy dissolved his party, while Jayaprakash Narayan and Vinoba Bhave emphasised the supremacy of people's politics over party politics. This pattern of thought resonates with the traditions of anarchism in both Western and Eastern political philosophy. At the age of eighteen, even a spiritual leader like J. Krishnamurti disbanded his organisation, emphasising the belief that institutions should serve as tools for enforcing justice rather than as strongholds of authority to be defended at all costs. Self-evaluation is a critical element for a country's political well-being that often meets neglect.

Chapter 14 offers profound insights into the political dynamics of the challenges of dynastic politics and the influence of former IAS officers like Aruna and Bunker Roy. It throws valuable light on the complexities of political interactions, the interplay of different forces and the challenges faced by social movements. The chapter brings out how these dynamics shape the political landscape as well as the lived experiences of individuals and communities.

Leaning on the common.

What makes Gandhi, Gandhi? It is his profound understanding of both the self and the common masses. Gandhi divides public action into Sewa [service], Nirmal [creation] and Sangharash

[struggle]. The idea of freedom begins with the ideal of freedom from hunger and want. Gandhian praxis advocates a life of voluntary poverty, with its focus on simplicity and asceticism in order to encourage self-critical examination.

Aruna's work extends beyond critiquing the existing state apparatus; she vividly illustrates the legitimacy crisis that accompanies it. She is deeply concerned about the rise of majoritarianism, capitalism, and social injustices within society, a trend which leads to the silencing of constitutional principles, further aggravating the threats faced by marginalised communities.

Through her analysis, Aruna underscores the urgent need for a more equitable approach to governance, one that prioritises rights and justice for all.

She writes with the intention of communicating effectively, particularly with those referred to as the liberal left, liberal thinkers, liberal democrats, or compassionate individuals. She observed and emphasised that activists often struggle to connect with these groups because they don’t speak their language.

In spite of the fact that they share a common language like English, still they fail to grasp the methods and expressions used by the activities. How Aruna portrays the contradictions, paradoxes and binaries within society is a remarkable attribute of the book. These contradictions are shaped by the market politics and feudal structure. She brings to light the complex relationship between people’s demands and industrial interests, exposing the limitations of binary politics. Aruna’s struggles, journey and passionate love for justice prove too much for limiting propositions like self, culture and society, finally offering a vision of hope and transformation.

The book reflects a society we all need to understand. Rural women speak, think, and argue in a distinctive way, and there is a metaphor of orality woven throughout the writing. This is a deeply oral book. It feels unusual that it is written—it meanders, flows, and presents half-formed thoughts that sometimes stop abruptly. Aruna is deeply critical of rural injustices, which is rare for a feminist engaging with the unjust premodern notions ingrained in society.

Throughout Aruna's journey, the role of anger in activism is central. Anger is essential—yet uncontrollable and incredibly risky—because it can consume you. As Aruna says, anger can ignite something within you, but if left unchecked, it can overwhelm you. She repeatedly emphasises the discipline required to handle and channel anger effectively. Erica Jong once said, *"Anger is really disappointed hope."* When Aruna sees people unmoved while democracy is under threat, women are tortured, the poor are marginalised, and labourers are exploited, she underscores how crucial anger is. It should not be suppressed but embraced, contained, and directed with discipline. In activism, this is vital. The book's many stories reflect this sentiment, with the orality of the women's narratives holding immense violence.

The places Aruna describes—such as rural Rajasthan in the 1970s, when caste operated without negotiation—are deeply revealing. There were no seats at the table, no participatory meetings; it was conflict, and violence was entrenched in structural social change. The challenge lies in holding onto anger without letting it define you.

This is one of the subtle arguments in the book. Aruna never states it explicitly, but after 180 pages, it becomes evident. As an academic, I wanted her to spell it out more clearly, but as a reader, I

appreciated how the feeling gradually built up. I kept expecting her to lose her patience, to give up—but she never did.

Let me explain Aruna's art and craft of public education. The *Jansunwai*, for instance, is a continuous process of public disclosure and verification that empowers citizen monitoring. As a form of "social audit", it has become a mandated part of MGNREGA and governance systems, promoting accountability in India and inspiring similar practices worldwide. Public education, much like literacy, is a generational endeavour. It must be repeated continuously for each new generation to ensure that democratic institutions and processes remain functional and effective. This book also instills a sense of empowerment in facing some of the biggest challenges of our time: hopelessness, powerlessness, voicelessness, and pessimism. Activists are often accused of exaggerating their concerns, but their candid expression forces those on the fence to confront difficult issues. Maintaining optimism in such a context is perhaps the activist's greatest challenge.

A significant aspect of Aruna's politics is her preference for fostering inter-ideological debates on issue-based collective action. She throws light on the epistemological similarities between Ambedkar and Gandhi so far as their shared commitment to promoting people's democracy and constitutional morality was concerned. In this way, Aruna works for a deeper understanding of how diverse ideologies can come together in an attempt to advance the idea of social justice and strengthen democratic values.

Quest for Rural Empowerment

The idea of the rural is often marginalised in discussions of Indian planning. However, for Gandhi, the rural space represents the essence of India—what India truly is. Rural empowerment has always been a cornerstone of Gandhian philosophy, and its essence is beautifully reflected in Aruna Roy's work. She embraces the concept of "politics below", emphasising the importance of grassroots engagement and amplifying the voices of rural communities in shaping political action and social change.

She says, "I went to the village where poverty still has a veneer of dignity. In our cities, poverty does not have a veneer of dignity. You want rights; you belong. The Constitution will provide them to you" (*Page 82*).

The book also unpacks the binary between rural and urban spaces. Aruna identifies her journey from the urban middle class marginalised India. Reflecting on her experiences, she states, "Violence against women workers by their landlords or employers, a fairly common phenomenon; violence within families; and violence against women in rural social groupings on charges such as 'witchcraft' are important points in discussions on violence against women" (*Page 51*).

Understanding the so-called urban-rural divide requires examining how people responded to migrants during the COVID-19 pandemic, which cast doubt on the social compact of our cities. This raises the "Right to the City" question. Despite the intense debate surrounding cities as moral and political arenas, their complexity defies a single narrative. Some individuals from this generation, born in cities, claim to feel a connection to the land. The book offers an original critique of urbanisation, particularly as reinforced by the anti-immigrant sentiment during COVID-19.

Aruna also narrates two remarkable stories about rural life. There is a deep reflection on Rajasthani culture and the sense of justice embedded in inter-community relationships. She portrays the dignity of the subaltern with remarkable depth.

The book is remarkable also from the point of view of her recollections of the stories and experiences of her life and how she felt at that time.

The paradoxes which mark society and its culture also become the subject of her passionate study, which brought her to the ideal of participatory democracy, which became one of the most meaningful quests of Aruna's life. She advocates the idea of building the society from the grass roots through Sewa [service], Sangharsh [struggle] and Nirmal [creation], while nourishing a vision for decolonisation.

A fascinating aspect of Aruna's work was that she translated profound ideas into practical, hands-on activist work on rights. Resting her faith in the power of collective effort for success and achievement, she emphasised the importance of a shared understanding of collective work, collective minds and collective solutions. The efforts of Mazdoor Kishan Shakti Sangatha [MKSS] show the value of reaching a common consensus before taking action, which is shaped by ethics, honesty in public action and a pragmatic approach. The organisation exemplifies the idea of revolution grounded in practicality.

Environmental activism has seen Rajasthan at the centre of a peaceful nonviolence movement. The living legacies of figures like Anupam Mishra, Rajendra Singh, and many others are evident in these efforts. One of the most significant lessons from nurturing people's democracy, as led by Aruna, is that democracy is not built solely by laws but by processes.

Aruna nurtures an ideology of nationalism rooted in the living legacy of the freedom movement. She asserts, "We must accept national boundaries and friendships," drawing inspiration from the book *Survival of the Friendliest*, a work which is dedicated to the importance of maintaining relationships with neighbours for peace and regional security.

Mutual learning and inter-ideological dialogue are key principles in her work. The spirit of great reformists and social activists, feminists, Gandhians, Ambedkarites, Marxists and others who participated in social movements was nurtured by Aruna and her peers.

She actively draws new groups into these movements, especially young people, because she believes in their voices and their commitment to the nation and democracy. How is it, she asks, that disparate groups can mobilise more effectively if they share a common mission?

Aruna's core values have remained steadfast over time, even as other aspects of her life, such as opinions, have evolved. This reflects a unique praxeology for Aruna: a Gandhian way that combines an epistemological quest with the pursuit of harmony in thought, action, and reflection.

The book is a collective story of effort, courage, and the motivation for nation-building through dedication, struggles, and a shared quest. What sustained Aruna's rural life was the transformation of her sense of "I" into "we". She believes deeply in the collective and indigenous conscience that provides meaning to reality, rooted in local and traditional knowledge. These orientations shaped her life into a shared journey with others.

Living a public life begins with the idea Gandhi spoke of: forgetting oneself in the service of others. The communities that suffer often carry an even greater degree of hope—hope that activists like Aruna strive to nurture and carry forward.

This memoir is a collective account that will become part of history—not merely as a record of events but as a testament to the enduring quest for an inclusive and transformative movement. Aruna used an emancipatory methodology to write this book, making it as much a tool for change as a narrative of her life's work.

One of the significant contributions of the book is its effort to counter the erasure of national history and politics from the syllabi of schools and universities due to government intervention. By bringing these critical aspects into the public gaze and collective memory, the book performs a remarkable service—one that Indian society greatly deserves.

The last chapter, 'No Full Stop: The End is the Beginning', is a testament to her faith in the continuity of the struggle for transformation. We find echoes of T.S. Eliot: the beginning is the end. Her philosophy embodies Gandhi's dictum: the means are the end. For her, the goal – the end – is also the beginning. A statement which rests her faith in the continuity of the struggle and transformation.

Where there is a will, there is a way. For Aruna, the way is collective, the goal is collective, and freedom, justice, and equality are for everyone—not just for a privileged few, nor even for herself. And yes, her vision is profoundly political.

Inpublic commons, where shadows lie,
Inequality whispers, while justice must try.
Democracy's promise, a call to unite,
Accountability raises questions and illuminates the truth.

References –

Roy, A. (2018). The RTI story: Power to the people. Roli Books.

Narayan, J. P. (1959). A plea for the reconstruction of Indian polity. Akhil Bharat Sarva Seva Sangh Prakashan.

Roy, A. (2024). The personal is political: An activist's memoir. HarperCollins India.

Mills, C. W. (1959). The sociological imagination. Oxford University Press.

Swami, K. (2024, August 5). Aruna Roy: A collective journey, showing the way forward. The Wire.

Received: 03.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

आपातकाल के दौर में कुलदीप नैयर की पत्रकारिता पर आधारित एक अध्ययन

डॉ संजीव कुमार*
ssanjeevmzp@gmail.com

सिमरन चंद्राकर†
simranchandrakar6@gmail.com

शोध सार –

कुलदीप नैयर का संपूर्ण पत्रकारिता जीवन लोकतंत्र, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मानवाधिकार और शांति स्थापना की सतत खोज के रूप में देखा जा सकता है। उन्होंने बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया कि पत्रकारिता का कार्य केवल सूचना देना नहीं है, बल्कि जनता की आवाज़ बनकर सत्ता से सवाल करना है। यही कारण था कि उनके लेखन में एक स्पष्ट लोकतांत्रिक चेतना दिखाई देती है। इमरजेंसी के दौर में जब पूरे देश में भय और सेंसरशिप का वातावरण था, तब नायर उन चुनिंदा पत्रकारों में थे जिन्होंने खुलकर इसका विरोध किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि लोकतंत्र तब तक जीवित रह सकता है जब तक प्रेस स्वतंत्र और निर्भीक है।[1]उनका विश्वास था कि पत्रकारिता लोकतंत्र का प्रहरी है। इमरजेंसी पर लिखी उनकी पुस्तक Emergency Retold *इसका प्रमाण है, जिसमें उन्होंने विस्तार से बताया कि किस प्रकार सत्ता ने समाचार पत्रों को नियंत्रित करने की कोशिश की और किस प्रकार पत्रकारिता के एक हिस्से ने सत्ता के दबाव में आत्मसमर्पण कर दिया। इस संदर्भ में कुलदीप नायर स्वयं जेल भी गए और अपने अनुभवों को कलमबद्ध किया। उनके अनुसार, पत्रकारिता जनता और लोकतंत्र दोनों के प्रति जवाबदेह है, और यदि यह जवाबदेही समाप्त हो जाए तो लोकतंत्र का अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है।*

बीज शब्द-

सेंसरशिप, आपातकाल, पत्रकारिता, लोकतंत्र, नैतिकता, निडर।

प्रस्तावना -

भारतीय आजादी को अभी तीन दशक भी नहीं हुए थे पर उसके दामन पर एक ऐसा धब्बा लग गया जिसे कभी मिटाया नहीं जा सकता. कुलदीप बताते हैं कि मेरे जीवन की तीन महत्वपूर्ण ऐसी घटनाएं है जिसे मैं आजीवन नहीं भूल सकता. जिनमें पहला है भारत विभाजन, दूसरा गांधी की हत्या और तीसरा आपातकाल.[2]पता नहीं इतिहास आपातकाल को किस नजरों से देखेगा, परंतु भारतीय राजनीति में इस आपातकाल ने भारतीय राजनीति को अंदर तक खंगालने का कार्य किया है। जिस प्रकार से समुद्र मंथन से जहर और अमृत दोनों निकले थे इस प्रकार भारत में इंदिरा गांधी के शासन में लगाए गए आपातकाल से अमृत और विष दोनों हाथ लगे थे। आपातकाल के दौर से पूर्व का अगर बाकायदा अध्ययन किया जाए तो देखा जा

* **सहायक प्राध्यापक, श्री शंकराचार्य प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, दुर्ग (छ.ग.)**

† **शोधार्थी, श्री शंकराचार्य प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, दुर्ग (छ.ग.)**

सकता है कि उस दौर में मीडिया लोकतंत्र और विपक्ष कितना स्वतंत्र था, उसके तुलना में आज की अपेक्षा की जाए तो स्थिति पहले की अपेक्षा ज्यादा बुरी साबित हो रही हैं।

क्या आज एक मजबूत शासन में यह हो सकता है कि एक मजबूत प्रधानमंत्री के खिलाफ उच्च न्यायालय में कोई मुकदमा चले और निर्णय प्रधानमंत्री के खिलाफ हो जाए? आज की परिस्थिति तो बिल्कुल इसकी जवाब नहीं देती। आज तो एक मामले से विधायक को भी सजा दिलवाने में सत्ता पक्ष के पसीने निकल जा रहे हैं। कुछ तो बात रही होगी उस दौर के लोकतंत्र, मीडिया और प्रशासन प्रणाली की कि यह सब लोग इतने निर्भीक होकर कार्य कर रहे थे कि एक मामूली सी गलती की वजह से प्रधानमंत्री को अपनी सत्ता गवानी पड़ गई। राज नारायण भारत के एक प्रमुख भारतीय स्वतंत्रता सेनानी, समाजवादी नेता और राजनेता थे। वे इंदिरा गांधी के खिलाफ चुनावी मुकदमे के लिए सबसे ज्यादा याद किए जाते हैं, जिसने 1975 में आपातकाल लगने का एक बड़ा कारण बना।

1971 के लोकसभा चुनाव में प्रसिद्ध समाजसेवी स्वतंत्रता सेनानी और राजनेता राज नारायण ने रायबरेली की लोकसभा सीट से इंदिरा गांधी के खिलाफ चुनाव लड़ा. इस चुनाव में इंदिरा गांधी 1 लाख वोटो से विजय होती हैं और देश की प्रधानमंत्री बनती है। राज नारायण और उनके सहयोगी जयप्रकाश नारायण जो संपूर्ण क्रांति तथा इंदिरा गांधी के तानाशाही रवैये के खिलाफ लगातार आंदोलन कर रहे थे, उन्हें इस चुनाव में कुछ अनियमितता मालूम हुई। उन्होंने इंदिरा गांधी पर आरोप लगाया कि उन्होंने सरकारी तंत्र के सहयोग से यह चुनाव जीता है। उत्तर प्रदेश हाई कोर्ट में इसके खिलाफ अपील कर दी. इंदिरा गांधी के खिलाफ की गई यही कानूनी लड़ाई देश मैं आपातकाल की नींव बनी।[3]

12 जून 1975 को तब इलाहाबाद उच्च न्यायालय के जस्टिस जगमोहन लाल सिन्हा इस केस की सुनवाई कर रहे थे। पूरे देश में उनके ईमानदारी की चर्चा थी। इंदिरा गांधी की पूरी व्यवस्था अंदर ही अंदर उनसे डरी हुई थी। दुबले पतले 55 साल के जज सिन्हा जब 12 जून को फैसला सुनाने जा रहे थे तब पेशकार ने कोर्ट में सभी उपस्थित लोगों से निवेदन किया था कि कोई भी फैसला सुनने के पश्चात ताली नहीं हो जाएगा या फिर किसी भी तरह का शोर नहीं करेगा।

जस्टिस सिन्हा ने उस दिन 258 पेज के अपने फैसले को सामने रखते हुए कहा कि मैं इसके निष्कर्ष पर आज आपको फैसला सुनाता हूं. और उन्होंने राज नारायण की याचि का स्वीकार करते हुए उस वक्त की ताकतवर नेता इंदिरा गांधी को पदमुक्त होने तथा गिरफ्तार करने का आदेश दिया। जस्टिस सिन्हा ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी पर आरोप लगाया कि उन्होंने प्रधानमंत्री सचिवालय में कार्यरत यशपाल कपूर का इस्तेमाल किया था। इंदिरा गांधी ने जिन चुनावी मंचों का प्रयोग किया उन मंचों को बनाने और व्यवस्था करने में सरकारी अधिकारियों ने मदद की थी। इन्हीं दोनों महत्वपूर्ण अनियमितता को ध्यान में रखते हुए 1971 में लोकसभा चुनाव रायबरेली की सीट से जीती इंदिरा गांधी की लोकसभा सीट भंग कर दी जाती है।[4]

फैसला सुनते ही इंदिरा गांधी तब अपने प्रधानमंत्री आवास में अपने दोनों बेटों के साथ कुछ देर के लिए खामोश हो गई। शायद उन्हें इसकी पहले से ही आशंका थी। कोर्ट का जब फैसला आया तब राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली श्रीनगर दौरे पर थे। 16 जून को उनके दिल्ली वापस आने के बाद विपक्ष का उन पर भारी दबाव था, इधर इंदिरा गांधी अपने सत्ता जाने की सोच में डूबी हुई थी। और अंत में उन्होंने अपने बेटे संजय तथा महत्वपूर्ण सलाहकारों से सोच समझ कर आपातकाल लगाने का फैसला लिया। इस फैसले में संजय गांधी ने अपनी मां को पूरा भरोसा दिलाया था कि देश में कोई बड़ा हादसा या घटना नहीं होगा।

और इस प्रकार आपातकाल लागू करने की घोषणा पर राष्ट्रपति ने 25 जून की रात 11:45 बजे अपने दस्तखत किए. अब प्रधानमंत्री के पास विपक्ष तथा प्रेस से निपटने की पूरी शक्ति थी। आपातकाल लगने के बाद 2:30 बजे गिरफ्तारी का काम दिल्ली में विपक्ष के नेताओं को नींद से जगा कर पुलिस थाने ले जाया गया। उन्हें मीसा कानून के तहत गिरफ्तार किया गया था। यह कानून स्मगलर के लिए बनाया गया था. इस गिरफ्तारी में देश के सभी विपक्षी दल के बड़े नेता गिरफ्तार किए गए थे सिवाय एक विपक्षी दल को छोड़कर जो म्युनिस्ट पार्टी थे और कांग्रेस के समर्थक. जब विपक्ष के सबसे बड़े ताकतवर नेता जयप्रकाश नारायण को गिरफ्तार किया गया तो उनके मुँह से निकलने वाले सबसे पहले यही बोल थे "विनाश काले विपरीत बुद्धि". दिल्ली के अधिकांश अखबार अगली सुबह नहीं निकले क्योंकि उस रात आधी रात को ही बिजली काट दी गई थी। जब पत्रकारों और संपादकों ने पावर हाउस पर फोन किया तो उन्हें बताया कि कुछ तकनीकी कारणों से यह किया गया है।

अगली सुबह 26 जून को देश के सभी प्रेस पर सेंसरशिप लागू कर दी गई। यानी अब सरकार और सरकार के अधिकारियों के बगैर पूछे कोई भी समाचार नहीं छापी जा सकती थी। इस सेंसरशिप का विरोध करने स्वरूप 676 पत्रकारों को उसी रात जेल मैं भेज दिया गया।[5] प्रेस को पूरी तरह से कुचलने का काम किया जा रहा था. साप्ताहिक पांचजन्य, दैनिक तरुण भारत और हिंदी मासिक पत्रिका राष्ट्रधर्म जो संघ समूह के प्रमुख हिंदी समाचार पत्र थे को बंद कर दिया गया। बिना किसी सर्च वारंट या किसी सक्षम अधिकारी के आदेश देश के सभी राज्य में शासन की क्रूरता एक समान थी। बिहार, उत्तर प्रदेश सभी स्थानों से सरकार के खिलाफ आवाज उठाने वाले नेताओं को गिरफ्तार किया जाने लगा। गिरफ्तारी वारंट में सिर्फ इतना लिखा जाता था कि आपको पिछले किसी दिनों में सरकार के खिलाफ गतिविधियों में संयुक्त होने पर गिरफ्तार किया जा रहा है। लाल कृष्ण आडवाणी को भी इसी कानून के तहत गिरफ्तार किया गया उन्हें गिरफ्तारी के 8 घंटे बाद सर्च वारंट दिया गया।

प्रेस के खिलाफ सरकार इतनी सख्त थी कि उसने विदेशी पत्रकारों को भी निष्कासन करने का आदेश दे दिया था. बांग्लादेश संकट के दौरान हिंदू पाकिस्तानी शासन की अत्याचारों को उजागर करने वाले लंदन टाइम्स के पीटर हेजल न्यूज़ वीक के लॉरेंस जेंकिंग, लंदन डेली टेलीग्राफ के पीटर गिल उनमें शामिल हैं। इन सभी को गृह सचिव एसएस सिद्धू के दस्तखत वाले आदेश मिले थे जिस पर लिखा था कि राष्ट्रपति के आदेशानुसार आप सभी को 24 घंटे के अंदर भारत छोड़ देना है। न्यूज़ वीक के पत्रकार लॉरेंस जेन किंग ने अपने लेख में लिखा कि स्पेन से लेकर माओं के साशन तक 10 वर्षों की अवधि में खबर देने का काम किया है परंतु इस तरह का सेंसरशिप आज तक नहीं देखा।[6]

यूरोप के सभी बड़े राजनीतिज्ञ इंदिरा गांधी के ईस फैसलें से हतप्रभ रह गए थे। वह समझ नहीं पा रहे थे कि जिसके पिता ने अपने राष्ट्र की उन्नति और विकास तथा लोकतंत्र के लिए इतना लंबा संघर्ष किया उसकी बेटी आज उसके लोकतंत्र को मिट्टी में मिला रही है।[7]

25 जून 1975 की मध्यरात्रि को जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा की, तो सबसे पहले प्रहार प्रेस और पत्रकारों पर हुआ। समाचार पत्रों की स्वतंत्रता को कुचल दिया गया और लगभग सभी प्रकाशनों पर सेंसरशिप लागू कर दी गई। कुलदीप नायर, जो उस समय *The Indian Express* के संपादक मंडल से जुड़े थे, ने खुलकर इसका विरोध किया। उनकी कलम से निकले तीखे लेखों और बयानों ने सत्ता को विचलित किया और इसी कारण उन्हें जेल भी भेजा गया। कुलदीप नायर का मानना था कि आपातकाल ने भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को हिला दिया। उन्होंने अपनी पुस्तक *Emergency Retold* में लिखा है कि यह केवल राजनीतिक संकट नहीं था, बल्कि प्रेस और न्यायपालिका दोनों की

स्वतंत्रता पर सबसे बड़ा हमला था। उन्होंने विस्तार से वर्णन किया कि किस प्रकार समाचार पत्रों की कॉपियाँ सेंसर अधिकारियों के पास भेजी जाती थीं और केवल वही सामग्री छप सकती थी जिसे सरकार ने अनुमति दी हो। इसके विरोध में कुछ समाचार पत्रों ने खाली संपादकीय स्तंभ छापकर प्रतिरोध दर्ज कराया। नायर का व्यक्तिगत अनुभव और भी कठोर रहा। उन्हें *MISA* (Maintenance of Internal Security Act) के तहत गिरफ्तार किया गया और तिहाड़ जेल में रखा गया। वे बताते हैं कि जेल में रहते हुए उन्होंने महसूस किया कि लोकतंत्र की असली परीक्षा तभी होती है जब सत्ता असहिष्णु हो। उनकी गिरफ्तारी ने न केवल उनके व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित किया, बल्कि उन्हें एक लोकतांत्रिक योद्धा के रूप में पहचान भी दिलाई।

आपातकाल पर लिखते हुए नायर ने यह प्रश्न उठाया कि आखिर पत्रकारिता की भूमिका क्या होनी चाहिए – सत्ता के प्रचारक की या जनता की आवाज़ की? उनके अनुसार, कई पत्रकारों और अखबारों ने सत्ता के दबाव में झुककर आत्मसमर्पण किया, जिससे लोकतंत्र की साख को गहरा आघात पहुँचा। दूसरी ओर, कुछ पत्रकारों और प्रकाशनों ने प्रतिरोध किया और वही भारतीय लोकतंत्र को बचाए रखने में सहायक बने। नायर ने यह भी स्पष्ट किया कि आपातकाल ने भारतीय राजनीति में असहमति की संस्कृति को कुचलने की कोशिश की। उन्होंने इस पर तीखी टिप्पणी की कि एक लोकतंत्र में असहमति देशद्रोह नहीं बल्कि लोकतांत्रिक सेहत का प्रमाण है। यही कारण था कि इमरजेंसी समाप्त होने के बाद भी वे बार-बार चेतावनी देते रहे कि लोकतंत्र को केवल चुनावों से नहीं, बल्कि संस्थाओं की स्वतंत्रता और जनता की जागरूकता से जीवित रखा जा सकता है।

निष्कर्ष –

उनके लेखन और संस्मरणों से यह स्पष्ट होता है कि आपातकाल उनके लिए केवल एक राजनीतिक घटना नहीं थी, बल्कि पत्रकारिता के लिए चेतावनी का समय भी था। उन्होंने युवाओं और नए पत्रकारों को आगाह किया कि यदि प्रेस अपने अधिकारों के लिए लड़ने में असफल रहा तो सत्ता हमेशा उसे नियंत्रित करने का प्रयास करेगी। इस प्रकार आपातकाल का दौर कुलदीप नायर के जीवन और पत्रकारिता दोनों के लिए निर्णायक साबित हुआ। उनकी लेखनी और व्यक्तिगत साहस ने उन्हें भारतीय लोकतंत्र के एक ऐसे प्रहरी के रूप में स्थापित किया, जिसने सत्य और स्वतंत्रता के लिए व्यक्तिगत कठिनाइयों का सामना किया।

संदर्भ :-

[1] Nayar, Kuldip. *Between the Lines*. Allied Publishers, 1969

[2] नैयर, के. (2020). एक जिन्दगी काफी नही (अनुवाद युगांक धीर). दिल्ली : राजकमल पेपरबैक्स प्रकाशन. पृ. 112

[3] नैयर, के. (2024). *इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 15

[4] नैयर, के. (2024). *इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 16

[5] नैयर, के. (2024). *इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 29

[6] नैयर, के. (2024). *इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 22

[7] नैयर, के. (2024). *इमरजेंसी की इनसाइड स्टोरी*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 29

Received: 04.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

Historical Analysis of United Bengal Movement and Influence of Shyama Prasad Mukherjee

Dr. Alok Kumar*
alok.dsmru@gmail.com

Swati Sharma†
swatisharmatripathi01@gmail.com

Abstract

This paper throws light on the short-lived proposal of creating three and not two sovereign polities, i.e., India, Pakistan and United Bengal. The Sovereign United Bengal proposal (1947) was floated to keep Bengal undivided and independent to preserve its common aesthetic identity. This idea was supported by a group of Bengali Muslim League leaders and some Congress leaders from Bengal. This work explores on the fact that though the partition of Bengal was resisted widely from 1905-1911, the socio-political developments aftermath, compelled the nationalist leaders to go against the idea of unified Bengal. Due to strict opposition from Congress leadership, Hindu Mahasabha and many Muslim League members, the United Bengal proposal was collapsed. Along with tracing the historical developments which led to this idea it also talks about the role played by Shyama Prasad Mukherjee in killing this idea.

Key words:

United Bengal, H.S. Suhrawardy, Sarat Chandra Bose, Partition, Shyama Prasad Mukherjee

Introduction

On 3rd June 1947, the British Prime Minister Clement Atlee announced about granting independence to India. He also announced for the partition of the province of Bengal and Punjab. The Muslim League was not in favor of this partition as it wanted the whole of Bengal (particularly Calcutta) to be included in Pakistan. It was when Muslim League realized, they would not be able to achieve this directly, the concept of Sovereign United Bengal, independent of India and Pakistan, was floated. For this they influenced some discredited Congress leaders of Bengal.

Among the proponents of United Bengal movement were the Muslim League members, Huseyn Shaheed Suhrawardy (then Premier of Bengal) and Abul Hashim (General Secretary). The leaders of Bengal Congress who supported this plan/movement were Sarat Chandra Bose (brother of

* **Associate Professor, History and Archaeological Department**
Dr. Shakuntala Misra National Rehabilitation University, Lucknow.

† **Research Scholar, History and Archaeological Department**
Dr. Shakuntala Misra National Rehabilitation University, Lucknow.

Subhash Chandra Bose) and Kiran Shankar Roy. They believed that a partitioned Bengal would be economically and culturally devastated. For this cause the unity shown by provincial Congress members and Muslim League leaders was remarkable.

The United Bengal movement faced strong opposition from many nationalist leaders and organizations. Both Mahatma Gandhi and Sardar Patel (Congress) and Muhammad Ali Jinnah (Muslim League) rejected this idea as they feared it would weaken their respective nations. The strongest opposition was given by Shyama Prasad Mukherjee (Hindu Mahasabha) with the argument that a united Bengal would eventually be absorbed into Pakistan, posing a threat to India strategically. Mukherjee's campaigning against this movement was so strong that it ultimately killed the idea of unified Bengal and the movement failed.

Bengal in 20th century

The 20th century Bengal was an economically important region due to presence of Calcutta port, jute industry and flourishing agriculture and trade. To understand the process of communalization of Bengal, it is important to examine its societal structure. Bengal was one of the few states in which Muslims were a majority. But their majority position was not strong enough since the Hindus and Muslims were almost evenly matched in terms of sheer numbers. To add to that, the Muslims in Bengal were also economically, socially and politically lagging behind the Hindus. The slight advantage the Muslim population enjoyed over Hindus was more than counterbalanced by the superior position of the latter in economic, social and political life of the province. This generated a feeling among the Muslims that they were 'economically exploited, culturally subjugated and politically dominated by the Hindus.'[1]

Muslim politics in pre-Partition Bengal can be broadly divided into two, partly overlapping phases: (1) an indigenous movement by the Bengali Muslims for their economic and social emancipation as manifested in the aims and objectives of the Nikhil Banga Krishak Proja Samiti (NBKPS) later named as Krishak Praja Party founded by A.K. Fazlul Haq; and (2) participation of the Bengali Muslims in the country wide movement launched by the All India Muslim League for a separate homeland for the Muslims of the Indian sub-continent. In other words, in the first phase the Muslims of Bengal participated in a movement for a purely regional objective, and in the second phase they were led by a predominantly non-Bengali leadership for an all-India objective.[2]

The officials wanted to deal with the rising tide of nationalism and as Bengal was considered the nerve center of Indian nationalism, Risley, Home Secretary to the Government of India, wrote in an official note on 6 December 1904: Bengal united is a power. Bengal divided will pull in several different ways. That is what the Congress leaders feel: their apprehensions are perfectly correct and they form one of the great merits of the scheme. …One of our main objects is to split up and thereby to weaken a solid body of opponents to our rule.[3]

Historical background of Bengal Partition

The partition of Bengal in 1947 had its roots in the policy of 'divide and rule' which was pioneered by Lord Curzon.

On 20th July1905, Lord Curzon issued an order dividing the province of Bengal into two parts: Eastern Bengal and Assam with a population of 31 million, and the rest of Bengal with a population

of 54 million, of whom 18 million were Bengalis and 36 million Biharis and Oriyas.[4] Eastern Bengal had Muslim majority people and Western part, Hindus. It was done on the grounds that that the existing province of Bengal was too big for administration by a single government.

The nationalists saw the act of partition as a deliberate challenge to Indian nationalism. Their reciprocation has been correctly identified by Sumit Sarkar (1973) under four major trends in Bengal Swadeshi, namely, the moderate trend, constructive swadeshi, political extremism and revolutionary terrorism.[5] The acts of Hindu revivalism by nationalists like Tilak during this time widened the religious divide among Hindus and Muslims.

Fearing Hindu dominance in Bengal, foundation stone of Muslim League was laid in 1906 in Dacca. It aimed to protect Muslim interests. With the help of Lord Minto, the Viceroy, it put forward and secured the acceptance of the demand for separate electorates in Morley-Minto reforms. They demanded special safeguards for the Muslims in government services. The feeling of separatist sentiment and a sense of betrayal among Muslim elite class was further intensified with the annulment of Bengal partition in 1911.

From 1919 to 1935, the British Indian government, worked upon institutionalization of the divide and rule policy. British codified communal identity into the electoral system through

- Montagu-Chelmsford reforms (1919): the system of separate electorates was expanded to include people belonging to many other categories also. The communal electorates ensured that the politicians had to appeal to the people of their specific religious bloc only to come into power.
- Communal award (1932): it further expanded the scheme of communal electorates making caste and religion as the primary vehicle for political participation.
- Government of India Act (1935): by strengthening provincial legislatures, it gave Muslim-majority population in Bengal a stronger voice as a result there was a shift in power balance away from historically dominant Hindu elite class, also known as Bhadraloks.

From 1937-1946, the demand of representation shifted to sovereignty and separation. A major role in this direction was played by the coalition government of Krishak Praja party and Muslim League after the 1937 elections. Rise in agrarian politics is seen. Muslim tenants were often pitted against Hindu landlords. This led to the blending of class struggle with communal friction. After that the Lahore Resolution of 1940 and the Great Bengal Famine of 1943 led to the socio-economic devastation of the people. Failure of the administration in handling the situation increased radicalization among Hindus as well as Muslims.

The Great Calcutta Killings (1946-47) served as the immediate catalyst which compelled the leaders to revisit the demand of United Bengal.

There was a shift in nature of communal violence in Bengal from 1905 to 1947. While the riots of the first three decades of the twentieth century demonstrated a complex coexistence of class and communal elements, the fusion of the communal with nationalist and class modes of consciousness in the 1940s culminated in relatively more organised and overtly communal riots.[6]

For the first time, Bengali Hindus and Muslims joined their co-religionists of upcountry origin on a large scale in the Great Calcutta Killing of 1946. Unlike the earlier pattern of lootings and other forms of violence by a large crowd, the riots of the 1940s witnessed the killing of individuals by small groups. The emphasis now was not on economic gain but on revenge and humiliation members of the rival community. This rite of violence displays communal animosity at its peak, thereby completing the process dehumanization.[7]

Riots are transformatory as well as historical events. They shape and alter perceptions and aspirations. People are changed: their attitudes to each other and their ways of thinking about themselves are transformed. The violent and intense nature of a riot is not easily forgotten by individuals involved or threatened and tends to overshadow their other personal and historical experiences.[8]

Role played by Shyama Prasad Mukherjee

Dr. Shyama Prasad Mukherjee was one of the towering personalities of Indian history. He had significant contributions in the field of education, politics and national integrity. Dr. Mukherjee's activism in politics came at a difficult time. By this time, due to the machinations of British Indian government, considerable polarization on religious lines had taken place in India. In 1939, he joined Hindu Mahasabha and became a full-time active political leader. One historian has remarked, "For the first and last times the Hindus of Bengal found a spokesman who did not care at all for political expediency or personal interest."[9]

Dr. Mukherjee's entry into politics was welcomed by Mahatma Gandhi also. When Dr. Mukherjee sarcastically remarked Gandhi that "now you will call me communal." Gandhi replied, "Like Shiva who drank the poison after churning the sea, somebody must be there to drink the poison of Indian politics. It can be you."[10]

In the fourteen years of Shyama Prasad Mukherjee's political career, one of his greatest achievements was the counter-movement spearheaded by him against United Bengal movement. According to him, if the Muslim League's demand for separate Pakistan based on Two-Nation theory was justified then the Hindu-majority western districts of Bengal also have the right to remain in India with the same logic. Dr. Mukherjee organized massive rallies and petitioned the British government. He feared that a Sovereign and United Bengal would lack a secular foundation and eventually it would join Pakistan. Along with pointing out the Great Calcutta killings (1946) and the Noakhali riots as evidence for the provincial government's (under Suhrawardy) failure in protecting Hindus, Dr. Mukherjee put up the logic that:

"If 25% of the population of India cannot live with 75% of the majority, how can 45% of the Hindus live with 55% of the Muslims in Bengal?"[11] Regarding this context, Shyama Prasad Mukherjee voiced "You divided India, I divided Pakistan."

His cogent arguments and "forceful advocacy of the scheme for the partition of Bengal succeeded in winning over a large number of leaders in Bengal, including Congressmen to his side. Dr. Mookerjee convened a well-attended two-day conference of Hindu representative from all parts of Bengal. Apart from Hindu Mahasabha Members a large number of other representatives convened from all over the province. Leading intellectuals and scholars like R.C. Majumdar, Dr. Suniti Kumar

Chatterji, the veteran revolutionary Hemendra Prasad Ghosh, Lord Sinha, among others, also participated. The conference unanimously passed a resolution that a "separate province must be created comprising the Hindu majority areas in Bengal..." So widespread was the support for Dr. Mookerjee's scheme of partitioning Bengal that an opinion poll held by the leading daily Amrita Bazar Patrika in April showed that 98.6 per cent voted yea, with only 0.6 per cent favoring a united Bengal. In April, Dr. Mookerjee met the Viceroy Mountbatten and pointed out why the partition of Bengal was necessary.[12]

The role played by Dr. Mukherjee was greatly admired by many nationalist leaders who willingly gave their support including Gandhi and Sardar Patel. According to Sardar Patel, Shyama Prasad Mukherjee played a historic role in demanding partition of Bengal and saving a part of it from Jinnah's Pakistan.

Conclusion

The most striking aspect of the partition of Bengal was the fact that the same Bengali Hindus who vehemently opposed the 1905 partition done by Curzon, were the ones who demanded the division of the same province on communal lines less than half a century later. One way to understand this by noting the fact that the communal skirmishes that started in 1905 reached the peak by 1947. Bengal politics also changed dramatically after the birth of Muslim League in 1906 in Dhaka. It played a major role in creating an atmosphere of political betrayal among Muslims. When British annulled Bengal partition in 1911 many Muslims who benefited from it were angered. Aftermath of 1937 elections, the provincial politics of Bengal (1937-1947) saw the influence of communal parties. What further aggravated the situation was the communal violence in Calcutta in August 1946 and those in Noakhali just seven weeks later. Most Historians believed that Calcutta riots were by far the most cataclysmic event leading to the partition of Bengal. Consequently, in February 1947, the Hindu Mahasabha under Shyama Prasad Mukherjee put forward the demand for dividing Bengal on religious grounds. It was thus Dr. Mookerjee's forceful intervention and leadership that saved a portion of Bengal and saved the historic and strategically important city of Calcutta from going to Muslim League ruled Pakistan. This was, arguably, the greatest achievement of Dr. Syama Prasad Mookerjee's life.

References

---

[1] Shila Sen, *Muslim Politics in Bengal, 1937–1947* (New Delhi: Implex India, 1976), 1.

[2] Shyamali Ghosh, *Fazlul Huq and Muslim Politics in Pre-Partition Bengal* (Kolkata: Progressive Publishers, 2009).

[3] Bipan Chandra, *History of Modern India* (New Delhi: Orient Blackswan, 2009), 248–49.

[4] Bipan Chandra, *History of Modern India* (New Delhi: Orient Blackswan, 2009), 248.

[5] Sekhar Bandyopadhyay, *From Plassey to Partition and After: A History of Modern India* (New Delhi: Orient Blackswan, 2004), 255.

[6] Suranjan Das, "Communal Violence in Twentieth Century Colonial Bengal: An Analytical Framework," *Social Scientist* 18, no. 6/7 (1990): 21–37, https://doi.org/10.2307/3517477.

[7] Suranjan Das, "Communal Violence in Twentieth Century Colonial Bengal: An Analytical Framework," *Social Scientist* 19, no. 9/10 (1991): 28.

[8] Suranjan Das, "Communal Violence in Twentieth Century Colonial Bengal: An Analytical Framework," *Social Scientist* 18, no. 6/7 (1990): 21–37, https://doi.org/10.2307/3517477.

[9] N. K. Garg, *Dr. Syama Prasad Mookerjee: The Great Educationist* (New Delhi: Prabhat Prakashan, 2020), 158.

[10] N. K. Garg, *Dr. Syama Prasad Mookerjee: The Great Educationist* (New Delhi: Prabhat Prakashan, 2020), 158-59.

[11] C. Chatterjee, *Syama Prasad Mookerjee, the Hindu Dissent and the Partition of Bengal, 1932–1947* (London/New York: Routledge, 2020), 205.

[12] *Dr. Syama Prasad Mookerjee: A Very Short Life-Sketch* (Pt. Deendayal Upadhyaya Prashikshan Mahabhiyan, 2015), 14.

Bibliography

Chandra, Bipan, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, K. N. Panikkar, and Sucheta Mahajan. *India's Struggle for Independence, 1857–1947*. New Delhi: Penguin Books, 1989.

Chatterji, Joya. *Communalism in Bengal: From Famine to Noakhali, 1943–47*. New Delhi: Sage Publications, 1994.

Chatterji, Joya. *Bengal Divided: Hindu Communalism and Partition, 1932–1947*. Cambridge: Cambridge University Press, 1995.

Madhok, Balraj. *Dr. Syama Prasad Mookerjee: A Biography*. New Delhi: Deepak Prakashan, 2017.

Momen, Humayra. *Muslim Politics in Bengal: A Study of the Krishak Praja Party and the Elections of 1937*. Dacca: Sunny House, 1972.

Roy, Tathagata. *The Life and Times of Dr. Syama Prasad Mookerjee: A Complete Biography*. New Delhi: Prabhat Prakashan, 2012.

Roy, Tathagata. *Syama Prasad Mookerjee: The Founder of Bharatiya Jana Sangh*. New Delhi: Penguin, 2014.

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 05.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

भारतीय स्थापत्य का उद्भव (नवपाषाण काल से प्राक मौर्य काल तक)

डॉ. बृजेश रावत* **rawat.brijesh11@gmail.com**

शोभित कुमार पाण्डेय† **shobhitpandeycoo@gmail.com**

सारांश

यह शोधपत्र नवपाषाण काल से प्राक-मौर्य युग तक भारतीय स्थापत्य की विकास यात्रा का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें सामाजिक, धार्मिक आर्थिक और तकनीकी कारकों के सम्मिलन को स्थापत्य परंपरा के मूल आधार के रूप में रेखांकित किया गया हैं। नवपाषाण काल में लकड़ी, मिट्टी और घास जैसी स्थानीय सामग्रियों से निर्मित साधारण एवं कार्यात्मक आवास, अर्द्धघुमंतू जीवन शैली और प्राकृतिक परिवेश के अनुकूलन को दर्शाते हैं। इसके पश्चात् सिंधु घाटी सभ्यता में हड़प्पा, मोहनजोदडो और धौलावीरा जैसे नगरों में पक्की ईंटों की सुव्यवस्थित सड़कें, जल निकासी प्रणाली और योजनाबद्ध आवासीय संरचना नियोजन तथा तकनीकी प्रगति की परिपक्वता को प्रकट करती है। वैदिक काल में अस्थायी यज्ञशालाएँ, सभा-समिति भवन, गोशालाएँ, पशुपालन एवं प्रारंभिक कृषि-आधारित समाज के सांस्कृतिक स्वरूप को प्रतिबिम्बित करती हैं। जबकि उत्तर-वैदिक काल में स्थायी ग्राम बसावट और ईंट-लकड़ी के संरचित भवनों का विकास प्रारंभ हुआ। प्राक-मौर्य काल में पत्थर के स्तंभों, मौर्य-पूर्व चौरस स्तंभों, शिल्पकला और गुफा-स्थापत्य के नवाचार निरंतरता को प्रमाणित करता है तथा समाज, धर्म, अर्थव्यवस्था तथा पर्यावरण की ऐतिहासिक निरंतरता को प्रमाणित करता है। समाज, धर्म, अर्थव्यवस्था तथा पर्यावरण के परस्पर संबंधों को उजागर करते हुए इसके सांस्कृतिक मूल्यों और तकनीकी उपलब्धियों की नींव को स्पष्ट करता है।

बीजशब्द :

भारतीय वास्तुकला, नवपाषण काल, सिंधु-घाटी सभ्यता, वैदिक काल, मौर्य-पूर्व वास्तुकला, शैलकृत गुफाएँ, नगर नियोजन, अशोक स्तंभ।

सामान्य परिचय

भारतीय स्थापत्य कला का इतिहास अत्यंत प्राचीन और निरंतरता से परिपूर्ण है। वर्षो की इस यात्रा में भारतीय स्थापत्य ने अनेक चरणों को पार किया एवं हर युग में न केवल अपने समय का सामाजिक - सांकृतिक प्रतिबिम्ब प्रस्तुत किया, बल्कि भविष्य के लिए एक सुदृढ़ आधार भी निर्मित किया। यह केवल भौतिक संरचनाओं का समुच्चय नहीं है, बल्कि किसी सभ्यता की आत्मा, तकनीक और कलात्मक दृष्टि की अभिव्यक्ति भी है। इतिहासकार पर्सी ब्राउन के शब्दों में, "भारतीय स्थापत्य कला अपनी विविधता और निरंतरता के कारण विश्व की सबसे विशिष्ट परंपराओं में से एक है।"[1] भारतीय स्थापत्य

* **असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ**

† **शोधार्थी, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ**

की आरंम्भिक झलक सिंधु घाटी सभ्यता (2600-1900ई.पू.) में मिलती है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के नगर नियोजन में सुव्यवस्थित जल निकासी प्रणाली, पकी ईंटों के मकान, महान स्नानागार और अनाज कोष उस काल की वैज्ञानिक दृष्टि और स्थापत्य दक्षता को प्रमाणित करते हैं।[2] जॉन मार्शल ने लिखा है कि "हड़प्पावासी स्थापत्य की दृष्टि से एक सुव्यवस्थित शहरी समाज के परिचायक थे, जिनकी तकनीक आज भी चकित करती है।"[3] यह युग भारतीय स्थापत्य की आधारशिला बना और आगे के विकास की दिशा तय की (321-185) में स्थापत्य ने राजसत्ता और धर्म दोनों के प्रभाव में नया आयाम प्राप्त किया। अशोक द्वारा निर्मित चमकदार सतह वाले पत्थर के स्तम्भ, लौरिया नंदनगढ़ और सांची के स्तूप बौद्ध स्थापत्य की परिवक्वता का परिचायक हैं। रोमिला थापर के अनुसार "मौर्यकालीन स्थापत्य में साम्राज्यवादी शक्ति और धार्मिक संदेश का अद्भुत संगम देखने को मिलता है।"[4] इसी काल में बाराबर और नागार्जुनी की गुफाओं जैसे शैलकृत गुफाएँ शिल्पकला के उत्कृष्ट उदाहरण बनीं।

सिंधु घाटी की नगरीय संस्कृति से लेकर आधुनिक गगनचुबीं इमारतों तक भारतीय स्थापत्य का विकास केवल तकनीकी उन्नति का इतिहास नहीं हैं, बल्कि यह भारत की सांस्कृतिक आत्मा, उसकी विविधता और निरंतरता का सजीव साक्ष्य हैं। प्रत्येक ऐतिहासिक युग ने अपने सामाजिक, धार्मिक और कलात्मक मूल्यों को स्थापत्य की भाषा में रूपान्तरित किया तथा उन्हें अगली पीढ़ियों तक पहुँचाया। सिंधु सभ्यता की सुव्यवस्थित नगरीय योजना, वैदिक काल के यज्ञिक वेदियों से लेकर मौर्य, गुप्त, चालुक्य, पल्लव, चोल और मुगल काल की भव्य स्थापत्य परंपराएँ, सभी ने भारत की सांस्कृतिक चेतना को मूर्त रूप दिया। इन परंपराओं का सतत विकास आधुनिक युग की स्थापत्य शैलियां में भी स्पष्ट दिखाई देता है। जहाँ पारम्परिक प्रतीकों और आधुनिक तकनीकों का समन्वय देखने को मिलता है। यही कारण है कि भारतीय स्थापत्य परंपरा आज भी बहुलतावादी, समन्वयकारी और जीवंत संस्कृति का प्रतीक बनी हुई है। एक ऐसी संस्कृति जो अतीत की गौरवपूर्ण धरोहर को वर्तमान की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करती है।

नवपाषाण कालीन स्थापत्य

नवपाषाण काल भारतीय उपमहाद्वीप में मानव सभ्यता के क्रमिक विकास का वह महत्वपूर्ण चरण है, जब समाज ने शिकारी-संग्रहक जीवन से कृषि और पशुपालन पर आधारित स्थाई बसावट की ओर निर्णायक कदम बढ़ाया। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता थी-मानव द्वारा अपने प्राकृतिक परिवेश को समझते हुए स्थाई ढाँचे तथा ग्राम्य संरचनाओं का निर्माण। पहले जहाँ लोग अस्थाई झोंपड़ियों में रहते थे, वहीं नवपाषाण काल में उन्होंने नियोजित आवास, अनाज, अनाज भंडारण कक्ष और सामुदायिक स्थलों का निर्माण करना शुरू किया। यह केवल जीवन शैली का परिवर्तन नहीं था, बल्कि सामाजिक संगठन, तकनीकी कौशल और आर्थिक संरचना में गहरे बदलाव का संकेत भी था। इस संरचनात्मक विकास को समझने के लिए मेहरगढ़ (बलूचिस्तान, पाकिस्तान) और सरायनाहर राय (उत्तर प्रदेश, भारत) जैसे प्रमुख स्थलों का अध्ययन महत्वपूर्ण है। मेहरगढ़ भारतीय उपमहाद्वीप के सबसे प्राचीन नवपाषाणीय स्थलों में से एक है, जिसका कालक्रम लगभग 7000 ईसा पूर्व से माना जाता है। यहाँ उत्खनन से ऐसे मकान मिले हैं जो मिट्टी की कच्ची ईंटों से बने बहुकक्षीय ढांचे थे। इन घरों में रहने और भंडारण के लिए अलग-अलग कमरे, खुले आँगन और अनाज रखने के लिए विशेष कठोर बने थे। प्रारंभिक अवस्था में मकान साधारण थे-मिट्टी एवं लकड़ी से निर्मित, घास-फूस की छतों वाले थे। परंतु बाद की अवस्थाओं में यहाँ ग्राम योजना विकसित हुई, जिसमें सड़कों और गलियों का स्पष्ट विन्यास दिखाई देता है।

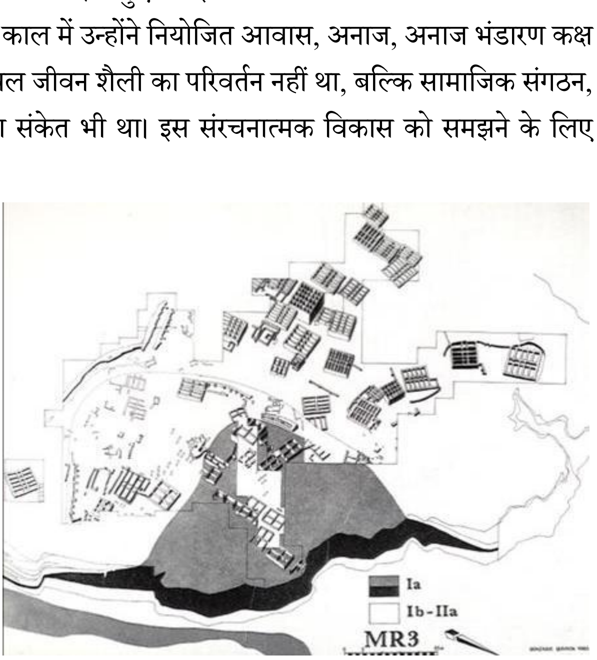

(चित्र 1 मेहरगढ़ उत्खनन योजना का रेखाचित्र Evidence for Labret Use in Prehistory)

अनाज भंडारण के लिए सामुदायिक संरचनाएँ और जल-संसाधन के लिए मिट्टी के बने टैंक भी पाए गये। यह स्पष्ट करता है कि मेहरगढ़ के लोग न केवल कृषि (गेंहू, जौ) पशुपालन में दक्ष थे, बल्कि उन्होंने कृषि उत्पादन के संरक्षण और वितरण के लिए भी स्थाई संरचनाओं का विकास कर लिया था। मेहरगढ़ में पक्की ईंटों के सीमित, पत्थर की नींव और मिट्टी से पलस्तर की परम्परा उस समय की तकनीकी प्रगति को दर्शाती है।यह स्थल नवपाषाणकालीन ग्राम्य जीवन की उच्चतम उपलब्धियों में गिना जाता है, क्योंकि यहाँ स्थाई कृषि ग्राम के साथ-साथ प्रारम्भिक शिल्प के प्रमाण भी मिलते हैं।

भारत के नवपाषाण स्थालों बुर्जहोम, गुफकराल और चिरांद की स्थापत्य परंपराएँ प्रारंम्भिक मानव सभ्यता के बसावट और वास्तु-विकास के महत्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करती है। कश्मीर घाटी में स्थित बुर्जहोम (लगभग 3000-1500 ई.पू.) स्थल की विशेषता इसके भूमिगत गर्तावास हैं, जिन्हें ठंडे जलवायु के अनुकूल बनाया गया था। ये गोल या अंडाकार गड्ढे पत्थर की स्लैबों से घिरे होते थे और उनमें उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनाई जाती थीं। इनमें लकड़ी या फूस की छत के संकेत मिलते हैं, जो उस समय की योजनाबद्ध घरेलू वास्तुकला को दर्शाते हैं। इसके निकट स्थित गुफकराल स्थल पर भी ऐसे ही गड्ढ़ा स्थल पर भी ऐसे ही गड्ढ़ानुमा आवास मिले हैं, जिनकी मिट्टी से पुती हुई फर्शें गृह अग्निकुण्ड आवास मिलें हैं। यह स्थल स्थाई कृषक जीवन शैली और प्रारंभिक सामाजिक संगठन संगठन की ओर संकेत करता है।

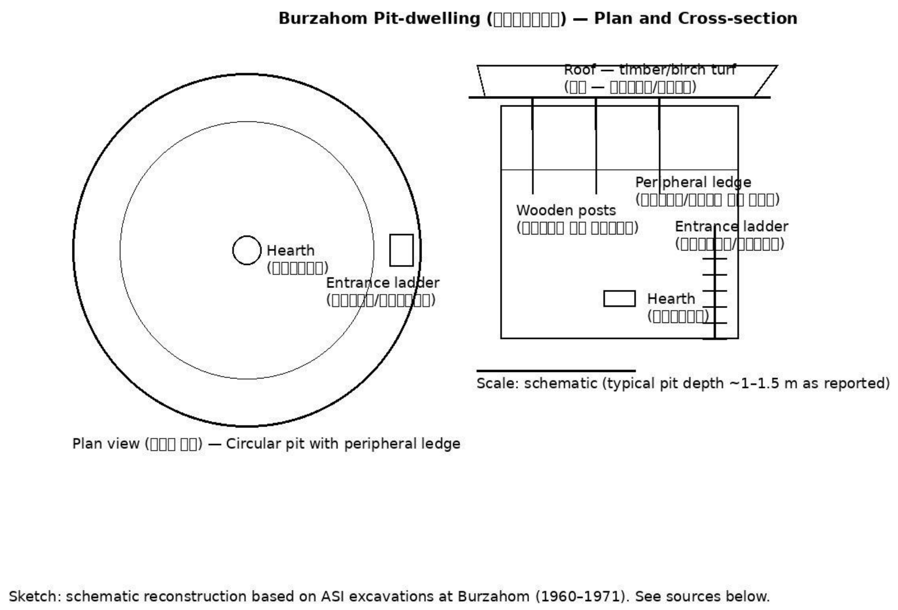

चित्र : 2 (Archaeological Survey of India. (1979). Excavations at Burzahom (1960–71) Delhi: Archaeological Survey of India.)

पूर्वी भारत में चिरांद (लगभग2500-1340ई.पू.) स्थल पर वास्तुकला का विकास और अधिक उन्नत रूप में दिखाई देता है, जहाँ मिट्टी और बाँस की दीवारों से बने भूमि -स्तरीय आयताकार घर पाए गये हैं।[5] यहाँ भंडारण स्थलों एवं अग्निकुडों के प्रमाण भी मिले हैं, जो अन्न अधिशेष और सामाजिक जटिलाता के संकेत हैं। इन तीनों स्थलों की वास्तु परंपरा यह दर्शाती है कि भारतीय उपमहाद्वीप में नवपाषाण काल के दौरान मानव ने पर्यावरण और संसाधनों के अनुसार विविध स्थापत्य शैलियाँ विकसित की, जो आगे चलकर भारतीय स्थापत्य के क्रमिक विकास की नींव बनीं।

इसके विपरीत गंगा घाटी का सरायनाहर राय स्थल नवपाषाण कालीन बसावट का एक अलग स्वरूप प्रस्तुत करता है। उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में स्थित यह स्थल लगभग 8000-6000 ईसा पूर्व का है और यहाँ से ऐसे प्रमाण मिलें है जो अर्ध-स्थाई जीवन शैली को दर्शाते हैं। यहाँ मिट्टी और लकड़ी से बने झोपडेनुमा घरों के अवशेष मिले हैं, जिनकी आकृति गोल या अंडाकार थी तथा जिनकी दीवारों को मिट्टी से लीपा जाता था। छतें घास-फूस की होती थीं जिन्हें लकड़ी के खंभों से सहारा

दिया जाता था। इन घरों के आसपास आग जलाने के स्थान और पशुपालन से जुडें ढाँचे भी मिले हैं। सरायनाहर राय कब्रिस्तान के उत्खनन से यह स्पष्ट हुआ कि यहाँ स्थायी समुदाय का विकास हो चुका था, क्योंकि मृतकों को विशेष रूप से बनाए गये गड्ढों में दफनाया जाता था। यह दफ़न संस्कृति सामाजिक संगठन और धार्मिक विश्वासों की ओर संकेत करती है। यहाँ हड्डियों से बने औजार, पत्थर की धारदार छुरियाँ और मृदभाण्ड भी मिले हैं, जो स्थानीय संसाधनों पर आधारित शिल्पकला और भंडारण की परम्परा को दर्शाते हैं। इस स्थल पर कृषि के साथ-साथ शिकार और मछली पकड़ने की परंपरा भी जारी थी, जो नवपाषाण कालीन संक्रमण चरण की विशिष्टता है।[6]

इन दोनों स्थलों की तुलना से नवपाषण कालीन संरचनात्मक विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। मेहरगढ़ में जहाँ नियोजित ग्राम योजना, अनाज भण्डार, पक्की ईंटों और सामुदायिक ढाँचों का विकास दिखता है, वहीं सरायनाहर राय में मिट्टी और लकड़ी के साधारण आवास, अर्द्ध-स्थाई जीवन और कृषि के प्रारंभिक प्रयोग दिखाई देते हैं। दोनों ही स्थलों पर यह समानता मिलती है कि आवासीय संरचनाएँ स्थानीय संसाधनों पर आधारित थी और सामुदायिक गतिविधियों के लिए विशेष स्थलों का निर्माण किया जाता था। धीरे-धीरे इन संरचनाओं में स्थायित्व, आकार तथा योजना की जटिलता बढ़ती गई एवं सरायनाहर राय की मिट्टी-लकड़ी की झोंपड़ियाँ और सामूहिक दफ़न संस्कार, दोनों ही उस संक्रमण को प्रकट करते हैं जिसने भारतीय उपमहाद्वीप में ग्राम्य और नगरीय सभ्यता की नींव रखी।

इस प्रकार नवपाषाण काल केवल पत्थर के औजारों और कृषि की शुरुआत तक सीमित नहीं था, बल्कि यह उस समय की स्थापत्य परंपरा का भी आरंभ था। मिट्टी की कच्ची ईंटों, लकड़ी और घास-फूस से बने मकानों से लेकर पक्की ईंटों और नियोजित ग्राम्य संरचनाओं तक की यह यात्रा आने वाली हड़प्पा सभ्यता के नगर नियोजन, जल-निकासी और सार्वजनिक निर्माण की आधारशिला बनी।[7] मेहरगढ़ और सरायनाहर राय जैसे स्थल प्रमाणित करते हैं कि नवपाषाणकाल में मनुष्य ने केवल भूमि पर अधिकार नहीं पाया, बल्कि अपने रहने के ढाँचे को भी व्यवस्थित और स्थाई रूप देने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया।

हड़प्पाकालीन स्थापत्य

हड़प्पा सभ्यता (3300ई.पू.-1300ई.पू.) भारतीय उपमहाद्वीप की प्राचीनतम और उन्नत सभ्यताओं में से एक थी, जिसे विश्व की पहली शहरी सभ्यताओं में स्थान दिया जाता है। इस सभ्यता का विस्तार बहुत व्यापक था, जिसमें पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तरी राजस्थान, गुजरात, सिंध और बलूचिस्तान के बड़े हिस्से शामिल थे। हड़प्पा सभ्यता की सबसे बड़ी विशेषता इसकी योजनाबद्ध नगर रचना तथा स्थापत्य कला थी। यहाँ के नगर केवल आवासीय समूह नहीं थे। पकी हुई से बने घर, चौड़ी सड़कें, निकासी व्यवस्था, सार्वजनिक स्नानागार और कारीगरी की कार्य-शालाएँ यह दर्शाती हैं कि हड़प्पावासी स्थापत्य-कला और शहरी योजना के क्षेत्र में अत्यंत उन्नत थें।[8]

हड़प्पा सभ्यता के नगरों को सामान्यतः दो भागों में बाँटा गया था-पश्चिमी ओर ऊँचा गढीला भाग और पूर्वी ओर फैला हुआ निचला नगर। गढीले भाग पर सार्वजनिक इमारतें, स्नानागार, गोदाम, सभा-गृह तथा धार्मिक स्थल बनाए जाते थे। यह भाग प्रायः ऊँचे मंच पर निर्मित होता है। दूसरी ओर निचले नगर में आम लोगों के घर, गलियाँ, कार्यशालाएँ और बाजार होते थे। यह विभाजन सामाजिक संरचना और प्रशासनिक नियंत्रण की ओर संकेत करता हैं। नगरों की गलियाँ उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम दिशा में एक-दूसरे को काटती थीं एवं घरों से जुड़ी छोटी गलियाँ इनमें मिलती थीं। इस तरह की योजना आज के आधुनिक नगर नियोजन की याद दिलाती है।[9]

मोहनजोदडों हड़प्पा सभ्यता का सबसे प्रसिद्ध नगर था। यहाँ का महान स्नानागार विश्व का सबसे प्राचीन जल-संरचना का उदाहरण है।[10] यह स्नानागार पक्की ईंटों से बनाया गया था, जिसकी दीवारें और फ़र्श जिप्सम मॉटार से जोड़े गए थे, ताकि यह पूरी तरह जलरोधक हो सके। स्नानागार के चारों ओर स्तम्भ युक्त गलियारे और कमरे थे, जिसमें से एक में कुआँ भी बना हुआ था। स्नानागार में जाने के लिए बड़े द्वार और सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। यह स्थल धार्मिक अनुष्ठानों या सामूहिक स्नान का केन्द्र रहा होगा। मोहनजोदड़ो में एक विशाल सभा गृह भी मिला है, जिसमें आयताकार स्तंभों की पंक्तियाँ बनी थीं।

यह सम्भवतः प्रशासनिक बैठकों या सामुदायिक गतिविधियों के लिये प्रयुक्त होता था। निचले नगर में चौड़ी सड़कों के दोनों ओर घर बने थे। अधिकांश घरों में आँगन, स्नानागार तथा पक्की ईंटों से निर्मित नालियाँ थीं, जो नगर की मुख्य जल-निकासी प्रणाली से जुड़ी थीं। यह दिखाता है कि यहाँ स्वच्छता और जल-व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

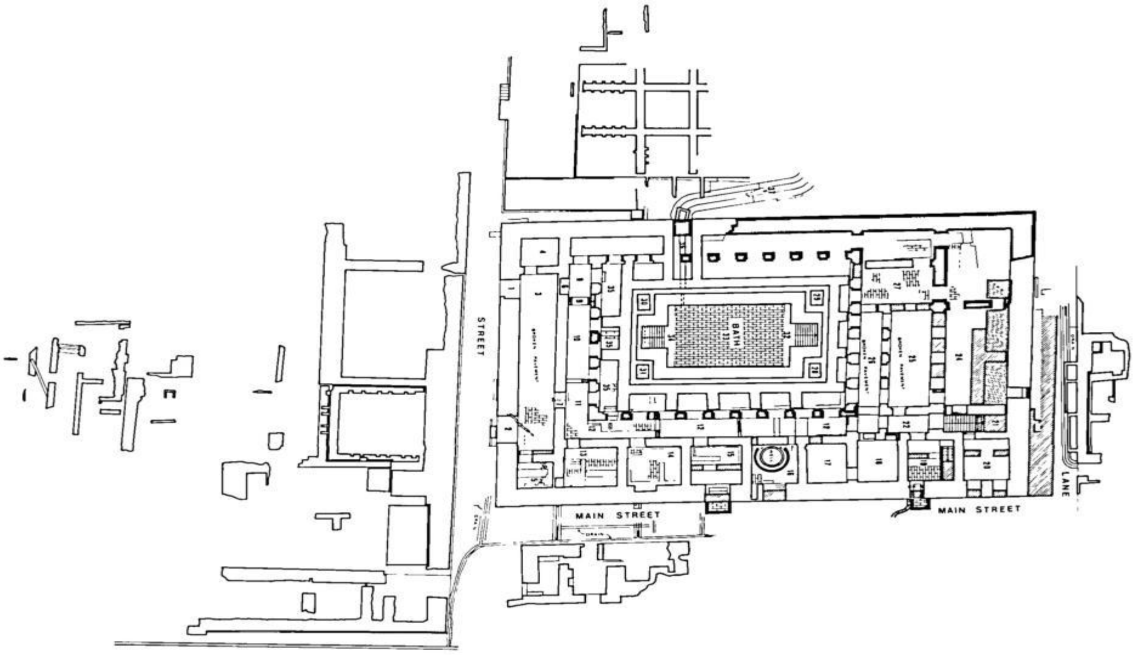

चित्र : 3 (स्नानागार का ग्राउंड प्लान https://architexturez.net/file/jansen1989-jpg)

हड़प्पा नगर लगभग 150 हेक्टेयर में फैला हुआ था। यहाँ भी गठीला भाग पश्चिम में और निचला नगर दक्षिण पूर्व में था। गढ़ीले भाग में कारीगरों की कार्यशालाएँ, कब्रिस्तान तथा धार्मिक स्थल मिले हैं। दक्षिणी द्वार के बाहर छोटे मकान, नालियाँ, स्नान-स्थल और कुआँ मिलें हैं। माना जाता है कि यह स्थान यात्रियों एवं व्यापारियों के ठहरने का केंद्र रहा होगा। हड़प्पा से शंख, अगेट की वस्तुएँ बनाने वाली कार्यशालाओं के अवशेष मिले हैं, जो आर्थिक गतिविधियों और कारीगरों की दक्षता का प्रमाण है।[11] यहाँ के मकान भी पक्की ईंटों से बने थे और उनमें स्नान-घर, आँगन और जल निकासी की सुव्यवस्था थी।

राजस्थान स्थित कालींबगन की सबसे विशेषता यहाँ बने अग्निकुंड हैं जो धार्मिक या अनुष्ठान गतिविधियों का संकेत देते हैं। नगर का गढीला भाग और निचला नगर दोनों किलेबंदी से सुरक्षित थे। यहाँ की सड़कों का नियोजन भी सुव्यवस्थित था एवं मकान नियमित ढंग से बने थे। कब्रिस्तान में नियमित दफन के अलावा गोलाकार गड्ढों में रखे सामान भी मिले हैं। यह स्पष्ट करता है कि कालीबंगन धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट केन्द्र रहा होगा। हरियाणा स्थित राखीगढ़ी हड़प्पा संस्कृति का सबसे बड़ा स्थल माना जाता है। यहाँ पाँच टीले खोजे गये हैं। गढ़ीले भाग में मिट्टी की ईंटों से बनी किलेबंदी, मंच, कुआँ, अग्निकुंड, सड़कें तथा नालियाँ पाई गई हैं। यहाँ रत्न निर्माण कार्यशाला के अवशेष मिले हैं, जिनमें अधूरे मनके, काटे गए पत्थर और भट्यिँ शामिल थीं। इसके अतिरिक्त यहाँ हड्डी एवं हाथी-दांत से बनी वस्तुएँ, कंधे, सुइयाँ और उत्कीर्ण उपकरण मिले हैं। एक कब्रिस्तान में आठ समाधियाँ मिली, जिनमें से एक लकड़ी के ताबूत में थीं। यह इस सभ्यता की मृत्यु-संस्कार परंपराओं को उजागर करता है।

चन्हूदड़ो अपेक्षाकृत छोटा नगर था और इसमें किलेबंदी नहीं थी। इसे मुख्यतः कारीगरी का नगर कहा जा सकता है। यहाँ से मनका निर्माण कारखाना मिला है, जहाँ कर्नेलियन, अगेट और क्रिस्टल जैसे अर्ध-बहुमूल्य पत्थरों से मनके बनाये जाते थे। इसके अलावा सीप का काम, मुहर निर्माण तथा पत्थर के बांट बनाने के प्रमाण भी मिले हैं। यह स्पष्ट करता है कि यह नगर

व्यापारिक और औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। यहाँ के मकान भी मिट्टी की ईंटों के बने मंचों पर खड़े थे, जो समय-समय पर बाढ़ से सुरक्षा के लिए बनाए गए होंगे।

सभ्यता की वास्तुकला केवल भौतिक संरचनाओं तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन से भी जुड़ी हुई थी। घरों में स्नानागार और नालियाँ यह दर्शाती है कि हड़प्पावासी स्वच्छता के प्रति सजग थे। महान स्नानागार और अग्निकुण्ड धार्मिक अनुष्ठानों के साक्ष्य देते हैं। कार्यशालाएँ एवं औद्योगिक स्थल यह प्रमाणित करते है कि नगर कारीगरी और व्यापार के बड़े केन्द्र थे। गढ़ीले भाग और निचले नगर का विभाजन सामाजिक श्रेणीकरण तथा प्रशासनिक व्यवस्था को भी दर्शाता है।

इस प्रकार हड़प्पा सभ्यता की वास्तुकला योजनाबद्ध नगर-रचना, ईंट निर्मित भवनों, उन्नत जल-निकासी प्रणाली, धार्मिक स्थलों और कारीगरी केंद्रों पर आधारित थी। मोहनजोदड़ो का स्नानागार, हड़प्पा की कार्यशालाएँ, कालीबंगन के अग्निकुंड, राखीगढ़ी का रत्न निर्माण और चन्हूदड़ो का औद्योगिक स्वरूप इस सभ्यता की स्थापत्य कला को विश्वस्तर पर विशिष्ट बनाते हैं।[12] यह सभ्यता भारतीय वास्तुकला की वह आधारशिला थी, जिसने आगे चलकर मौर्य, गुप्त और मध्यकालीन स्थापत्य परंपराओं को प्रभावित किया। हड़प्पा वास्तुकला आज भी मानव इतिहास की सबसे सुसंगठित और विकसित स्थापत्य परंपराओं में से एक मानी जाती है।

वैदिक कालीन स्थापत्य

वैदिक काल भारतीय इतिहास का वह अत्यंत महत्वपूर्ण युग है, जिसने उपमहाद्वीप में सामाजिक, धार्मिक भाषाई और सांस्कृतिक संरचनाओं की नींव रखी। यह काल लगभग 1500 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व तक माना जाता है और इसे दो मुख्य चरणों - ऋग्वैदिक काल और उत्तरवैदिक काल में विभाजित किया जाता है। ऋग्वैदिक काल मुख्यतः उत्तर पश्चिम भारत के सिंधु और सरस्वती नदियों के उपजाऊ मैदानों में केंद्रित था। इस समय आर्या का आगमन हुआ और उन्होंने अपनी जीवनशैली, धार्मिक रीति-रिवाज और सामाजिक संस्थाएँ स्थापित की।

आरम्भिक वैदिक समाज अर्ध-घुमंतू था, जो मुख्यतः पशुपालन पर आधारित था। गायों को इस समाज में अत्यधिक महत्व दिया जाता था और उन्हें सम्पत्ति, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं धार्मिक कर्मकाण्ड का प्रतीक माना जाता था। इसके अतिरिक्त भैंस, भेड़ और बकरियों का पालन भी किया जाता था। पशुपालन इस समाज की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार था, किन्तु धीरे-धीरे कृषि का विकास हुआ। सिंधु और सरस्वती घाटियों की उर्वर भूमि और जल संसाधनों ने स्थायी कृषि संभव बनाया। जौ, गेहूँ, चना, तिल और अन्य खाद्यान की खेती की गई। आरम्भिक काल में लकड़ी तथा हड्डी के औजारों का प्रयोग होता था, जबकि उत्तरवैदिक काल में लोहे के औजारों के प्रयोग से कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई। स्थाई कृषि ने गाँवों के निर्माण और मानव समुदायों में स्थायित्व लाने में मदद की। वैदिक काल भारतीय स्थापत्य कला के विकास का वह मूलाधार था, जिसने आगे चलकर संपूर्ण भारतीय वास्तु परंपरा को वैचारिक, दार्शनिक और तकनीकी दिशा प्रदान की। इस काल में वास्तुकला का स्वरूप न केवल भौतिक निर्माण तक सीमित था बल्कि यह धार्मिक सामाजिक और दार्शनिक जीवन का अभिन्न अंग थी। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में वास्तु एवं शिल्प से संबंधित अनेक संकेत मिलते हैं जो यह प्रमाणित करते हैं, कि वैदिक आर्य केवल यायावर या घुमंतू नहीं थे, बल्कि उन्होंने स्थायी निवासों सभाओं, यज्ञ वेदियों, पुरों (नगरों) और दुर्गों का निर्माण भी किया था। वैदिक वांड्मय में "विश्वकर्मा" को सृष्टि का प्रथम शिल्पकार कहा गया है, जो समस्त निर्माण, व्यवस्था और सौंदर्य का प्रतीक है, विश्वकर्मा सूक्त इस सृजनशीलता की उत्कृष्ट मिसाल है।[13] जिसमें ब्रम्हाण्डीय सृजन को स्थापत्य रूपक के माध्यम से समझाया गया है। इसी प्रकार "वाष्तोष्पति" नामक देवता का भी उल्लेख मिलता है, जो घरों, निवासों और भवनों की रक्षा के लिये पूजित थे। इसका प्रमाण ऋग्वेद[14] और अथर्ववेद[15] में मिलता है, जहाँ ग्रहों की स्थिरता, रोग निवारण और समृद्धि के लिए वास्तोष्पति से प्रार्थना की गई है।

ऋग्वैदिक समाज में गृह निर्माण कला का विशेष महत्व था। गृह को 'शाला', 'वेश्म', 'धामनु', गृह, वसति, 'सद्म', क्षय, 'निवेशन' जैसे विभिन्न नामों से संबोधित किया गया है, जो यह संकेत देते हैं कि वैदिक समाज में गृहों की अनेक प्रकार

की संरचनाएँ थीं। लकड़ी के स्तम्भों पर टिके गृह, जिनमें छप्पर पत्तों या लकड़ी से बने होते थे, उस समय की वास्तु शैली के उदाहरण हैं। ऋग्वेद में सौ स्तम्भों वाले गृहों का भी उल्लेख मिलता है।[16] जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस युग में बड़े भवनों का निर्माण सम्भव था। "स्तम्भ" या "स्थूण" वैदिक स्थापत्य की सबसे प्राचीन अवधारणा थी, जो आगे चलकर भारतीय मंदिर वास्तु की प्रमुख विशेषता बनी। वैदिक लोग इन स्तम्भों को केवल स्थापत्य आधार नहीं, बल्कि ब्रम्हाडीय प्रतीक मानते थे,- 'स्कम्भ' अर्थात् सृष्टि को धारण करने वाला तत्व। यही विचार बाद में यज्ञ-स्तंभ, इन्द्र-यष्टि, दीपस्तम्भ और मंदिर के गर्भगृह के स्तम्भों में परिवर्तित हुआ।

वैदिक काल में वास्तुकला का धार्मिक पक्ष अत्यंत गहरा था। यज्ञ वेदियाँ उस काल की सबसे परिष्कृत स्थापत्य उपलब्धियाँ थीं। वैदिक वेदी को 'चिति' कहा गया और उसके निर्माण की प्रक्रिया-उन्मान, निवेश, रचना और संकल्पना सब कुछ अत्यंत वैज्ञानिक और गणनात्मक था। इन वेदियों की आकृति वृत्ताकार, वर्गाकार, आयताकार, बाजपेय यज्ञ की बाज आकार वेदी आदि-आगे चलकर मंदिर स्थापत्य की नींव बनीं। ब्राम्हण ग्रन्थों और शुल्वसूत्रों में इन वेदियों के माप, दिशा और अनुपातों का अत्यंत विस्तृत वर्णन मिलता है, जो यह दर्शाता है कि वैदिक ऋषियों को ज्यामितीय और अनुपात सिंद्धान्तों की गहरी समझ थी। यही वैदिक वेदिका आगे चलकर "मंदिर पीठ" या "प्रसादाधार" के रूप में विकसित हुई। मंदिर के गर्भगृह को वैदिक यज्ञ वेदी का प्रतीक माना जाता है और इसकी पवित्रता, केंद्रिस्थता और ज्यामितीय परिपूर्णता वेदी की अवधारणा से ही प्रेरित है।

वैदिक वाङ्मय में नगरो और दुर्गो का भी उल्लेख मिलता है। "पुर" शब्द का प्रयोग नगर या किले के लिए हुआ है। ऋग्वेद में "अयासपुर" (अयासपुर नगर) और "अस्ममयीपुर" (पत्थर निर्मित नगर) जैसे उल्लेख यह प्रमाणित करते हैं कि वैदिक आर्य दुर्गनुमा से परिचित थे। इन्द्र को 'पुरन्दर -नगरो के विनाशक के रूप में सम्बोधित किया गया है।[17] जिससे यह भी संकेत मिलता है कि नगरों की सुरक्षा के लिए दीवारे और द्वार बनाये जाते थे। शिवाजी सिंह और आर.एस.बिस्ट जैसे विद्वानों ने कालीबंगा को वैदिक कालीन भरत जनों की राजधानी बताया है, जहाँ के यज्ञकुण्डों और वेदियों की संरचना वैदिक स्थापत्य परंपरा का मूर्त प्रमाण हैं। इस प्रकार, वैदिक युग में नगर नियोजन, गृह निर्माण, यज्ञ वेदी निर्माण और स्तंभ स्थापत्य सभी अपनी परिपक्व अवस्था में थे भले ही उनके अवशेष आज प्रत्यक्ष न मिलें।

आवासीय वास्तुकला में साधारण झोपड़ीनुमा घरों से लेकर बड़े परिवार और सामाजिक बैठकों के लिए बनाए गये "सभागृह" और समितिगृह का उल्लेख मिलता है। ये भवन सामूहिक जीवन और राजनीतिक निर्णयों के प्रतीक थे। अर्थवेद में "गोशाला" का उल्लेख मिलता है, जो पशुपालन की सामाजिक और आर्थिक महत्ता को दर्शाता है।[18] प्रारंभिक वैदिक काल में अस्थाई निवास और यज्ञशालाएँ ही स्थापत्य का मुख्य रूप थीं, क्योंकि जीवन घुमंतू और अस्थाई था, परंतु उत्तर वेदिक काल में जब समाज कृषि आधारित स्थाई निवास की ओर बढ़ा तब ईंट और लकड़ी के अधिक संगठित निर्माण सामने आए। धीरे-धीरे स्थायी वेदियों, कुओं और बड़े सामुदायिक भवनों का निर्माण हुआ। यही प्रवृति आगे चलकर शहरी और मंदिर स्थापना की नींव बनीं।[19]

उत्तर वैदिक काल में गंगा-यमुना देआब क्षेत्र में वैदिक संस्कृति का विस्तार हुआ। स्थाई कृषि, स्थाई ग्राम बसावट और नगरीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई, जिससे महाजनपदों और साम्राज्यों की नींव पड़ी। कृषि और जल प्रबन्धन में सुधार हुआ, कुएँ, गोशालोओं तालाब और सिंचाई व्यवस्था विकसित की गई।[20] लोहे के औजारों और कृषि तकनीकों ने खाद्यान उत्पादन बढ़ाया, जिससे जनसंख्या वृद्धि हुई और व्यापारिक गतिविधियों का विकास हुआ। इस काल में मृतिकाशिल्प, धातुकर्म, आभूषण, वस्त्र उद्योग और हथकरघा कला ने समाज की आर्थिक और सांस्कृतिक समृद्धि में योगदान दिया। अथर्ववेद का "शाला सूक्त" गृह वास्तु का सर्वश्रेष्ठ विवरण प्रस्तुत करता है। इसमें घर की रचना, उसकी दिशा, उसकी सुरक्षा और उसमें निवास करने वाले परिवार की समृद्धि के लिए की जाने वाली प्रार्थनाएँ हैं। इस सूक्त से यह सिद्ध होता है कि वैदिक समाज में गृह केवल निवास स्थान नहीं बल्कि, सामाजिक और आध्यात्मिक केन्द्र भी था "वास्तु" शब्द की व्युत्पति ही 'वस' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'निवास करना'। अतः वास्तु का उद्देश्य केवल निर्माण नहीं, बल्कि उस निर्माण में जीवन, ऊर्जा और आध्यात्मिकता का संचार करना था।

मौर्य कालीन स्थापत्य -

मौर्यकालीन स्थापत्य भारतीय स्थापत्य इतिहास का वह महत्वपूर्ण चरण है, जिसने पूर्ववर्ती परम्पराओं को नई दिशा प्रदान की और भारतीय शिल्पकला को विशाल पत्थर के स्मारकों तक पहुँचाया। मौर्य कला का विकास किसी आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं था, बल्कि यह एक दीर्घकालीन सांस्कृतिक और कलात्मक प्रक्रिया की परिपक्वता थी। मौर्य कला ने न केवल भारतीय शिल्पकला को एक नया माध्यम दिया, बल्कि बाहरी प्रभावों को आत्मसात् करके अपनी मौलिकता भी बनाए रखी। इस युग में लकड़ी कच्ची ईंट मिट्टी और धातु जैसी परंपरागत सामग्रियों के स्थान पर बड़े पैमाने पर पत्थर के उपयोग ने भारतीय स्थापत्य को स्थायित्व और भव्यता प्रदान की। आचार्य निहार रंजन राय के अनुसार मौर्य कलाकारों ने लकड़ी पर काम करने की प्राचीन परंपरा को पत्थर पर रूपान्तरित किया। स्तूप की रेलिंगों, द्वारों और चैत्यगृहों के अग्रभाग पर उकेरे गये अलंकरण लकड़ी के प्रोटोटाइप की प्रतिकृति प्रतीत होते हैं, यद्यपि जिस सूक्ष्मता और तकनीकी दक्षता के साथ मौर्य कलाकारों ने पत्थर को तराशा, उसे मात्र लकड़ी की कारीगरी के आधार पर समझना कठिन है। मौर्य कला की सबसे विशिष्ट विशेषता उसका विशाल आयाम, सुसंगठित योजना और उच्च कोटि की चमकदार पॉलिश है जिसे ‘‘मौर्य पालिश’’ कहा जाता है।[21]

चित्र : 4 कुम्राहार का स्तम्भित सभागार

`Sourse- https://hindi.news18.com/photogallery/bihar/patna-kumhrar-mauryan-era-80-pillared-hall

मौर्य कला की उत्पत्ति और स्वरूप को लेकर विद्वानों में विभिन्न मत हैं। एक मत के अनुसार इसमें आकेमेनिड साम्राज्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाइ देता है। चंद्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य की सीमाएँ अफ़गानिस्तान तक फैली हुई थीं और यह क्षेत्र कभी आकेमेनिड साम्राज्य का हिस्सा रहा था। इसके अतिरिक्त मौर्य राजाओं के यूनानी दरबारों से भी निकट संबंध थे। यूनानी कला स्वयं आकेमेनिड़ परंपरा से गहराई से प्रभावित थी। इस प्रकार मौर्य कला में आकेमेन्नड़ प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से पहुँचा।[22] पाटलिपुत्र के अवशेषों में सूसा और एकबताना की झलक मिलती है और कुम्राहार का स्तम्भित सभागार पर्सेपोलिश के हॉल ऑफ हन्ड्रेड कॉलम्स से तुलनीय प्रतीत होता है। अशोक के स्तम्भों और उनके अभिलेखों की शैली में भी आकेमेनिड परंपरा का संकेत मिलता है, किंतु एक अन्य मत यह भी मानता है कि मौर्य कला की जड़े भारतीय परंपरा में ही निहित हैं, इस दृष्टि से मौर्य कला लोक और दरबारी तत्वों का समन्वित रूप है। मौर्य पॉलिश के पूर्व मौर्य उदाहरण मिलते हैं और अशोक स्तंभो पर

प्रयुक्त बैल, सिंह कमल और हंस जैसे प्रतीत भारतीय परंपरा से ही लिए गए हैं। अतः मौर्य कला को केवल बाहरी प्रभावों का परिणाम न मानकर भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की स्वाभाविक प्रगति समझना अधिक उपयुक्त है। मौर्य कला के स्वरूप को समझने के लिए उसके प्रमुख उदाहरणों का उल्लेख आवश्यक है। इनमें पाटलिपुत्र नगर और राजप्रसाद के अवशेष, सारनाथ की एकाश्म रेलिंग, गया जिले के बराबर-नागार्जुनी पहाड़ियाँ की चैत्यगृह गुफाएँ अशोक द्वारा स्थापित शिलालेख रहित और शिलालेख स्तम्भ तथा उड़ीसा के धौली में जीवित शिला से तरासी गई हाथी की प्रतिमा प्रमुख हैं। इन सभी में कुछ सामान्य विशेषताएँ पाई जाती है और उन पर अद्भुत चमकदार पॉलिश की गई है। इनकी शिल्पकला सम्राट अशोक और उनके उत्तराधिकारियों की राजकीय पहल को प्रकट करती है।

पाटलिपुत्र मौर्य साम्राज्य की राजधानी और साम्राजिक कला का अद्भुत उदाहरण है। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज के विवरण के अनुसार यह नगर लगभग पंद्रह किलोमीटर लंबा और ढाई किलोमीटर चौड़ा था तथा इसके चारों ओर दो सौ मीटर चौड़ी और पंद्रह मीटर गहरी खाई थी। नगर की प्राचीरों में चौंसठ द्वार और लगभग पाँच सौ सत्तर मीनारे थी। आधुनिक बस्ती के कारण इसका अधिकांश भाग उत्खनन से अछूता है, फिर भी भी बुलंदीबाग और कुम्राहार में मौर्यकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। बुलंदीबाग में विशाल लकड़ी की किलेबंदी अवशेष मिले हैं जबकि कुम्राहार से मौर्यकालीन राजप्रसाद परिसर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ अस्सी पत्थर के स्तम्भ मिले हैं जिन पर अत्यंत चिकनी पॉलिश है, ये स्तम्भ लकड़ी के ढ़ाचे को सहारा देते हैं और उनके आधार लकड़ी के थे। पर्सोपोशिल के हॉल ऑफ हन्ड्रेड कॉलम्स’और कुम्राहार के स्तंभिक सभागार में समानताएँ होते हुए भी मौर्य राजप्रसाद की सरलता उन्हें विशिष्ट बनाती है। मौर्य स्तम्भ आधार और शीर्ष के बिना सीधे खड़े होते थे, जबकि आकेमेनिड स्तम्भों में आधार और अलंकृत शीर्ष पाये जाते थे। अशोक स्तंभ मौर्य कला की सर्वाधिक प्रसिद्ध उपलब्धि हैं। ये स्वतंत्र खड़े, अनुपातपूर्ण, ऊपर की ओर हल्के संकरे होते हुए, एकाश्म बलुआ पत्थर से बने हुए थे। इन्हें चुनार की खानों से पत्थर लाकर तैयार किया गया और उन पर उच्च कोटि की पॉलिश की गई।

स्तंभों का आधार प्रायः अनुपस्थित रहता था और शीर्ष पर उल्टे कमल के आकार का बेल कैपिटल बनाया जाता था जिसके ऊपर चौकोर अबेकस और अंततः किसी पशु की मूर्ति होती थी। इन स्तंभों पर अशोक के धम्म संबंधी शिलालेख अंकित हैं। दिल्ली मेरठ, इलाहाबाद, लौरिया-अरराज, लौरिया नंदगढ़, संकिसा, सांची और सारनाथ आदि स्थलों से अशोक शिलालेखयुक्त स्तम्भ प्राप्त हुए हैं, जबकि रामपुरवा, बसारह-बखिरा आदि स्थानों के स्तम्भ शिलालेख रहित हैं। सारनाथ का सिंह शीर्ष विशेष रूप से प्रसिद्ध है जिसमें चार सिंह पीठ से पीठ जोड़कर खड़े हैं। यह आज भारत के राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में अपनाया गया है। विद्वानों के अनुसार इन स्तम्भों का प्रतीकात्मक अर्थ ‘विश्व अक्ष’ से है जो पृथ्वी को आकाश से जोड़ता है। स्तंभों का बिना आधार के धरती से सीधा उठना मानों धरती से आकाश की ओर आरोहण का प्रतीक है।

धौली (उडीशा) में जीवित शिला से तराशी गई हाथी की आधी आकृति मौर्यकालीन शिल्पकला की एक अद्वितीय कृति है। इसकी सूंड़ का भीतर की ओर मुड़ना, अग्रपादो की ओर हल्की झुकाव वाली चाल और जीवंतता इसकी प्राकृतिकता को दर्शाती है। सारनाथ की एकाश्म रेलिंग भी उल्लेखनीय है जो पूरी तरह चुनार पत्थर से एक ही शिला पर निर्मित है और लकड़ी की रेलिंगों का अनुकरण प्रतीत होती है।

मौर्य काल में गुफा वास्तुकला की भी शुरूआत हुई। गया जिले के बराबर और नागार्जुनी पहाड़ियों में स्थित गुफाएं इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। बाराबर की तीन गुफाओं पर अशोक के अभिलेख और नागार्जुनी की तीन गुफ़ाओं पर उसके उत्तराधिकारी दशरथ के अभिलेख उत्कीर्ण हैं। इन गुफाओं का बाहरी भाग साधारण है किंतु भीतरी भाग पर अद्भुत पॉलिस है। सबसे प्राचीन सुदामा गुफा अशोक के शासन काल के बारहवें वर्ष की है और आजीवक संप्रदाय को समर्पित है। इसमें दो कक्ष हैं- एक आयताकार प्रवेश कक्ष जिसका छत बैरल-वोल्टेड है और दूसरा गोलाकार कक्ष जिसकी छत अर्धगोलाकार है। यह गोलाकार कक्ष बाहर से घास फूस की छत का अनुकरण करता है। लोमसऋषि गुफा को मौर्यकालीन गुफाओं में श्रेष्ठ माना जाता है। इसके प्रवेश द्वार पर चैत्य खिड़की (गवाक्ष) के आकार का अलंकरण, जालीदार नक्काशी और हाथियों की स्तूप की ओर बढ़ती हुई कतार का उत्कृष्ट उत्कीर्णन है। दोनों छोरों पर बने मकर आकृतियाँ इसकी कलात्मकता को और बढ़ाती हैं।

मौर्य कला में प्रयुक्त प्रतीक जैसे कमल, स्वास्तिक, सिंह, बैल और हाथी भारतीय धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपरा में गहरे निहित थे। यह कला केवल राजकीय संरक्षण का परिणाम नहीं थी बल्कि भारतीय समाज की दीर्घकालीन कलात्मक चेतना का स्वाभाविक विस्तार थी। यद्यपि मौर्य शिल्प पर विदेशी प्रभावों की छाप मिलती है, फिर भी आत्मा भारतीय थी। लकड़ी पर आधारित प्राचीन भारतीय वास्तुकला को पत्थर पर उतारने का कार्य मौर्य कलाकारों की तकनीकी दक्षता और कलात्मक दृष्टि को प्रदर्शित करता है।

तकनीकी दक्षता और कलात्मक दृष्टि को प्रर्दशित करती है। मौर्य काल ने भारतीय कला को न केवल भव्यता और स्थायित्व दिया। बल्कि आगामी शुंग, सातवाहन और गुप्त कालीन शिल्प परंपराओं के लिए मार्ग भी प्रशस्त किया। इस प्रकार मौर्य कला भारतीय शिल्पकला की उस महान परंपरा का सेतु है जिसने वैदिक युग की सादगी से बढकर शास्त्रीय भारतीय कला क स्वर्ण युग का नाम रखा।

निष्कर्ष

भारतीय स्थापत्य के प्रारम्भिक विकास को यदि नवपाषाण काल से प्राक्-मौर्य काल तक की एक सतत ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि इसकी जड़े मानव समाज के क्रमिक सामाजिक ,आर्थिक और धार्मिक परिवर्तन में गहराई से निहित थीं, नवपाषाण काल की बसावटों-जैसे मेहरगढ़, चिरांद, बुर्जहोम और सरायनाहर राय में पाई जाने वाली संरचनाएँ मुख्यतः वृत्ताकार या अंडाकार मिट्टी लकड़ी के मकानों, गढ़ढा आधारित आवासों और पत्थर से निर्मित दीवारों पर आधारित थीं। इनका उद्देश्य केवल आश्रय प्रदान करना नहीं, बल्कि कृषि, पशुपालन और सामुदायिक जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना था। इसी चरण में स्थाई ग्राम जीवन और योजना बद्ध बसावटों की नींव पड़ी, जो आगे चलकर भारतीय स्थापत्य की प्राचीन परंपरा का प्रारंभिक आधार बनी। सिन्धु सरस्वती अथवा हड़प्पा सभ्यता में यह स्थापत्य परंपरा शहरी नियोजन, पक्की ईंटों के उपयोग, सुव्यवस्थित जल-निकासी प्रणाली, विशाल सार्वजनिक भवनों और किलाबंद नगरों के रूप में एक विकसित स्वरूप ग्रहण करती है। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा जैसे नगरों में समानांतर सड़कों ,अनाज भण्डारों महान स्नानागार और आवासीय क्षेत्रों की सुव्यवस्थित योजना इस बात का प्रमाण है कि भारतीय उपमाद्वीप ने तकनीकी और सौंदर्य बोधक दोनों से स्थापत्य कला में उल्लेखनीय प्रगति कर ली थी। यह नगर नियोजन केवल कार्यात्मक नहीं, बल्कि सामुदायिक जीवन, आर्थिक संगठन और सामाजिक पदानुक्रम का भी प्रतीक था।

वैदिक और उत्तर वैदिक काल में स्थापत्य का चरित्र धार्मिक और सामाजिक अनुष्ठानों से जुड़ता है। ऋग्वेद ,शतपथ ब्राम्हण एवं यजुर्वेद में वर्णित यज्ञ-वेदियाँ-गरूडाकार, वृषभाकार अथवा अन्य प्रतीकात्मक आकृतियों में तत्कालीन ज्यमितीय, गणनात्मक दक्षता तथा वैदिक अनुष्ठानों की जटिलता को प्रकट करती हैं। इस काल में लकड़ी एवं मिट्टी से निर्मित सभागृह, समितिगृह और स्थायी गृहों का उल्लेख मिलता है, जो ग्राम-जीवन के स्थायित्व, कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था तथा राजनीतिक निर्णयों की सामूहिक परम्परा को दर्शाते हैं। प्राक्-मौर्य काल में जब महाजनपदों और प्रारंभिक राजतंत्रों का उदय हुआ, तब नगर नियोजन में और अधिक संगठन दिखाई देता है। मगध और वैशाली जैसे केन्द्रों में ईंट और पत्थर का उपयोग कर के किलेबंदी नगर दीवारें, राजमहल और प्रशासनिक भवनों का निर्माण हुआ। इन संरचनाओं ने न केवल राजनीतिक शक्ति का प्रतीकात्मक प्रदर्शन किया, बल्कि व्यापारिक केन्द्रों, धार्मिक स्थलों तथा सामाजिक शक्ति का प्रतीकात्मक प्रदर्शन किया, बल्कि व्यापारिक केन्द्रों धार्मिक स्थलों और सामाजिक समागमों को स्थायी रूप प्रदान किया। इस प्रकार, नवपाषाण काल से प्राक्-मौर्य काल तक भारतीय स्थापत्य की यात्रा प्राकृतिक गुफाओं और मिट्टी लकड़ी के आश्रयों से आरंभ होकर संगठित नगरों, धार्मिक वेदियों एवं सुदृढ़ किलों तक पहुँचाती हैं। यह विकास केवल तकनीकी प्रगति का परिणाम नहीं था, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक रूपान्तरण, कृषि आधारित स्थायित्व, धार्मिक आस्थाओं और राजनीतिक केन्द्रीकरण का जीवंत प्रतीक भी था। यही क्रम आगे चलकर मौर्यकालीन शिल्पकला,अशोक के शिलालेखों, स्तंभों एवं गुफा-विहारों के रूप में प्रकट हुआ, जिसने भारतीय स्थापत्य को शास्त्रीय युग की भव्य और सुव्यवस्थित दिशा प्रदान की।

संदर्भ

1. ब्राउन, पर्सी. *इंडियन आर्किटेक्चर*. ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1956, पृ. 12.
2. पोसेल, ग्रेगरी. द *इंडस सिविलाइजेशन*. वाल्नट क्रीक, कैलिफ़ोर्निया: अल्टामीरा प्रेस, 2002, पृ. 45.
3. मार्शल, जॉन. *मोहनजोदाड़ो और सिंधु सभ्यता*. लंदन, 1931, पृ. 78.
4. थापर, रोमिला. *अशोक और मौर्यों का पतन*. ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1961, पृ. 102.
5. सिंह, उपिंदर. *प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास: पाषाण युग से बारहवीं शताब्दी तक*. पियर्सन एजुकेशन इंडिया, 2009.
6. इंडिया, 2009, पृ. 93–143.
7. मिश्रा, वी. एन. "भारत का प्रागैतिहासिक मानव उपनिवेशीकरण." *जर्नल ऑफ ह्यूमन इवोल्यूशन*, खंड 16, 1987, पृ. 45.
8. पॉर्सेल, एल. ग्रेगरी. द इंडस *सिविलाइजेशन: ए कंटेम्परी पर्सपेक्टिव*. वाल्नट क्रीक, कैलिफ़ोर्निया: अल्टामीरा प्रेस, 2002.
9. प्रेस, 2002, पृ. 24–29.
10. ब्राउन, पर्सी. *इंडियन आर्किटेक्चर*. ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1956, पृ. 12.
11. पोसेल, ग्रेगरी. द *इंडस सिविलाइजेशन*. वाल्नट क्रीक, कैलिफ़ोर्निया: अल्टामीरा प्रेस, 2002, पृ. 45.
12. मार्शल, जॉन. *मोहनजोदाड़ो और सिंधु सभ्यता*. लंदन, 1931, पृ. 78.
13. कनिंघम, अलेक्जेंडर. *भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण रिपोर्ट*. खंड 11, कलकत्ता, 1871, पृ. 56.
14. थापर, रोमिला. *अशोक और मौर्यों का पतन*. ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1961, पृ. 102.
15. *ऋग्वेद*. 10.81–82.
16. *ऋग्वेद*. 7.55.1; 8.17.14.
17. *अथर्ववेद*. 3.12.13.
18. विश्वकर्मा, ईश्वर शरण. "भारतीय वास्तुशिल्प वैदिक अवधारणा." *पुरा-प्रलेख*, 2022, पृ. 9–15.
19. *ऋग्वेद*. 8.17.14.
20. विश्वकर्मा, ईश्वर शरण. "भारतीय वास्तुशिल्प वैदिक अवधारणा." *पुरा-प्रलेख*, 2022, पृ. 9–15.
21. विश्वकर्मा, ईश्वर शरण. "भारतीय वास्तुशिल्प वैदिक अवधारणा." *पुरा-प्रलेख*, 2022, पृ. 9–15.
22. पोसेल, ग्रेगरी. द *इंडस सिविलाइजेशन*. वाल्नट क्रीक, कैलिफ़ोर्निया: अल्टामीरा प्रेस, 2002, पृ. 45.
23. राय, निहार रंजन. *मौर्य कला*. नई दिल्ली: भारतीय कला परिषद, 1980, पृ. 45.
24. ब्राउन, पर्सी. *इंडियन आर्किटेक्चर*. ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1956, पृ. 67.

Received: 05.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

इक्कीसवीं सदी का आदिवासी समाज: संघर्ष और संभावना (राणेन्द्र की कहानियों के विशेष संदर्भ में)

सुसा राणा*
susarana22@gmail.com

इक्कीसवीं सदी का समय और समाज सामाजिक, आर्थिक,राजनैतिक, सांस्कृतिक सभी दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। यह वह दौर है जहां बाजारवाद और सूचना क्रांति ने ग्रामीण व शहरी जीवन पद्धति को प्रभावित किया है। और लगातार प्रभवित कर रहा है। इंटरनेट तथा सूचना क्रांति ने समाज के सभी तबके के लोगों को प्रभावित किया है। और इस प्रभाव से आदिवासी समाज अछूता नहीं है। आदिवासी समाज सदियों से सामूहिक, स्वच्छंद पद्धति से जीवनयापन करता आया है। इक्कीसवीं सदी के साहित्य में और विशेष कर हिंदी कहानी में आदिवासी जीवन, समाज और संस्कृति का चित्रण होना महत्वपूर्ण हैं।

यह दौर जहां आदिवासी विषयगत लेखन में सक्रिय दिखाई देता है। कविता, कहानी, तथा उपन्यास विधाओं में आदिवासी जीवन-मूल्य, संघर्ष, विस्थापन की समस्याएं देखने को मिलता है। आदिवासी तथा गैर आदिवासी रचनाकारों में वंदना टेटे, हरिराम मीणा, पुन्नी सिंह, रोज केरकेट्टा, मंगल सिंह मुंडा, राकेश कुमार सिंह, मधु कांकरिया, श्रीप्रकाश मिश्र, तेजिंदर, संजीव और राणेन्द्र आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है जो अपनी कलम के ताकत से आदिवासी मुद्दों को समाज के सामने लाने में तथा उनके यथार्थ को उद्घाटित करने में सक्रिय दिखाई देते हैं। आदिवासी समाज की अपनी अलग जीवन शैली, परंपरा, रीति-रिवाज और संस्कृति होती है। वे अपनी विशिष्ट जीवनशैली और महान परंपराओं के लिए पहचानी जाती हैं। प्रकृति के अधिक निकट रहकर जंगल व वनस्पति पर निर्भर ये लोग अभाव में भी जीवन को जीने की कला जानते हैं अपनी जरूरतों के लिए बाजार पर कम से कम आश्रित रहते हैं।

आदिवासी समाज और समुदाय वर्तमान समय में जिस समस्याओं से गुजर रहा है वह बाजारवाद का बढ़ता वर्चस्व, लगातार जंगलों के काटने से हो रहा विस्थापन, जमीन, जल, जंगल, अस्मिता और सांस्कृतिक पहचान की संकट आदि प्रमुख हैं। आदिवासी समाज की चुनौतियों को इंगित करते हुए गंगा सहाय मीणा ने अपनी पुस्तक आदिवासी चिंतन की भूमिका में लिखा है कि **"दुनिया के आदिवासी नित नई बाहरी और आंतरिक चुनौतियों से जूझ रहे हैं और हर तरफ वे उपेक्षा के शिकार हैं। नई आर्थिक नीतियों से हमारी सरकारों और उद्योगपतियों को विकास के नाम पर आदिवासियों को लूटने की खुली छूट मिल गई। इसका असर देश के किसी भी आदिवासी इलाके में देखा जा सकता है।"**[1] आदिवासी लोगों के द्वारा लगातार इन गतिविधियों का विरोध कार्यक्रमों और रैलियों के माध्यम से किया जा रहा है लेकिन आदिवासियों की समस्याएं अभी भी जैसा का वैसा बना हुआ है।

नगरों महानगरों के विकास तथा लोगों को फायदा पहुंचाने के लिए आदिवासी लोगों के इलाके पर विकास के नाम पर विस्थापित किया जा रहा है। इस विकास की कुर्बानी में आदिवासी लोगों की निवास स्थान अर्थात् जंगल,जमीन, नदी, पहाड़ - पर्वत सब कुछ छिन जाता है विकास की अंधी दौड़ ने आदिवासी समाज और लोगों को सबसे अधिक प्रभावित किया और बदले में भूख और विस्थापन जैसी समस्याएं दी है। आदिवासी समाज में जंगल जमीन के महत्व को रेखांकित करते हुए डॉ. जितेंद्र मीणा ने लिखा **"जंगल, जमीन और प्राकृतिक संसाधनों पर उनका पारंपरिक अधिकार था। यहीं आदिवासियों के जीविका के साधन और जीवन का आधार था। गांव के मांझी के ऊपर समुदाय की एकता को बनाए रखने और आपसी विवादों को सुलझाने की जिम्मेदारी होती थी।"**[2] आदिवासी लोगों की अपनी न्याय व्यवस्था होती है जहां छोटे बड़े सभी मामलों के लिए पंचायत होती है जहां पर मुखिया फैसला करता है। इस पंचायत को अलग-अलग नामों से जाना जाता है।

* **शोधार्थी, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, कोनी, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ -495009**

इक्कीसवीं सदी के पूर्व भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण के आगमन से व्यक्ति की सामान्य जीवन शैली मशीनों पर निर्भर होने लगा जिसके परिणाम स्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बढ़ने लगा और तेजी से पर्यावरण की क्षति भी होने लगी। आदिवासी प्रकृति से जुड़े लोग हैं ये प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक निर्भर रहते हैं। प्राकृति वस्तुओं का इनके जीवन के सभी क्षेत्रों में शामिल है। प्राकृति के संरक्षण व संवर्धन में आदिवासी लोगों का ही महत्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि इनकी जरूरतें सीमित है तब आवश्यकतानुसार उपयोग करते हैं और उसी में खुश रहते हैं 'पीली छरती वाली लड़की' कहानी में किन्नू दा के माध्यम से आदिवासी लोगों का प्रकृति के प्रति प्रेम, लगाव, जुड़ाव और वर्तमान भागदौड़ भारी दुनिया से दूर अपनी मस्ती में जीवन जी रहे लोगों की और इंगित करते हुए कहते हैं **"आदिवासी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी जरूरतें सबसे कम है वे प्रकृति और पर्यावरण का कम से कम नुकसान करते हैं सिंहभूमि, झारखंड, मयूरभंज, और उत्तर पूर्व में ऐसे आदिवासी समुदाय हैं जो अभी तक छिटवा या झूम खेती करते हैं।"**[3]

आदिवासी लोगों को मुख्य धारा में शामिल करने के नाम पर बहुत छलाव हुआ जिस पर शिक्षा, रोजगार और एक व्यवस्थित जीवन हेतु बात की गई। लेकिन धीरे धीरे जंगल सिमटने लगा भूख व रोजगार की तलाश में शहरों की और पलायन बढ़ने लगा **"एक तरफ आदिवासियों ने अस्तित्व रक्षा के लिए मुख्य धारा की तरफ देखा, वहीं दूसरी ओर उनकी पहचान का संकट पैदा हो गया। इतनी जटिल स्थितियां आदिवासियों के सामने शायद कभी पैदा नहीं हुई। आदिवासियों या देशज समुदायों की समस्याओं की और ध्यान दिलाने में संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अहम भूमिका निभाई दुनिया भर के अधिकांश राष्ट्र राज्यों की सरकारें आदिवासियों की समस्या को स्थानीय व अंदरूनी समस्या बताकर उनकी अपेक्षा करती रही हैं।"**[4] इससे सरकारों का आदिवासी सवालों पर उदासीनता स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

शिक्षा मनुष्य समाज की प्राथमिक जरूरतों में से एक है आदिवासी लोगों का शिक्षा की और बढ़ते कदम इनके प्रगतिशीलता को बताता है लेकिन शिक्षण संस्थाओं में आदिवासियों के साथ होने वाली दुर्व्यवहार से कई लोग अपने बच्चों को स्कूल, कॉलेज भेजने से झिझकते हैं। पीली छतरी वाली लड़की कहानी में इस सवाल को लेकर उदय प्रकाश ने लिखा कि **"मणिपुर, अरुणाचल,असम जैसे उत्तर पूर्व के प्रांतों से आने वाले छात्रों को ये गुंडे 'मल्लू' या 'मंकी' बोलते थे और दक्षिण भारत के किसी भी राज्य से आने वाला लड़का इनके लिए रुंडू होता था।"**[5] इसी कहानी में मणिपुर छात्र सापाम तोंबा की मौत बहुत बड़े सवाल के रुप में उभर कर सामने आता है।

आदिवासी लोगों का विकास क्रम में आदि से आवास तक ही सीमित नहीं है। जीवन शैली,खान-पान, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सभी रूपों में विकास दिखाई देता है जो कहीं-कहीं एकांगी भी नजर आती है। विकास के दो रूप हैं एक वह जो सरकारी या किसी दफ्तर के फ़ाइलों में दिखाया जाता है और दूसरा वह जो फ़ाइलों से बाहर यथोचित स्थान पर नजर आता है। आदिवासी विकास के नाम पर सदियों से छाले जा रहे हैं विनाश की मार सबसे ज्यादा भोले-भाले आदिवासी झेलते आ रहे हैं। रणेन्द्र की कहानी 'रात बाकी' इन्हीं सच्चाईयों से पर्दा उठाते हुए सरकारी अफसरों तथा ठेकेदारों के मिली-भगत और खोखले वादे से ठगे जाते हैं। आदिवासियों के क्रांति या विरोध से सरकारी अधिकारी व ठेकेदार को घुटने पर ले बिठाते हैं लेकिन कुछ समय बीतने के बाद स्थिति वहीं रह जाती है जैसा पहले था। आदिवासियों का विरोध गीत के रूप में गूंजता स्वर इस प्रकार से है –

"उनकर घर बा कोठी-अटारी
हमनी के घर सुआर के खोहर हो किसनवा
अब ना चली ऐसन चलनवा
मिलके उटठी की बदल दीं जमनवा
हो किसनवा... हो किसनवा।"[6]

विस्थापन मानव समुदाय के लिए जीवन के सबसे बुरे दौर के रूप में सामने आता है विस्थापन के विरुद्ध और उससे प्रभावित जनजीवन को रणेन्द्र की 'वह बस धूल थी' कहानी अभिव्यक्त करती नजर आती है। अपने सारे यादों को समेटने में असमर्थ व्यक्ति जब एक स्थान को छोड़ता है तब शारीरिक मानसिक दोनों रूप से वह लड़ाई लड़ रहा होता है। विस्थापन और पुनर्वास आदिवासी जन समुदाय के लिए बड़ी समस्या हा। जिसके संदर्भ में सभी संगोष्ठियों में बातें तो करते हैं लेकिन उन पर कोई ध्यान नहीं देता है तभी आज तेजी से बदलती दुनिया में सामाजिक समस्या और सांस्कृतिक संकट की स्थिति पैदा की है।

रणेन्द्र की कहानियाँ आदिवासी समाज की आंतरिक और बाह्य संघर्षों को चित्रित करती है। यह संघर्ष सबसे पहले घर से शुरू होता है जहां व्यक्ति पारिवारिक दबाव में घुटन भरे जीवन को स्वीकार कर लेता है और आजीवन उस में पड़ा दिखावे भरा जीवन जीता है लेकिन वह भी समय आता है जहां यह सचने लगता है "**वह कौन सा कमजोर क्षण है जब जिंदगी हार जाती है और लगता है कि मृत्यु की ठंठी चादर ही राहत पहुंचाएगी। क्या जीवन से पीठ फेर लेना इतना आसान है? वह भी अपनी बच्ची, अपने रक्त, अपने भविष्य के साथ-साथ ?"** [7] इस पारिवारिक व सामाजिक दबाव में व्यक्ति अंततः अपनों के बीच हार स्वीकार कर अपनों से संघर्ष नहीं समझोता करता है। रक्त संबंधों से विद्रोह अपने अंदर विकसित नहीं कर पाता और नियति कह कर स्वीकार करता है।

आदिवासी समुदाय की एक प्रमुख विशेषता यह है कि सभी एक जुट साथ रहने में अधिक विश्वास करते हैं। जो नियम कानून निर्मित होते हैं वह समूह के सभी सदस्यों पर लागू होता है। वे अपने कर्तव्यों, जिम्मेदारियों के प्रति अटल रहते हैं। स्त्री, बच्चे व बुजुर्गों का दायित्व युवा आदिवासी लोगों पर होता है। जंगल इनका सर्वस्व है **जयपाल सिंह के शब्दों में कहा जाए तो "जमीन आदिवासी जीवन का केंद्रक है।"**[8] आदिवासी शुरू से प्राकृतिक संसाधनों, जल,जंगल,जमीन के लिए संघर्ष करता आ रहा है। इक्कीसवीं सदी के आज तीसरे दशक में भी इनका संघर्ष जारी है। सड़क, बांध, विकास कार्य के नाम पर वे अपने पैतृक भूमि से विस्थापित किए जाते हैं। वे आज के समय सबसे अधिक विस्थापित जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इन सब के पश्चात भी अपने कला व संस्कृति को सहेजते लोग अपने समुदाय के मुखिया (जिनके अलग-अलग जनजाति समूह में अलग-अलग नामों से जाना जाता है) उनके निर्णय का अनुपालन करते हैं इन मुखिया की नेतृत्व कुशलता से समुदाय में एकता व शांति पूर्ण वातावरण बना रहता है वे अपने आपसी झगड़े की निपटारा पंचायत के माध्यम से करे हैं जहां मुखिया की बड़ी भूमिका होती है। **"जंगल, जमीन और प्राकृतिक संसाधनों पर उनका पारंपरिक अधिकार था। यहीं आदिवासियों के जीविका के साधन और जीवन का आधार था। गांव के मांझी के ऊपर समुदाय की एकता को बनाए रखने और आपसी विवादों को सुलझाने की जिम्मेदारी होती थी।"**[9]

मूल निवासी कही जाने वाली आदिवासी जन समुदाय वर्तमान समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक चुनौतियों के अस्तित्व संकट की समस्या भी उभरता नजर आ रहा है। "**भारत का आदिवासी समुदाय देश की प्राचीनतम संस्कृतियों और जीवन पद्धतियों को जिंदा रखे हुए हैं। लेकिन आज के तेजी से बदलते सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य में आदिवासी समाज अनेक जटिल चुनौतियों का सामना कर रहा है। इन चुनौतियों ने उनकी पहचान, संस्कृति और अस्तित्व तक को संकट में डाल दिया है।"**[10] आदिवासी जीवन की चुनौतियों की और इशारा करता यह इनके वैयक्तिक संघर्ष की छबि अंकित करता है।

वर्तमान समय में भोलेभाले आदिवासी लोगों के साथ प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले दुर्व्यवहार की और इंगित करती है आदिवासी कथाकार रणेन्द्र की 'भूत-बेचवा' ऐसी ही काहानी है जिसमें पुलिस-सिपाही लोगों का आदिवासी लोगों के प्रति नक्सली दृष्टिकोण ने एक गर्भवती स्त्री और उसके बच्चे की जान ले लेती है। अस्पताल इलाज के लिए अनिल दा और साथियों द्वारा ले जा रहे पैसे को नक्सली लोगों के लिए काम करने का हवाला देकर उनको गिरफ्तार कर लिया जाता है वक्त पर इलाज के लिए पैसे नहीं मिलने पर मृत्यु हो जाती है। असल जांच जब होता है तब सच्चाई कुछ और निकल कर सामने आती है। पुलिस प्रशासन अपनी गलती के बुरे परिणाम से स्वयं को बचने के लिए वह उल्टे नक्सली से मिले होने का आरोप लगा दिया जाता है लेकिन **"मीडिया और छात्रों की जो प्रतिक्रिया होगी, उसका अंदाज लगाना कठिन नहीं था। फिर ह्यूमन राइट्स और एस. टी. कमीशन वाले बिना किसी की नौकरी खाए और पोटा एक्ट में चलान काट दिया जाए। साल डेढ़ साल बाद जमानत मिलेगी, तब तक बहुत कुछ बदल चुका होगा।"**[11] कभी-कभी हमारे सुरक्षा की जिम्मेदारी किस पर होती है हम उन्ही से असुरक्षित होते हैं।

पारिवारिक दबाव के बीच मन में उठने वाली बेचैनी उसे किस दिशा की ओर ले जाती है इसकी अभिव्यक्ति रणेन्द्र की 'दरवाजे में भिंची उंगली' कहानी करती है। **"भय मन में ही पैदा होता है और मन जितना उससे मुक्त होना चाहता है, उतना ही घिरता जाता है। रिक्तता, अकेलापन, बेसहारा होने के भाव ने ही उसके भय को, अवसाद को और गहरा किया होगा।"**[12] जीवन दो धुरियों पर चलती है परस्पर सहयोग और आपसी समझ के बिना रिश्ते घुटन बन जाती है। समाज के इस अंधरूनी सत्य का उजागर करता है।

जब कोई व्यक्ति राजनीति व अन्य गतिविधि से जुड़ता है तब उनमें निष्पक्षता का भाव धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। उनका किसी न किसी विचारधारा के प्रति झुकाव होता है बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों का अपनी बातों से, व्यवहारों से किसी न किसी विचारधारा के प्रति झुकाव रहता है 'चम्पा गाछ, अजगर और तालियाँ' कहानी इन्ही बुद्धिजीवी वर्ग पर करारा व्यंग करती है **"बहरहाल, बात सेमिनारों संगोष्ठियों की चल रही थी, उनके विषय बहुत गंभीर हुआ करते, जैसे – विस्थापन, पलायन, जल, जंगल, जमीन आदि-आदि। आयोजक-प्रायोजक कुछ ज्यादा ही गंभीर दिखते। किन्तु श्रोता कितने गंभीर रहते, यह कह पाना मुश्किल।"**[13] भाषण और व्यवहार के बीच की अंतर को रेखांकित करती है।

समाज का एक तबका जो इन आदिवासी लोगों पर अपनी लाठी अर्थात हुकूम चलता है। और अपनी मनमानी से उनके जमीन तालाब आदि को हथिया लेते हैं **"गाँव-गाँव की गैरमजरुआ जमीन, तालाब पोखरा पर पहिलका जमींदारों के लगुआ-भगुआ लठैत-बरहिलों का कब्जा कब तक ? जंगलों पर गुंडा ठेकेदारों का राज, केंदु पत्ता तोड़ाई की मनमाना मजदूरी, बिना लाइसेंसी क्रेशर-साथ और न जाने क्या क्या। एक ठो बात होई तो बताई जाए। सबसे ज्यादा टेंशन थाना और ब्लॉक से।"**[14] यह किसी एक आदिवासी गाँव घरों की कहानी मात्र नहीं है। कई अनगिनत परिवार के लोग आज भी अपनी इन्ही समस्याओं से जूझ रहे है तथा अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं।

निष्कर्ष :-

आदिवासी सरल सादगी जीवन जीने वाले लोग हैं जो अपनी अनोखी संस्कृति के लिए जानी जाती हैं। जंगलों में रहने वाले वे लोग आज जंगल से दूर किए जा रहे लगातार कटती जंगल इनको एक अव्यवस्थित जीवन शैली की और ढ़केलती है। जल,जंगल, जमीन, विस्थापन, पुनर्वास आदि तमाम समस्याओं के पश्चात भी इनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। रणेन्द्र की कहानियाँ इन आदिवासियों की स्वर बनती है समाज में इनकी समस्याओं को उठाती है जो कहीं खो सी गई थी। वे संघर्षों में संभावना तलाश रही हैं।

संदर्भ :-

1. मीणा, गंगा सहाय. (2012). *आदिवासी चिंतन की भूमिका*. अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ. 07.
2. मीणा, जितेंद्र. (2019). *राष्ट्र निर्माण में आदिवासी*. युवान बुक्स, नई दिल्ली. पृ. 47.
3. प्रकाश, उदय. (2001). *पीली छतरी वाली लड़की*. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ. 14.
4. मीणा, गंगा सहाय. (2012). *आदिवासी चिंतन की भूमिका*. अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ. 14
5. प्रकाश, उदय. (2001). *पीली छतरी वाली लड़की*. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ. 19.
6. रणेन्द्र. (2012). *रात बाकी एवं अन्य कहानियाँ*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ. 20.
7. रणेन्द्र. (2014). *छप्पन छुरी बहत्तर पेंच*. आधार प्रकाशन, पंचकूला. पृ. 93.
8. मीणा, गंगा सहाय. (2012). *आदिवासी चिंतन की भूमिका*. अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ. 25
9. मीणा, जितेंद्र. (2019). *राष्ट्र निर्माण में आदिवासी*. युवान बुक्स, नई दिल्ली. पृ. 47.
10. मीणा, जितेंद्र. (2019). *राष्ट्र निर्माण में आदिवासी*. युवान बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 38.
11. रणेन्द्र. (2014). *छप्पन छुरी बहत्तर पेंच*. आधार प्रकाशन, पंचकूला. पृ. 41.
12. रणेन्द्र. (2014). *छप्पन छुरी बहत्तर पेंच*. आधार प्रकाशन, पंचकूला. पृ. 93.
13. रणेन्द्र. (2012). *रात बाकी एवं अन्य कहानियाँ*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ. 69.
14. रणेन्द्र. (2012). *रात बाकी एवं अन्य कहानियाँ*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 72-73.

Received: 06.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

अद्वैत वेदांत और 21वीं सदी का मनुष्य: आत्म की खोज या पहचान का संकट ?

विष्णु कुमार* **vishnu.kumar1696@gmail.com**

गौरव चौहान† **chouhangourav00@gmail.com**

सारांश :

यह शोध-पत्र 21वीं सदी के मनुष्य के समक्ष उभरते 'पहचान के संकट' (Identity Crisis) का विश्लेषण अद्वैत वेदांत के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में करता है। आधुनिक युग में तकनीकी विकास, वैश्वीकरण तथा डिजिटल माध्यमों विशेषतः सोशल मीडिया ने व्यक्ति को अनेक बाह्य पहचानों के निर्माण की सुविधा प्रदान की है, किंतु इसके साथ ही उसकी आंतरिक आत्म-चेतना का क्षरण भी हुआ है। परिणामस्वरूप, व्यक्ति अपनी पहचान को बाह्य मान्यता, तुलना और आभासी छवि के आधार पर निर्मित करने लगता है, जिससे एक गहरा अस्तित्वगत संकट उत्पन्न होता है। इस अध्ययन में आदि शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों विशेषतः आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता, माया तथा अविद्या की अवधारणाओं का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि पहचान का यह संकट मूलतः आत्मबोध के अभाव का परिणाम है। उपनिषदों के महावाक्य 'तत्त्वमसि' तथा 'अहं ब्रह्मास्मि' के आलोक में यह स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य की वास्तविक पहचान उसके बाह्य उपाधियों में नहीं, बल्कि उसके शाश्वत आत्मस्वरूप में निहित है।

यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि अद्वैत वेदांत 21वीं सदी के पहचान संकट के समाधान के लिए एक सशक्त दार्शनिक आधार प्रदान करता है, जो मनुष्य को बाह्य पहचान के भ्रम से मुक्त कर आत्म की खोज की ओर उन्मुख करता है। इस प्रकार, यह अध्ययन पारंपरिक भारतीय दर्शन और समकालीन मानव स्थिति के मध्य एक सार्थक संवाद स्थापित करने का प्रयास करता है।

कीवर्ड-

अद्वैत वेदांत (Advaita Vedanta), पहचान का संकट (Identity Crisis), आत्मबोध (Self-realization), माया (Maya), 21वीं सदी का मनुष्य, सोशल मीडिया और पहचान, भारतीय दर्शन

मानव जीवन में 'मैं कौन हूँ?' का प्रश्न सदैव से दार्शनिक चिंतन का केंद्र रहा है। प्राचीन भारतीय दर्शन में इस प्रश्न का उत्तर आत्मा और ब्रह्म की एकता के माध्यम से खोजा गया, जबकि आधुनिक युग में यह प्रश्न एक नए संदर्भ 'पहचान के संकट' (Identity Crisis) के रूप में उभरकर सामने आया है। 21वीं सदी का मनुष्य, जो तकनीकी उन्नति, वैश्वीकरण और डिजिटल माध्यमों से अभूतपूर्व रूप से जुड़ा हुआ है, अपनी पहचान को परिभाषित करने के लिए अनेक बाह्य साधनों पर निर्भर होता जा रहा है।

* **शोधार्थी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)**

† **शोधार्थी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)**

समकालीन समाज में सोशल मीडिया, उपभोक्तावाद तथा प्रतिस्पर्धात्मक जीवनशैली ने व्यक्ति को एक ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया है, जहाँ वह निरंतर अपनी 'छवि' (image) का निर्माण और प्रस्तुतीकरण करता रहता है। इस प्रक्रिया में उसकी पहचान बाह्य मानकों जैसे सफलता, प्रतिष्ठा, और सामाजिक स्वीकृति से निर्धारित होने लगती है। परिणामतः व्यक्ति की आंतरिक आत्म-चेतना और वास्तविक अस्तित्व के बीच एक दूरी उत्पन्न हो जाती है, जो अंततः 'पहचान के संकट' के रूप में अभिव्यक्त होती है।

ऐसी परिस्थिति में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो उठता है कि क्या आधुनिक मनुष्य की यह पहचान-निर्माण प्रक्रिया उसे उसके वास्तविक स्वरूप के निकट ले जा रही है, या वह केवल बाह्य और आभासी पहचानों के जाल में उलझता जा रहा है। इसी संदर्भ में आदि शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत वेदांत एक प्रासंगिक दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो मनुष्य की पहचान को बाह्य उपाधियों से हटाकर उसके शाश्वत आत्मस्वरूप में स्थापित करता है।

आदि शंकराचार्य एवं अद्वैत वेदांत

भारतीय दार्शनिक परंपरा में आदि शंकराचार्य का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामान्यतः उन्हें 8वीं शताब्दी का दार्शनिक माना जाता है, जिन्होंने अल्पायु में ही वेदांत दर्शन की अद्वैत परंपरा को सुदृढ़, व्यवस्थित और पुनर्स्थापित किया। केरल के कालड़ी में जन्मे शंकराचार्य ने अपने गुरु गोविंद भगवत्पाद से दीक्षा प्राप्त की तथा तत्पश्चात संपूर्ण भारत का व्यापक भ्रमण (दिग्विजय) कर विभिन्न दार्शनिक मतों के साथ शास्त्रार्थ किया। उन्होंने न केवल वैदिक परंपरा का पुनरुद्धार किया, बल्कि उसे एक दार्शनिक एकता प्रदान की। उनके द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र भाष्य, भगवद्गीता भाष्य तथा उपनिषदों पर भाष्य अद्वैत वेदांत के मूलाधार ग्रंथ माने जाते हैं, जिनमें उन्होंने ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप का प्रतिपादन किया है (शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य, 2011, पृ. 23–25)। अद्वैत वेदांत का केन्द्रीय प्रतिपादन यह है कि ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है तथा जगत माया के कारण सत्य प्रतीत होने वाला आभास है। यद्यपि "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः" का सूत्र शंकराचार्य के दर्शन का सार रूप में प्रचलित है, यह उनके ग्रंथों में यथावत श्लोक के रूप में उपलब्ध नहीं है, बल्कि उनके विचारों का संक्षिप्त दार्शनिक निरूपण है (शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य, 2011, पृ. 47)।

इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र परम सत्य है, जबकि यह जगत परिवर्तनशील और माया के कारण वास्तविक प्रतीत होने वाला आभास है। 'माया' को शंकराचार्य ने उस शक्ति के रूप में परिभाषित किया है, जो एकात्मक ब्रह्म को अनेकता के रूप में प्रस्तुत करती है, जिससे जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर देह, मन और सामाजिक भूमिकाओं से अपनी पहचान स्थापित करने लगता है। इस सिद्धांत का मूलाधार उपनिषदों में निहित है। छांदोग्य उपनिषद में

ओंकारेश्वर में नर्मदा तट पर स्थित गोविंद भगवत्पाद गुफा (गोविंदेश्वर गुफा)

‘तत्त्वमसि’ (6.8.7) के माध्यम से जीव और ब्रह्म की अभिन्नता को प्रतिपादित किया गया है (छांदोग्य उपनिषद, गीता प्रेस, 2018, पृ. 112)। इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद में ‘अहं ब्रह्मास्मि’ (1.4.10) के माध्यम से आत्मा की ब्रह्म के साथ एकता को व्यक्त किया गया है (बृहदारण्यक उपनिषद, गीता प्रेस, 2018, पृ. 58)। शंकराचार्य के अनुसार ‘माया’ वह शक्ति है, जो एकात्मक ब्रह्म को बहुविध रूप में प्रस्तुत करती है, जिससे जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर देह, मन तथा सामाजिक उपाधियों के साथ अपनी पहचान स्थापित कर लेता है। इस प्रकार आत्मा को शुद्ध चैतन्य माना गया है, जिसकी अनुभूति ज्ञान के माध्यम से संभव है (हनुमानदास शास्त्री, वेदांत दर्शन, 2010, पृ. 89)।

आधुनिक भारतीय दार्शनिकों ने भी अद्वैत वेदांत को मानव पहचान के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण माना है। Sarvepalli Radhakrishnan के अनुसार अद्वैत वेदांत आत्मा की सार्वभौमिकता को स्थापित करता है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी सीमित व्यक्तिगत पहचान से ऊपर उठ सकता है (राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग 2, 1969, पृ. 512)। इसी प्रकार Swami Vivekananda ने अद्वैत को मानव स्वतंत्रता और आत्मबोध का सर्वोच्च दर्शन माना है (विवेकानंद, ज्ञान योग, 2008, पृ. 134)।

इस प्रकार, अद्वैत वेदांत मनुष्य की पहचान को बाह्य, परिवर्तनशील और सामाजिक उपाधियों से हटाकर एक शाश्वत और सार्वभौमिक आधार पर स्थापित करता है। यही बिंदु 21वीं सदी के संदर्भ में विशेष महत्व रखता है, जहाँ आधुनिक मनुष्य अपनी पहचान को बाह्य उपलब्धियों और आभासी माध्यमों के आधार पर निर्मित करता है, जिसके परिणामस्वरूप वह ‘पहचान के संकट’ का अनुभव करता है।

21वीं सदी में पहचान का संकट (Identity Crisis)

21वीं सदी का मानव अभूतपूर्व तकनीकी प्रगति, वैश्वीकरण तथा डिजिटल संचार के युग में जीवन यापन कर रहा है। तथापि, इस बाह्य विकास के समानांतर एक गहन मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक समस्या उभरकर सामने आई है, जिसे ‘पहचान का संकट’ कहा जाता है। यह संकट केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आभासी संरचनाओं से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। समकालीन संदर्भ में ‘पहचान का संकट’ को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है “बाहरी पहचान का विस्तार, लेकिन आंतरिक पहचान का अभाव।” अर्थात् आधुनिक मनुष्य अपनी पहचान को निरंतर विभिन्न बाह्य माध्यमों जैसे सामाजिक प्रतिष्ठा, पेशेवर उपलब्धियाँ, तथा डिजिटल उपस्थिति के माध्यम से निर्मित करने का प्रयास करता है, किन्तु इस प्रक्रिया में उसकी आंतरिक आत्म-चेतना कमजोर पड़ती जाती है।

डिजिटल युग में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे Instagram, Facebook तथा X ने ‘दिखावटी पहचान’ (virtual identity) को एक नई सामाजिक वास्तविकता के रूप में स्थापित कर दिया है। इन माध्यमों पर व्यक्ति स्वयं का एक आदर्शीकृत (idealized) रूप प्रस्तुत करता है, जो प्रायः वास्तविक जीवन से भिन्न होता है। परिणामतः व्यक्ति अपनी वास्तविक पहचान के बजाय उस छवि से जुड़ने लगता है, जिसे वह दूसरों के सामने प्रस्तुत करता है।

इस संदर्भ में आधुनिक मनोवैज्ञानिक Erik Erikson की 'identity crisis' की अवधारणा उल्लेखनीय है, जिसके अनुसार व्यक्ति की पहचान का निर्माण एक सतत प्रक्रिया है, जो सामाजिक अंतःक्रियाओं से प्रभावित होती है (Erikson, Identity: Youth and Crisis, 1968, p. 22)। 21वीं सदी में यह प्रक्रिया और अधिक जटिल हो गई है, क्योंकि अब व्यक्ति की पहचान वास्तविक और आभासी दोनों स्तरों पर निर्मित होती है।

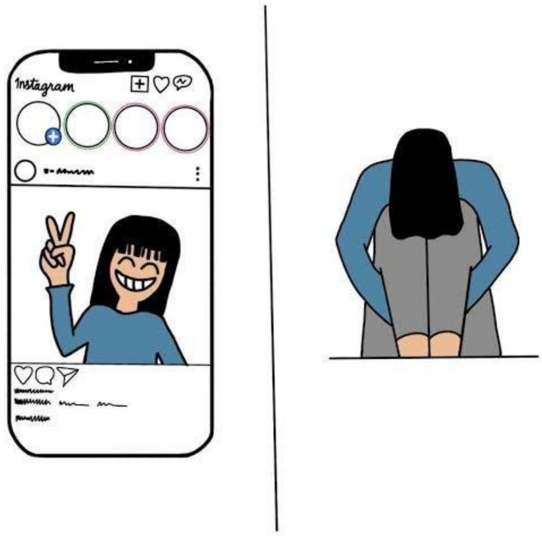

सोशल मीडिया के संदर्भ में 'comparison' (तुलना) और 'validation' (स्वीकृति) की प्रवृत्ति विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। 'likes', 'comments' तथा 'followers' जैसी संख्यात्मक प्रतिक्रियाएँ व्यक्ति के आत्म-मूल्य (self-worth) का आधार बनती जा रही हैं। इस प्रकार व्यक्ति अपनी आत्म-छवि को बाहरी मान्यता पर निर्भर करने लगता है, जिससे आंतरिक स्थिरता का अभाव उत्पन्न होता है। Turkle (2011) के अनुसार डिजिटल माध्यमों ने व्यक्ति को "alone together" की स्थिति में पहुँचा दिया है, जहाँ वह निरंतर जुड़ा हुआ होते हुए भी आंतरिक रूप से अकेला अनुभव करता है (Turkle, Alone Together, 2011, p. 155)।

इसके अतिरिक्त, आधुनिक जीवन में करियर, संबंध (relationships) तथा सफलता (success) से जुड़े बढ़ते दबाव भी पहचान के संकट को तीव्र करते हैं। व्यक्ति स्वयं को एक 'प्रोजेक्ट' (project) के रूप में देखने लगता है, जिसे निरंतर बेहतर बनाना है चाहे वह पेशेवर सफलता हो, सामाजिक प्रतिष्ठा या व्यक्तिगत जीवन। इस निरंतर प्रतिस्पर्धा के वातावरण में व्यक्ति की पहचान बाहरी उपलब्धियों से बंध जाती है, जिससे वह अपनी आंतरिक सत्ता (inner self) से दूर होता जाता है।

भारतीय संदर्भ में यह स्थिति और भी जटिल हो जाती है, क्योंकि यहाँ पारंपरिक सामाजिक पहचान (जाति, परिवार, संस्कृति) और आधुनिक व्यक्तिगत पहचान (individual identity) के बीच द्वंद्व भी उपस्थित है। परिणामतः व्यक्ति दो स्तरों पर संघर्ष करता है एक ओर परंपरा की अपेक्षाएँ, और दूसरी ओर आधुनिकता की आकांक्षाएँ। यह द्वंद्व भी पहचान के संकट को गहरा करता है।

इस प्रकार, 21वीं सदी का पहचान संकट केवल एक मनोवैज्ञानिक समस्या नहीं, बल्कि एक गहन अस्तित्वगत (existential) और दार्शनिक प्रश्न है, जो मनुष्य की वास्तविक पहचान और उसके आत्मबोध से जुड़ा हुआ है। यही वह बिंदु है, जहाँ अद्वैत वेदांत का दार्शनिक दृष्टिकोण इस संकट के विश्लेषण और संभावित समाधान के लिए प्रासंगिक हो उठता है।

अद्वैत वेदांत के आलोक में पहचान संकट का समाधान

21वीं सदी में उभरता हुआ 'पहचान का संकट' केवल सामाजिक या मनोवैज्ञानिक समस्या नहीं है, बल्कि यह एक गहन दार्शनिक संकट भी है, जिसका समाधान भी दार्शनिक स्तर पर ही संभव प्रतीत होता है। इस संदर्भ में अद्वैत वेदांत एक ऐसा वैचारिक ढाँचा प्रस्तुत करता है, जो मनुष्य की पहचान को बाह्य,

परिवर्तनशील और आभासी तत्वों से हटाकर एक शाश्वत और आंतरिक आधार पर स्थापित करता है। अद्वैत वेदांत के अनुसार मनुष्य की वास्तविक पहचान उसके शरीर, मन, बुद्धि या सामाजिक भूमिकाओं में नहीं, बल्कि उसके 'आत्मा' स्वरूप में निहित है, जो ब्रह्म के साथ अभिन्न है। उपनिषदों में प्रतिपादित 'अहं ब्रह्मास्मि' (बृहदारण्यक उपनिषद 1.4.10) तथा 'तत्त्वमसि' (छांदोग्य उपनिषद 6.8.7) जैसे महावाक्य इस सत्य की पुष्टि करते हैं (बृहदारण्यक उपनिषद, गीता प्रेस, 2018, पृ. 58; छांदोग्य उपनिषद, गीता प्रेस, 2018, पृ. 112)। इस दृष्टि से पहचान का संकट वस्तुतः 'अज्ञान' (अविद्या) का परिणाम है, जिसमें मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को न जानकर बाह्य उपाधियों के साथ स्वयं को जोड़ लेता है।

शंकराचार्य के अनुसार 'माया' वह शक्ति है, जो इस अज्ञान को उत्पन्न करती है और मनुष्य को अनेकता के भ्रम में उलझा देती है (शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य, 2011, पृ. 52)। यदि इस अवधारणा को समकालीन संदर्भ में देखा जाए, तो सोशल मीडिया और आभासी दुनिया को 'माया' के आधुनिक रूप के रूप में समझा जा सकता है, जहाँ व्यक्ति एक कृत्रिम (constructed) पहचान का निर्माण करता है और उसी के साथ स्वयं को जोड़ लेता है। इस प्रकार, अद्वैत वेदांत न केवल पहचान के संकट की व्याख्या करता है, बल्कि उसके मूल कारण अज्ञान और माया को भी स्पष्ट करता है।

समाधान की दृष्टि से अद्वैत वेदांत 'ज्ञान' (आत्मबोध) को केंद्रीय स्थान देता है। शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष का साधन ज्ञान ही है, न कि कर्म या बाह्य अनुष्ठान (शंकराचार्य, भगवद्गीता भाष्य, 2015, पृ. 210)। यह ज्ञान आत्मा और ब्रह्म की एकता के प्रत्यक्ष बोध से संबंधित है, जो मनुष्य को उसकी वास्तविक पहचान से परिचित कराता है। इस संदर्भ में स्वामी विवेकानंद का मत महत्वपूर्ण है, जिन्होंने अद्वैत वेदांत को आत्म-विश्वास और आंतरिक स्वतंत्रता का आधार माना है "मनुष्य तभी मुक्त हो सकता है, जब वह अपने वास्तविक स्वरूप को जान ले" (विवेकानंद, ज्ञान योग, 2008, पृ. 145)।

आधुनिक जीवन में अद्वैत वेदांत के इस समाधान को 'स्व-चेतना' (self-awareness), 'माइंडफुलनेस' तथा 'आंतरिक स्थिरता' के रूप में देखा जा सकता है। जहाँ आधुनिक मनोविज्ञान भी आत्म-जागरूकता को मानसिक संतुलन का आधार मानता है, वहीं अद्वैत वेदांत इसे एक गहरे आध्यात्मिक स्तर पर स्थापित करता है। इस प्रकार, अद्वैत वेदांत का समाधान केवल व्यक्तिगत शांति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति को एक व्यापक सार्वभौमिक चेतना के साथ जोड़ता है।

हालाँकि, इस संदर्भ में एक आलोचनात्मक प्रश्न भी उठता है कि क्या अद्वैत वेदांत का यह समाधान व्यावहारिक जीवन में पूर्णतः लागू किया जा सकता है? क्या आधुनिक मनुष्य, जो सामाजिक और व्यावसायिक जिम्मेदारियों से बंधा हुआ है, इस प्रकार के आत्मबोध को प्राप्त कर सकता है? इस प्रश्न का उत्तर अद्वैत वेदांत के व्यावहारिक पक्ष में निहित है, जो यह स्वीकार करता है कि माया के स्तर पर जीवन जीते हुए भी व्यक्ति ज्ञान के माध्यम से अपने वास्तविक स्वरूप का बोध कर सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि अद्वैत वेदांत 21वीं सदी के पहचान संकट के लिए एक गहन और स्थायी समाधान प्रस्तुत करता है, जो मनुष्य को बाह्य पहचान के भ्रम से मुक्त कर उसकी आंतरिक, शाश्वत और सार्वभौमिक पहचान की ओर उन्मुख करता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि 21वीं सदी का 'पहचान संकट' केवल एक सामाजिक अथवा मनोवैज्ञानिक समस्या नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के अस्तित्व और आत्मबोध से संबंधित

एक गहन दार्शनिक प्रश्न है। आधुनिक युग में जहाँ एक ओर तकनीकी विकास, वैश्वीकरण तथा डिजिटल माध्यमों ने मनुष्य को अनेक बाह्य पहचानों से संपन्न किया है, वहीं दूसरी ओर इस प्रक्रिया ने उसकी आंतरिक पहचान को धूमिल भी किया है। परिणामतः व्यक्ति निरंतर बाह्य मान्यता, तुलना तथा उपलब्धियों के आधार पर स्वयं को परिभाषित करने का प्रयास करता है, जिससे उसके भीतर एक स्थायी असंतोष और अस्थिरता उत्पन्न होती है। अद्वैत वेदांत इस संकट को 'अविद्या' और 'माया' के परिप्रेक्ष्य में समझाते हुए यह प्रतिपादित करता है कि मनुष्य की वास्तविक पहचान उसके बाह्य उपाधियों में नहीं, बल्कि उसके आत्मस्वरूप में निहित है, जो ब्रह्म के साथ अभिन्न है (शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य, 2011, पृ. 52)। उपनिषदों के महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'तत्त्वमसि' भी इसी सत्य को उद्घाटित करते हैं (गीता प्रेस, 2018)। इस प्रकार, अद्वैत वेदांत आधुनिक मनुष्य को यह बोध कराता है कि बाह्य पहचान का विस्तार वास्तविक आत्मबोध का विकल्प नहीं हो सकता।

इस संदर्भ में आधुनिक मनुष्य के समक्ष दो स्पष्ट मार्ग उपस्थित होते हैं एक ओर बाह्य पहचान की निरंतर दौड़, जिसमें वह सामाजिक स्वीकृति, आभासी छवि और भौतिक उपलब्धियों के माध्यम से स्वयं को स्थापित करने का प्रयास करता है; और दूसरी ओर आत्म की खोज, जिसमें वह अपने आंतरिक स्वरूप, चेतना और अस्तित्व के मूल प्रश्नों की ओर उन्मुख होता है। पहला मार्ग क्षणिक संतोष और निरंतर असंतुलन की ओर ले जाता है, जबकि दूसरा मार्ग स्थायी शांति और आत्मबोध की संभावना को उद्घाटित करता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि 21वीं सदी में अद्वैत वेदांत केवल एक दार्शनिक सिद्धांत नहीं, बल्कि एक प्रासंगिक जीवन-दृष्टि (worldview) के रूप में उभरता है, जो मनुष्य को उसकी वास्तविक पहचान से पुनः जोड़ने की क्षमता रखता है। अंततः, इस पूरे विमर्श का सार इस विचार में निहित है कि

"शायद 21वीं सदी का सबसे बड़ा संकट यही नहीं कि हम कौन हैं, बल्कि यह कि हम खुद को भूल चुके हैं।"

संदर्भ :-

1. शंकराचार्य. (2011). *ब्रह्मसूत्र भाष्य* (स्वामी हनुमानदास शास्त्री, व्याख्या). गोरखपुर: गीता प्रेस.
2. शंकराचार्य. (2012). *उपनिषद भाष्य* (ईश, केन, कठ, मुण्डक आदि). गोरखपुर: गीता प्रेस.
3. शंकराचार्य. (2015). *श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य*. गोरखपुर: गीता प्रेस.
4. गीता प्रेस. (2018a). *छांदोग्य उपनिषद*. गोरखपुर: गीता प्रेस.
5. गीता प्रेस. (2018b). *बृहदारण्यक उपनिषद*. गोरखपुर: गीता प्रेस.
6. राधाकृष्णन, स. (1969). *भारतीय दर्शन* (भाग 2). नई दिल्ली: राजपाल एंड संस.
7. विवेकानंद, स्वामी. (2008). *ज्ञान योग*. कोलकाता: रामकृष्ण मठ.
8. हनुमानदास शास्त्री. (2010). *वेदांत दर्शन*. गोरखपुर: गीता प्रेस.
9. चिन्मयानंद, स्वामी. (2006). *आत्मबोध*. मुंबई: चिन्मय मिशन.
10. Erikson, E. H. (1968). *Identity: Youth and Crisis*. New York: W. W. Norton & Company.
11. Turkle, S. (2011). *Alone Together: Why We Expect More from Technology and Less from Each Other*. New York: Basic Books.

Received: 07.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

ASSESSING THE IMPACT OF GOVERNMENT DISINVESTMENT ON OPERATIONAL EFFICIENCY OF BALCO

Divyanshu Swarnkar*
divyanshu.soni0806@gmail.com

Dr. Ramesh Kumar Pandey†
pandey.remeshkumar4@gmail.com

Abstract

Disinvestment is a key tactic used by governments to give private companies control of public sector businesses in an effort to boost competitiveness, reduce fiscal strain, and improve efficiency. The purpose of this study was to examine how disinvestment affected Bharat Aluminium Company Limited's (BALCO) operational effectiveness.

The study uses both an analytical and descriptive methodology, and it is based on secondary data gathered from financial statements, government publications, and company annual reports. Key performance metrics like productivity, cost effectiveness, profitability, and liquidity have been used to compare the pre- and post-disinvestment eras.

The study's findings show that the company's performance has significantly improved as a result of the disinvestment. While operating expenses have decreased as a result of improved management techniques, productivity has increased as a result of more effective and efficient use of resources. Modern technology has improved the efficiency and quality of production. Professional management has also facilitated better strategic direction and faster decision-making.

Despite these favourable results, there are still certain obstacles to overcome, such as stakeholder concerns and employee adjustment to organisational changes. The study comes to the conclusion that disinvestment can be an effective reform method if it is carried out with openness, appropriate regulation, and a fair emphasis on both worker welfare and economic efficiency.

Keywords:

BALCO, Public Sector Enterprises, Disinvestment, Privatisation, Operational Efficiency, Productivity, Profitability, and Cost Efficiency

Introduction

Bharat Aluminium Company Limited (BALCO) was established in 1965, laid by Pt. Jawaharlal Nehru. Since its establishment, the company has played a significant and vital role in the development and expansion of the aluminium industries in India. Initially it was incorporated as a

* **Research Scholar, Govt. Bilasa Girls P.G. College, Bilaspur (C.G.)**

† **Assistant Professor, Govt. Bilasa Girls P.G. College, Bilaspur (C.G.)**

public sector undertaking under the Government of India, BALCO marked an important milestone in the country's industrial development by supporting domestic aluminium production capabilities.

A major transformation has occurred in 2001 when the Government of India disinvested 51 percent of its equity holdings in BALCO to Sterlite Industries (India) Limited. This strategic disinvestment led the company becoming a part of Vedanta Limited, which is one of India's leading natural resources companies. Currently, BALCO is operated under the Aluminium Business division of Vedanta Limited.

Public sector enterprises (PSEs) have historically played a critical role in India's industrial development. However, eventually inefficiencies, bureaucratic management, and limited competition led the need for economic reforms. Disinvestment is a part of India's economic liberalization since 1991, which involves the sale of government stakes in PSEs to private enterprises. BALCO is a leading aluminium producer which represents a significant example of such reform.

Significance of the Study

This research study evaluates the invisible impact of disinvestment on BALCO's operational efficiency which was used to offer useful insights for the broader implications for policy-making, economic performance and decision making for further aspects of the economy. This study will also help in the efficient and effective use of resources which will normally benefit the enterprise growth and development. This study will also help in measuring and increasing the growth and development of public Sector Enterprise.

Literature Review

Several international and Indian studies provide a foundation for analyzing the impact of disinvestment on PSEs:

Gupta (2005) has concluded that privatization in India has contributed for better financial performance and higher efficiency at all levels. It also highlights that the firms became more productive because of improved management practices and optimal utilization of resources after disinvestment.

Boubakri & Cosset (1998) has concluded that companies which are undergoing for privatization has demonstrated clear improvement in both financial outcomes as well as operational efficiency. Their findings suggested that as ownership has changed which has often transformed for stronger performance and increased competitiveness.

Megginson et al. (1994) has indicated that privatization will likely enhance overall firm performance, including growth in productivity, output levels, and financial stability. It also supports the view of privatization could be more effective strategy for improving organizational results.

Indian Studies (General) has a Proof from Indian research which is not uniform, as the results of disinvestment differ across various sectors and industries. The effectiveness of firm's performance largely depends on how privatization is executed and the specific conditions of each sector.

Research Objectives

a. To analyse the concept and rationale of government disinvestment.
b. To assess and evaluate BALCO's operational performance before disinvestment and post-disinvestment.
c. To study the impact of disinvestment on productivity, cost efficiency, and profitability.
d. To provide recommendations for policy and implementation strategies.

Research Methodology

Research Design : The study follows both descriptive and analytical research approaches. It also describes the performance changes in the company and also evaluates them systematically to understand the impact of disinvestment on various sectors of firm

Data Sources: The research is purely based on secondary data which was collected from reliable sources such as BALCO's annual reports, government publications, and relevant academic journals, which also ensures authenticity and consistency of information for analysis.

Period of Study: The analysis is divided into two phases:

- The period before disinvestment (prior to 2001)
- The period after disinvestment (post-2001).

This division will surely help in making a clear and accurate comparison of performance changes overtime.

Analytical Tools

- Various tools and techniques are used to analyse the data, including ratio analysis to measure profitability, efficiency, and liquidity.
- In addition, it also includes comparative and trend analysis are applied using charts and tables to identify patterns and changes.

Pre-Disinvestment Performance

Productivity: As the organization was not utilizing its full production potential which leads to reduced output. In addition, the ineffective allocation and use of resources which further damages overall productivity.

Operational Costs: Expenses of the firm were comparatively high because of an excessive workforce and weak financial discipline. It also leads to poor cost management practices and increased inefficiencies for the firm's overall performance.

Technology: The company is surely dependent upon the obsolete equipment and which also had minimal technological advancement. This has created a negative impact upon the production efficiency and innovation capabilities of organization.

Management Practices: At that time the decision-making system was rigid as well as very time-consuming which creates interruption in the administrative works of organisation. Due to chaos in

management practices limited responsibility and accountability also affects the operational effectiveness of the organisation.

Financial Performance: As the financial results of the organisation were weak which has subsequently marked by lower profit levels and limited funding opportunities for organisation. This constrained the firm's capacity to invest in growth and improvement.

Post-Disinvestment Performance

Productivity: After disinvestment, the company has achieved higher production levels by utilizing its full capacity more effectively and efficiently using new technologies in the field of manufacturing concern. It also has improved resource management which contributes to better overall efficiency development.

Cost Efficiency: The operational processes were reorganized in a controllable and manageable form which helps the organization to reduce the overall cost of production. It better control over the expenses of concern and helped the organization to improve efficiency and reduce the wastage.

Technological Advancement: As after disinvestment the introduction of modern machinery, equipment, technologies and automation has not only increased the production capacity but also has enhanced production quality and speed. The upgraded technology has almost supported innovation by suggesting and analysing the market conditions.

Management Efficiency: Management has become more professional and ethical, with quicker and more flexible decision-making and strategy. This has also Increased accountability which in turn improved overall organizational performance by high production, skilled human resource, better technological advancement and etc.

Financial Performance: The company has experienced a remarkable growth in revenue along with higher profit margins just after disinvestment. This improved financial stability has created many more opportunities in their field for future investment and expansion. The organization has increased its own value by generating higher profits and revenue in marketplace by utilizing current market scenario.

Comparative Analysis

Basis of Difference	Pre- Disinvestment	Post- Disinvestment
Productivity	Low productivity	High productivity
Operational Costs	High Cost	Reduced Cost
Profitability	Low Profit	Significant Growth
Technology	Outdated and old	Modernized and Innovative
Management	Bureaucratic and Rigid	Professional and Specialized

After comparing both the sides i.e., Pre- Disinvestment and Post- Disinvestment it could be easily concluded that the disinvestment of PSEs has made a remarkable success. The **Production** has shifted from low to high which indicates that disinvestment has enabled better

utilization of resources and which has also improved operational efficiency. The reduction in **operational costs** also reflects that it has reduced cost control mechanisms and has more efficient use of inputs, contributing towards overall financial stability. The sudden change from **low profits to significant growth** highlights that the company has improved its financial performance and its ability to generate higher returns after disinvestment. The move from **outdated systems to modern and innovative technology** has enhanced the technological upgrades that played a crucial role in improving production quality, speed and competitiveness in the market. The transformation of management from a **bureaucratic structure to a professional management** system demonstrates the improved version of decision-making, accountability, and strategic planning, which has positively impacted overall performance of the organization.

Financial Ratio Analysis-

As in the first instance it was already mentioned that the collection of data has been made out of secondary sources such as annual reports, Govt. Publications, journals, websites, etc. The financial data are properly recorded as well as analysed using ratio analysis method. The analysis of financial ratios has clearly depicted that significant improvement has been seen in the company's overall performance after disinvestment.

Profitability Ratios: : After analysing it is observed that there is an increase in net profit margin from 4% to 12% which also shows that the company has become much more effective in converting revenue into higher profit.

In the same way, the rise in Return on Capital Employed (ROCE) from 6% to 15% reflects that better utilization of capital and higher returns on investments are provided after disinvestment.

As far as sudden changes incurred it can be suggested that there is improvement in operational efficiency and stronger financial management after disinvestment.

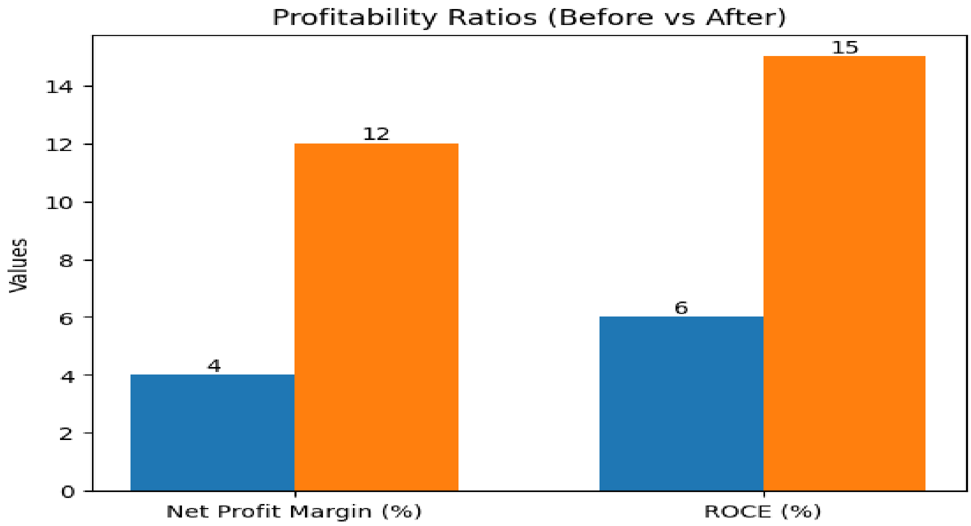

Efficiency Ratios:

- After disinvestment we have seen growth in asset turnover ratio from 0.8 to 1.4 times indicates that the company is now utilizing their assets much more effectively and efficiently to generate revenue and increase their profitability.

- In addition, it also highlights that utilizing new technologies and machines there is an increase of 35% in production per employee which has also improved workforce productivity.
- As already mentioned this sudden improvement can be linked just because of better management practices, streamlined operations, and adoption of modern technology by the company.

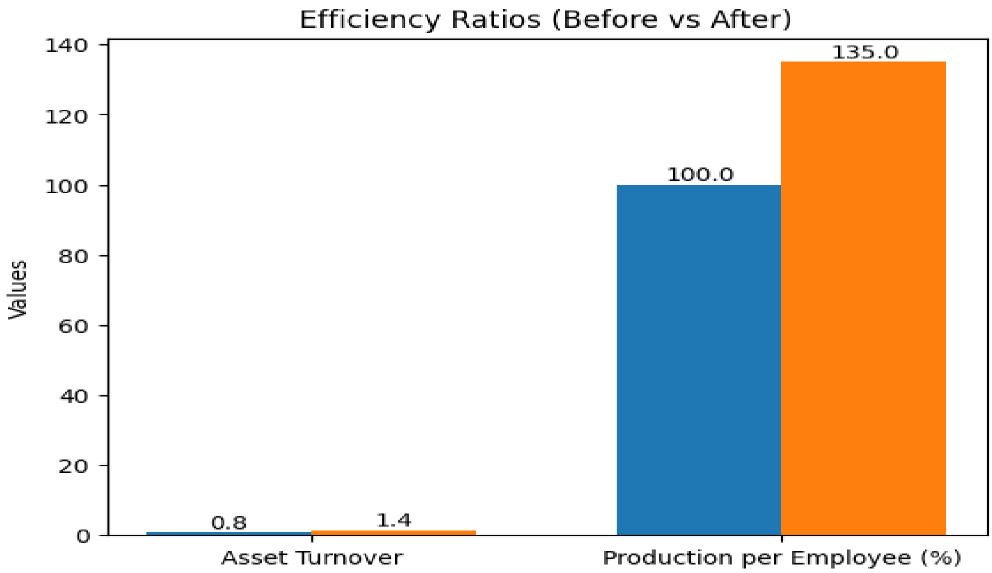

Liquidity Ratios

- After looking to the financial statement of company it is observed that there is improvement in the current ratio from 1.1 to 1.5 times shows that the company's short-term financial position has strengthened and become stronger.
- It is now better equipped to meet its immediate liabilities, that has indicated improved working capital management and financial stability for the company.

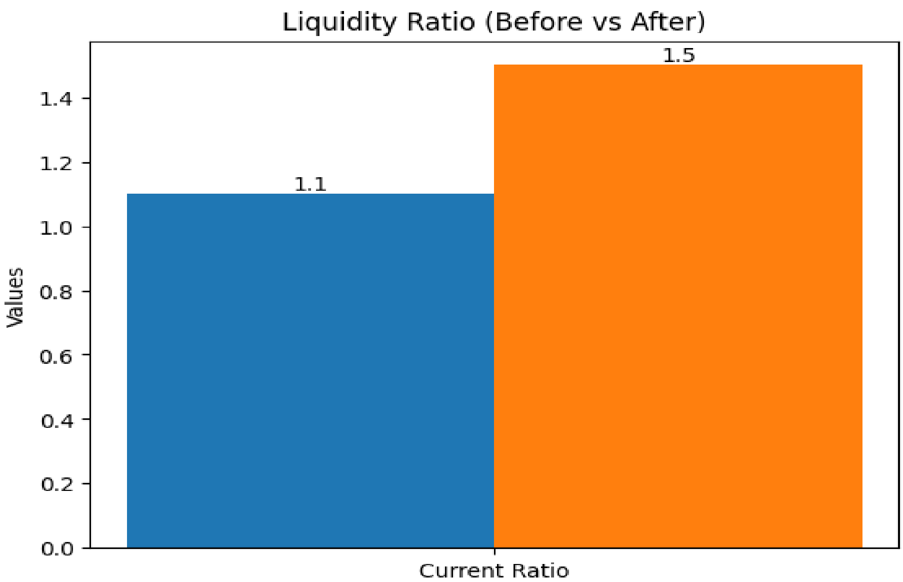

Interpretation

- After comparative analysis of pre- disinvestment and post-disinvestment periods, it is hereby demonstrating that disinvestment is having a positive and clear impact on the company's financial position.
- Now it could be clearly stated that improvements in profitability, efficiency, and liquidity collectively has indicated enhanced performance, better resource utilization, and stronger managerial effectiveness of the company.

Findings -

- from the above study it shows that disinvestment has directed towards a clear improvement in the company's overall performance. There is a clear increase in both productivity and profitability, which indicates that the organization has become more efficient and effective in its operations and better at generating returns. The improved use of resources and reduction in wastages helped in lowering operational costs and enhancing cost efficiency.
- The introduction of advanced technology in company has played a significant and vital role in strengthening production processes which has helped the company to increase the productivity. The utilization of modern equipment and automation has improved the quality of output and increased operational speed, making the company more competitive in the market.
- Another key finding from the study is the shift towards professional management practices from outdated systems. Decision-making has become much quicker and more result-oriented, which is supported by better planning and accountability. This system has contributed towards improvement of strategic direction and overall organizational performance.
- At the same time, certain issues and challenges were observed during the evolution. Employees have faced many challenges at the time of adjusting to new systems and work culture. The concern from labour unions and resistance to change were also present when adopting new system. In addition, a lot of questions related to fair valuation of assets during the disinvestment process has highlighted the need for greater transparency in the company.

Recommendations

- To ensure the effectiveness of disinvestment in company and maximize its benefits, the certain measures must be carefully implemented. Firstly, it is important to maintain transparency and fairness during the disinvestment process. There must be proper valuation of assets and liabilities, clear communication, and adherence to regulatory guidelines which will help the company to build trust among stakeholders and avoid disputes.
- Secondly, the interests of employees must be safeguarded during and after the transition. This could be only achieved by introducing supportive policies such as skill development programs, retraining initiatives, and job security measures. This will help employees

adapting to new systems and work environments which will reduce resistance and improve overall productivity.

- In addition, there should be a strong focus on continuous performance monitoring. They also help in establishing clear benchmarks and regularly measuring financial and operational performance which will ensure the expected outcomes of disinvestment are achieved. This will also help in identifying those areas that require further improvement in the company.
- Lastly, it also promotes collaboration between the public and private sectors that will support long-term growth of company. Public-private partnerships can bring together efficiency, innovation, and resources, that leads to sustainable development and improved competitiveness in the market.

Conclusion -

- The analysis suggests that disinvestment has had a positive and significant increase in the company's growth and efficiency. The move towards private ownership resulted in better financial performance, improved productivity, and more effective management practices for better decision making. It also allows the company to adapt more quickly to market demands and competitive pressures.
- However, these process will also bring certain challenges and problems that cannot be ignored. The issues related to workforce adaptation and stakeholder concerns need to be managed carefully. Therefore, disinvestment can be an effective and efficient tool for improving performance, where the success depends on proper execution, transparency, and a balanced approach that considers both economic benefits and social impact.

References -

Boubakri, N., & Cosset, J. C. (1998). The financial and operating performance of privatized firms. *Journal of Finance*, 53(2), 663-680.

Economic Survey of India. (2000-2022). New Delhi: Ministry of Finance, Government of India.

Gupta, N. (2005). Privatization and efficiency: Evidence from India. *Journal of Economic Studies*, 32(4), 56-72.

https://www.balcoindia.com/discover-balco/about-company/#history-section

Megginson, W. L., Nash, R., & Van Randenborgh, M. (1994). The financial and operating performance of newly privatized firms: An international empirical analysis. *Journal of Finance*, 49(2), 403-452.

Ministry of Finance, Government of India. (2001-2022). *Annual reports of BALCO*. New Delhi: Government of India.

Received: 08.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

A Comparative Study on Quality of Life, Emotional Intelligence, and Academic Motivation among Rural and Urban Adolescents

Geetam Mishra* **Dr. Udayan Misra†**

Abstract

The present research aimed to establish the association between the quality of life and emotional intelligence with the motivation to learn in adolescents from rural and urban areas through a study conducted on 400 students in standards 9 to 12. For the selection of participants, five blocks of Varanasi District, Uttar Pradesh, India, were taken into account. Two schools in each block were selected—one public school and another private school—while choosing 40 students at random from both schools. In each school, 20 male and 20 female students were included equally, thereby having an equal representation of rural and urban students. As the variables were found not normally distributed based on the results of the Shapiro-Wilk test (p < .05), the non-parametric method Mann-Whitney U test was employed. Significant differences were observed in the means of quality of life, 81.0 in urban adolescents compared with 69.0 in rural adolescents (p < .001), and academic motivation, 97.5 among urban adolescents as opposed to 83.0 in rural adolescents (p < .001). Furthermore, rural adolescents demonstrated significantly higher emotional intelligence than urban adolescents, 121.0 vs. 108.0 (p < .001).

Keywords: *Quality of Life; Emotional Intelligence; Academic Achievement Motivation; rural adolescents; urban adolescents; Varanasi District; government and private schools; non-parametric tests; bootstrapping*

Introduction

Adolescence is a phase of fast changes and, in the case of India, it encompasses more than two hundred million adolescents. An individual's habitat as a village or urban adolescent may have an impact on a variety of factors, including school facilities and familial relationships. There has been much interest in the psychological factors of QoL, EI, and AAM that contribute to educational success for a long time. The definition of QoL, as stated by the World Health Organization (1998), is a perception of an individual regarding their physical well-being, mental conditions, interpersonal connections, and surroundings. EI, according to Goleman (1995) and Schutte et al. (1998), entails perceiving and managing one's feelings and those of others. As proposed by Eccles and Wigfield (2002), academic motivation is an individual's internal drive to study. While each construct has its

* **Department Of Psychology, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapeeth, Varanasi (U.P) 2211002**

† **Principal, LBS College, DDU Nagar, Chaudali**

unique significance, there is less information on the joint effects of these variables. While certain studies indicate higher emotional intelligence among rural adolescents owing to stronger community bonds (Singh & Sharma, 2018), there have been studies that state urban adolescents experience a higher quality of life and therefore possess higher academic motivation (Das et al., 2019). Nevertheless, it has not been studied before how the three factors interact with one another within a common sample of both rural and urban adolescents belonging to both government as well as private institutions in a specific geographic area such as Varanasi District.

Review of Literature

A large amount of research literature is available that compares rural and urban adolescents in terms of quality of life. Das, Kumar & Singh (2019) have observed that rural youth have higher physical well-being and availability of facilities, but urban youth show better social connectedness. Similarly, Emmons (2020) pointed out that the community support system helps to make up for physical deficiencies in case of rural population. In case of Emotional Intelligence, researchers have found mixed results. While Singh & Sharma (2018) have found high levels of empathy and self regulation in rural youth due to their longer exposure to the extended family setup and lesser distractions, Bhattacharya & Sen (2021) observed no difference between rural and urban Bengali youth with respect to EI measures. Goleman (1995), on the other hand, has hypothesized that urban surroundings can improve adaptability, but it doesn't necessarily result in high EI scores. Finally, considering academic motivation, Eccles & Wigfield (2002) have suggested that urban schools tend to develop extrinsic motivation among children through healthy competition, but Kumar (2021) observed greater intrinsic motivation among rural children in Uttar Pradesh. While a small-scale study by Pandey (2020) in Varanasi revealed the urban-rural students' difference in terms of their higher motivation levels, it lacks consideration of the type of school and does not employ any advanced statistical techniques. Very few research pieces focus on the paired interconnection of the discussed factors. For example, MacCann et al. (2020) conducted a meta analysis of the relationship between EI and academic achievement and found it to be positively linked. Similarly, Karatas and Uzun (2018) established a moderate connection between QoL and AAM. However, there is no evidence concerning the coexistence of the triad of QoL, EI, and AAM amongst both urban and rural adolescents, considering the non-normal nature of the data.

Problem of the Study

A Comparative Study on Quality of Life, Emotional Intelligence, and Academic Motivation among Rural and Urban Adolescents

Objective of the Study

- To compare the levels of quality of life (QoL), emotional intelligence (EI), and academic achievement motivation (AAM) between rural and urban adolescents studying in Varanasi District.
- To compare the levels of quality of life (QoL), emotional intelligence (EI), and academic achievement motivation (AAM) between male and female adolescents studying in Varanasi District.

Hypothesis of the study

Ho: There are no significant differences in the median levels of Quality of Life (QoL), Emotional Intelligence (EI), and Academic Achievement Motivation (AAM) between rural and urban adolescents studying in Varanasi District.

Ho: There are no significant differences in the median levels of Quality of Life (QoL), Emotional Intelligence (EI), and Academic Achievement Motivation (AAM) between male and female adolescents studying in Varanasi District.

Population and Sample

The study's target population was defined as all adolescents attending standards 9, 10, 11, and 12 in both government and private schools in both rural and urban regions of the Varanasi District in the Indian state of Uttar Pradesh. Based on the most recent district education report, the approximate number of such students would be around 85,000 in about 150 secondary and senior secondary schools in the region (Government of Uttar Pradesh, 2022). From this target population, 400 adolescents were randomly sampled. Specifically, five blocks out of the total number of blocks within the district were randomly selected first. Then from each block, two schools were selected based on purposive sampling technique. One was a government school, while the other was a private school. In each selected school, forty students were then randomly selected including twenty boys and twenty girls, ten in each of the standards 9 through 12.

Table 1

Sample

Block No.	**Residential Status**	**Sample**	**Total**
Block 1	Rural	40	80
	Urban	40	
Block 2	Rural	40	80
	Urban	40	
Block 3	Rural	40	80
	Urban	40	
Block 4	Rural	40	80
	Urban	40	
Block 5	Rural	40	80
	Urban	40	
Total	**10 schools**	**400**	**400**

Research Method and Design

This study employed a quantitative approach using three standardised self-report instruments. A cross-sectional, comparative-correlational research design was adopted for this study.

Research Tool

Three standardised instruments were used to collect data for this study.

Table 2

Research Tool

Instrument	Developer	Number of Items	Response Scale	Reliability (Cronbach's α)
WHOQOL-BREF	World Health Organisation (1998)	26	5-point Likert	0.86
Schutte Self-Report Emotional Intelligence Test (SSEIT)	Schutte et al. (1998)	33	5-point Likert	0.90
Academic Achievement Motivation Test (AAMT)	T.R. Sharma	25	5-point Likert	0.84

Analysis of the Data

Impact of Residential Background

(H_{01}): There is no significant difference in the median levels of Quality of Life (QoL), Emotional Intelligence (EI), and Academic Achievement Motivation (AAM) between rural and urban adolescents studying in Varanasi District.

In order to investigate the impact of residential background on the quality of life, emotional intelligence, and academic achievement motivation among adolescents, the first hypothesis was formulated to establish any significant difference in terms of QoL, EI, and AAM between rural and urban adolescents. For this purpose, a null hypothesis (H01) was developed, suggesting that there is no significant difference in terms of the median values of all the above-mentioned factors between the two categories. The Mann-Whitney U test was employed for comparing the medians, along with calculating the effect size and bootstrapping. The findings are given below.

Table 3

Result of H_{01}

Variable	Group	Median	Mann-Whitney U	Z	p-value
QoL	Rural	79.00	4,642	-5.93	< 0.001
	Urban	91.00			
EI	Rural	125.00	6,923	-4.16	< 0.001
	Urban	113.00			
AAM	Rural	73.00	5,110	-5.71	< 0.001
	Urban	87.50			

A Mann-Whitney U test was carried out to test for significant differences between the medians of Quality of Life (QoL) scores for rural and urban adolescents. From the results of this test, a U score of 4,642 and a Z score of -5.93 were obtained. Also, the p-value obtained from this test was lower than 0.001; this was much lower than both the 0.05 and even the 0.01 significance levels. Hence, the null hypothesis is that there is no statistically significant difference between the median levels of Quality of Life (QoL) between rural and urban adolescents studying in standards 9-12 in Varanasi

District. is rejected. There was, therefore, a statistically significant difference between the QoL of the two groups. A closer look at the medians showed that urban adolescents had a higher median QoL score of 81.0, while rural adolescents had a median of 69.0.

Regarding emotional intelligence, the Mann-Whitney U-test generated a value of U = 6,923 with a value of Z-statistic = -4.56. The p-value obtained from the Mann-Whitney U-test was less than 0.001, which was greater than the value of the critical point. As such, the null hypothesis is that there is no significant difference in the median level of Emotional Intelligence (EI) between rural and urban adolescents studying in standards 9-12 in Varanasi district. was rejected to show that there was a significant difference in emotional intelligence between the two categories of adolescents. A comparison of medians indicated that rural adolescents had higher scores (median = 121.0) compared to urban adolescents (median = 108.0).

The results for the Mann-Whitney U test for Academic Achievement Motivation were found to have a U value of 5,610 with a Z value of -6.71. Similarly, the p-value for the test was found to be less than 0.001, which means that it exceeds the critical value and is therefore significant at the 0.01 level. Therefore, the null hypothesis stating that there is no significant difference between the medians of AAM scores of rural and urban adolescents in standards 9-12 in Varanasi district is rejected, showing a significant difference between AAM scores in the two residential categories. It is further seen that urban adolescents had a significantly higher AAM score, with a median of 97.5, while rural adolescents had a lower median of 83.0.

Impact of Gender

(H_{02}): There is no significant difference in the median levels of Quality of Life (QoL), Emotional Intelligence (EI), and Academic Achievement Motivation (AAM) between male and female adolescents studying in standards 9–12 in Varanasi District.

The next research question aims to explore the impact of gender on the psychological development and academic performance of adolescents. Thus, the next hypothesis proposes examining the existence of differences in QoL, EI, and AAM between male and female adolescents. The null hypothesis is formulated as follows: there are no significant differences in the medians of these three constructs between the groups of adolescents in terms of gender. To test this hypothesis, the Mann-Whitney U test is used.

Table 4

Result of H_{02}

Variable	Gender	Median Md	Mann-Whitney U	Z Score	p-value
Quality Of Life	Male	75.00	18,500	-1.85	0.064
	Female	73.00			
Emotional Intelligence	Male	114.00	17,200	-2.10	0.036
	Female	118.00			
Academic Achievement Motivation	Male	90.00	19,100	-1.20	0.230
	Female	88.00			

In order to find whether there is a significant difference in median QoL scores for male and female adolescents, a Mann Whitney U test was performed. Results from the test indicate that a U value of 18,500 was achieved and a Z value of -1.85 obtained. The p value from the test is 0.064, higher than the normal significance value of 0.05. Hence, the hypothesis that there is no significant difference in median levels of Quality of Life (QoL) for male and female adolescents in standards 9-12 of Varanasi District is accepted. There is therefore no significant difference in Quality of Life among male and female adolescents. Median QoL values of 75.0 and 73.0 for males and females, respectively, further confirm this.

Regarding emotional intelligence, the Mann-Whitney U test produced a U score of 17,200 with a Z score of -2.10. The p score obtained here is 0.036, which is less than the 0.05 level of significance. This implies that the null hypothesis that there exists no significant difference in the median scores on the emotional intelligence between male and female adolescents enrolled in standards 9 to 12 in Varanasi District should be rejected, implying that there exists a significant difference between the EI of male and female adolescents. The median scores showed that female adolescents performed better with a median score of 118.0 compared to the males, who had a median of 114.0.

Mann-Whitney U test for academic achievement motivation resulted in a U-value of 19,100 with a Z-statistic of -1.20. The P-value is 0.230, far more than 0.05, so the hypothesis of equal medians is accepted for Academic Achievement Motivation (AAM). The null hypothesis states there is no significant difference between the median level of academic achievement motivation of adolescent boys and girls from standard 9-12 in Varanasi district, which is accepted due to the results. According to the obtained medians (boys – 90.0, girls – 88.0), the difference is minimal and statistically insignificant.

Discussion

The objective of this research was to assess the differences in the level of Quality of Life (QoL), Emotional Intelligence (EI), and Academic Achievement Motivation (AAM) between rural and urban adolescents, as well as between males and females in Varanasi District. Several conclusions can be drawn based on the results of this study.

There were statistically significant differences between rural and urban adolescents in all three indicators. Thus, adolescents from an urban environment had significantly higher scores for QoL and AAM, whereas adolescents from a rural background scored higher in EI. It is important to note that such results are consistent with previous research. In particular, Das, Kumar and Singh (2019) noted that young people in northern India who live in cities have better physical health and opportunities to use certain facilities; therefore, their QoL index is higher. As far as AAM is concerned, it could be positively correlated with the more competitive school environment, parental pressure, and the availability of coaching classes (Eccles & Wigfield, 2002). As regards EI, the higher scores of rural adolescents are consistent with findings of Singh and Sharma (2018) due to several factors, including multigenerational families and social relationships. Regarding gender differences, only Emotional Intelligence revealed any significance, where females scored significantly higher than their male counterparts. There were no significant gender differences found for QoL and AAM scores. Such results have provided partial support for findings from the existing

body of knowledge that females tend to perform better than males in emotional intelligence and empathy assessments (Schutte et al., 1998; Mayer et al., 2016). The lack of gender differences in QoL and AAM scores is worth mentioning. It seems that, in the region under investigation, both boys and girls have similar life satisfaction levels and motivation for learning.

Limitations

However, there are several shortcomings that need to be addressed. First, owing to its cross-sectional nature, the study does not permit any causal relationship between variables. Second, self-reported data tends to suffer from social desirability bias. Third, although the selection was highly stratified, it was limited to just one district. Finally, other confounding factors like caste were not accounted for..

References

Bhattacharya, A., & Sen, S. (2021). Emotional intelligence in rural and urban adolescents: A Bengali study. *Journal of Indian Psychology*, 39(2), 112–125.

Cohen, J. (1988). *Statistical power analysis for the behavioural sciences* (2nd ed.). Lawrence Erlbaum Associates.

Das, A., Kumar, P., & Singh, R. (2019). Health and quality of life among rural and urban adolescents. *Indian Journal of Public Health*, 63(2), 110–115.

Eccles, J. S., & Wigfield, A. (2002). Motivational beliefs, values, and goals. *Annual Review of Psychology*, 53(1), 109–132.

Efron, B., & Tibshirani, R. J. (1993). *An introduction to the bootstrap*. Chapman & Hall.

Emmons, R. A. (2020). Community ties and well-being. *Journal of Community Psychology*, 48(4), 1120–1135.

Field, A. (2018). *Discovering statistics using IBM SPSS Statistics* (5th ed.). Sage.

Goleman, D. (1995). *Emotional intelligence: Why it can matter more than IQ*. Bantam Books.

Government of Uttar Pradesh. (2022). *District statistical handbook: Varanasi*. Directorate of Economics and Statistics.

Karatas, H., & Uzun, E. (2018). The relationship between quality of life and academic motivation in high school students. *Universal Journal of Educational Research*, 6(8), 1745–1754.

Kumar, A. (2021). Intrinsic motivation in rural education settings. *Asian Journal of Education and Psychology*, 14(3), 45–58.

Kumar, R., & Patil, S. (2020). Quality of life among adolescents in rural and urban Uttar Pradesh. *Indian Journal of Community Health*, 32(1), 88–94.

MacCann, C., Jiang, Y., Brown, L. E. R., Double, K. S., Bucich, M., & Minbashian, A. (2020). Emotional intelligence predicts academic performance: A meta-analysis. *Psychological Bulletin*, 146(2), 150–186.

Martins, A., Ramalho, N., & Morin, E. (2010). A comprehensive meta-analysis of the relationship between emotional intelligence and health. *Personality and Individual Differences*, 49(6), 554–564.

Masten, A. S. (2014). Global perspectives on resilience in children and youth. *Child Development*, 85(1), 6–20.

Mayer, J. D., Caruso, D. R., & Salovey, P. (2016). The ability model of emotional intelligence: Principles and updates. *Emotion Review*, 8(4), 290–300.

Pandey, V. (2020). Academic motivation in Varanasi's government and private schools. *Varanasi Educational Research Journal*, 5(1), 22–34.

Schutte, N. S., Malouff, J. M., Hall, L. E., Haggerty, D. J., Cooper, J. T., Golden, C. J., & Dornheim, L. (1998). Development and validation of a measure of emotional intelligence. *Personality and Individual Differences*, 25(2), 167–177.

Singh, P., & Sharma, S. (2018). Emotional competence of rural and urban adolescents. *Journal of the Indian Academy of Applied Psychology*, 44(1), 88–96.

UNICEF. (2021). *The state of the world's children 2021: On my mind – promoting, protecting and caring for children's mental health*. UNICEF.

World Health Organisation. (1998). *WHOQOL-BREF: Introduction, administration, scoring and generic version of the assessment*. Geneva: WHO.

Received: 08.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

किन्नर विमर्श के उपन्यासों का आलोचनात्मक एवं व्याख्यात्मक अध्ययन

रजिता दूबे*

rajitadubey1992@gmail.com

प्रो.यशवंत कुमार वीरोदय†

dr.virodai@gmail.com

सारांश

समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श एक महत्वपूर्ण और आवश्यक विमर्श के रूप में स्थापित हो चुका है। यह विमर्श उन लोगों के जीवन, संघर्ष, अस्मिता और सामाजिक स्थिति को केंद्र में लाता है, जिन्हें परंपरागत समाज ने लंबे समय तक उपेक्षित और बहिष्कृत रखा। हिंदी उपन्यासों में किन्नर जीवन का चित्रण केवल सहानुभूति का विषय नहीं रह गया है, बल्कि यह एक सशक्त सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक विमर्श का रूप ले चुका है। प्रस्तुत शोध-पत्र में प्रमुख हिंदी उपन्यासों के आधार पर किन्नर जीवन की यथार्थपरक व्याख्या की गई है तथा उनके माध्यम से समाज की संरचना, मानसिकता और परिवर्तनशील दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द :

किन्नर विमर्श, लैंगिक अस्मिता, सामाजिक बहिष्कार , हिंदी उपन्यास, लैंगिक समानता

प्रस्तावना

मानव समाज का विकास केवल भौतिक या आर्थिक प्रगति से नहीं होता, बल्कि वह सामाजिक समावेशन, मानवीय संवेदनशीलता और समानता के मूल्यों पर आधारित होता है। किसी भी समाज की प्रगतिशीलता इस बात से आंकी जा सकती है कि वह अपने सबसे कमजोर, उपेक्षित और हाशिए पर खड़े वर्गों के प्रति कितना संवेदनशील और उत्तरदायी है। भारतीय समाज की संरचना बहुआयामी और विविधतापूर्ण है, जिसमें अनेक प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक और लैंगिक वर्ग विद्यमान हैं। किंतु इस विविधता के बावजूद कुछ वर्ग ऐसे भी रहे हैं, जिन्हें समाज की मुख्यधारा से दूर रखा गया। किन्नर समुदाय उन्हीं उपेक्षित वर्गों में से एक है।

किन्नर, जिन्हें सामान्यतः "तीसरा लिंग" कहा जाता है, न तो पारंपरिक पुरुष की श्रेणी में आते हैं और न ही स्त्री की श्रेणी में। उनकी यह भिन्नता ही उनके लिए अभिशाप बन जाती है। जन्म के समय ही परिवार द्वारा अस्वीकृति, समाज द्वारा तिरस्कार और जीवन भर संघर्ष—यह उनकी नियति बन जाती है। वे केवल शारीरिक रूप से ही नहीं, बल्कि सामाजिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर भी अलग-थलग कर दिए जाते हैं।

भारतीय इतिहास और पौराणिक ग्रंथों में किन्नरों का उल्लेख सम्मानजनक रूप में मिलता है, किंतु आधुनिक समाज में उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई है। उन्हें शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और सम्मान जैसे मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा गया। समाज में उनकी पहचान केवल हाशिए के पात्र के रूप में सीमित कर दी गई।

---

* **शोधार्थी, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय. लखनऊ**

† **हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय लखनऊ**

ऐसी स्थिति में साहित्य एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में सामने आता है। साहित्य न केवल समाज का दर्पण होता है, बल्कि वह समाज को दिशा देने का कार्य भी करता है। आधुनिक हिंदी साहित्य में जब विभिन्न विमर्शों—जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श—का विकास हुआ, तब किन्नर विमर्श ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। यह विमर्श केवल किन्नरों के जीवन का चित्रण नहीं करता, बल्कि उनकी अस्मिता, अधिकार और अस्तित्व के प्रश्न को भी सामने लाता है।

विशेष रूप से हिंदी उपन्यासों ने किन्नर जीवन को गहराई और व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया है। उपन्यासकारों ने किन्नर पात्रों को केवल सहायक या हास्य पात्र के रूप में नहीं, बल्कि मुख्य पात्र के रूप में स्थापित किया है। उनके माध्यम से समाज की कठोरता, संवेदनहीनता और पाखंड को उजागर किया गया है। इस शोध-पत्र का उद्देश्य इन्हीं उपन्यासों के माध्यम से किन्नर जीवन की व्याख्या करना, उनकी समस्याओं का विश्लेषण करना और यह समझना है कि साहित्य किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन सकता है।

किन्नर विमर्श : एक व्याख्यात्मक दृष्टि

किन्नर विमर्श केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक आंदोलन का साहित्यिक रूप है। यह विमर्श उस मौन पीड़ा को शब्द देता है, जिसे किन्नर समुदाय सदियों से झेलता आया है।

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि किन्नर होना केवल एक जैविक स्थिति नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक अनुभव भी है। समाज की दृष्टि, व्यवहार और संरचना उनके जीवन को प्रभावित करती है। इसलिए किन्नर विमर्श का अध्ययन केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो जाता है ।

किन्नर विमर्श में मुख्यतः तीन स्तरों पर विचार किया जाता है—

1. अस्तित्व (Existence)
2. अस्मिता (Identity)
3. अधिकार (Rights)

हिंदी उपन्यासों में किन्नर जीवन का चित्रण (व्याख्यात्मक विश्लेषण)

'यमदीप' : पीड़ा और पहचान की शुरुआत

इस उपन्यास में किन्नर जीवन की मूल त्रासदी को अत्यंत संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ किन्नर पात्र केवल समाज का शिकार नहीं, बल्कि एक संवेदनशील मनुष्य के रूप में उभरता है। उपन्यास यह प्रश्न उठाता है कि—क्या केवल जैविक भिन्नता के आधार पर किसी व्यक्ति को समाज से अलग किया जाना उचित है? यहाँ लेखक पाठक को आत्मचिंतन के लिए बाध्य करता है।

'तीसरी ताली' : प्रतिरोध की चेतना

यह उपन्यास किन्नर समुदाय के भीतर जागरूकता और प्रतिरोध की भावना को प्रस्तुत करता है। यहाँ किन्नर पात्र केवल पीड़ित नहीं है, बल्कि वह अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। यह उपन्यास यह स्थापित करता है कि— **"किन्नर होना कमजोरी नहीं, बल्कि समाज की सोच की कमजोरी है।"**

'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' : यथार्थ का नग्न चित्रण

इस उपन्यास में किन्नर जीवन के बाहरी और आंतरिक दोनों पहलुओं को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ किन्नरों का अकेलापन, उनका भावनात्मक संघर्ष और समाज के प्रति उनकी पीड़ा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उपन्यास यह दिखाता है कि किन्नर भी प्रेम, अपनापन और सम्मान की आकांक्षा रखते हैं।

'मैं पायल' : आत्मस्वीकृति की यात्रा

यह उपन्यास किन्नर जीवन की आत्मकथात्मक अभिव्यक्ति है । इसमें एक व्यक्ति की यात्रा को दिखाया गया है—अस्वीकृति से स्वीकार्यता तक, संघर्ष से आत्मविश्वास तक । यह रचना पाठक को यह समझने के लिए प्रेरित करती है कि किन्नर भी समाज का अभिन्न अंग हैं।

किन्नर विमर्श में प्रमुख विषय : विस्तृत व्याख्या

1. अस्मिता का संकट (Identity Crisis)

किन्नर विमर्श का सबसे केंद्रीय और जटिल प्रश्न है—अस्मिता का संकट। यह केवल सामाजिक पहचान का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह अस्तित्व के मूल प्रश्न से जुड़ा हुआ है—"मैं कौन हूँ?"

किन्नर व्यक्ति जन्म के साथ ही एक ऐसी स्थिति में आ जाता है, जहाँ उसकी पहचान पारंपरिक द्विआधारी लैंगिक संरचना—पुरुष और स्त्री—के बीच कहीं खो जाती है। समाज की दृष्टि में वह "अलग" है, "असामान्य" है, और यही दृष्टिकोण उसके जीवन की सबसे बड़ी विडंबना बन जाता है। यह संकट केवल बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक भी होता है। एक ओर समाज उसे स्वीकार नहीं करता, दूसरी ओर वह स्वयं भी अपनी पहचान को लेकर संघर्ष करता है। बचपन से ही उसे यह एहसास दिलाया जाता है कि वह "सामान्य" नहीं है, जिससे उसके भीतर हीनता, असुरक्षा और आत्मसंशय की भावना जन्म लेती है। हिंदी उपन्यासों में यह अस्मिता संकट अत्यंत मार्मिक रूप से चित्रित हुआ है। पात्र बार-बार यह प्रश्न करते दिखाई देते हैं कि क्या केवल शारीरिक भिन्नता के आधार पर उनकी मानवता को नकारा जा सकता है? यह प्रश्न पाठक को भी आत्मचिंतन के लिए बाध्य करता है।

अतः अस्मिता का संकट केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक और दार्शनिक समस्या भी है, जिसे किन्नर विमर्श गहराई से उजागर करता है।

2. सामाजिक बहिष्कार (Social Exclusion)

किन्नर समुदाय के जीवन का सबसे कठोर और यथार्थ पक्ष है—सामाजिक बहिष्कार। यह बहिष्कार जन्म से प्रारंभ होकर जीवन भर उनका पीछा करता है । अक्सर देखा जाता है कि जैसे ही किसी परिवार को यह ज्ञात होता है कि उनका बच्चा किन्नर है, वे उसे स्वीकार करने के बजाय त्याग देते हैं। यह त्याग केवल शारीरिक अलगाव नहीं होता, बल्कि भावनात्मक और मानसिक स्तर पर भी एक गहरा आघात होता है। समाज में किन्नरों को सम्मानजनक स्थान नहीं दिया जाता। उन्हें उपहास, तिरस्कार और भय की दृष्टि से देखा जाता है। सार्वजनिक स्थानों पर उनका मजाक उड़ाया जाता है, उन्हें अपमानित किया जाता है और उनकी उपस्थिति को असुविधाजनक माना जाता है। यह बहिष्कार शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और सामाजिक संबंधों तक फैला हुआ है। उन्हें विद्यालयों में प्रवेश नहीं मिलता, नौकरी के अवसर सीमित होते हैं और सामान्य सामाजिक जीवन जीने का अधिकार भी उनसे छीन लिया जाता है। हिंदी उपन्यासों में इस बहिष्कार को अत्यंत यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है, जहाँ किन्नर पात्र अपने ही समाज में "अजनबी" बनकर रह जाते हैं।

इस प्रकार सामाजिक बहिष्कार किन्नर जीवन की वह त्रासदी है, जो उन्हें मुख्यधारा से अलग कर देती है और उन्हें एक सीमित, संघर्षपूर्ण जीवन जीने के लिए विवश करती है।

3. भावनात्मक अकेलापन (Emotional Isolation)

किन्नर जीवन का एक अत्यंत संवेदनशील और कम चर्चित पक्ष है—भावनात्मक अकेलापन। मानव एक सामाजिक प्राणी है और उसे प्रेम, अपनापन, संबंध और भावनात्मक सहारे की आवश्यकता होती है। किंतु किन्नर समुदाय को इन मूलभूत मानवीय अनुभवों से भी वंचित कर दिया जाता है। परिवार से अलग होने के कारण उन्हें बचपन में ही स्नेह और सुरक्षा का अभाव झेलना पड़ता है। आगे चलकर समाज भी उन्हें अपनाने से कतराता है, जिससे उनके जीवन में एक गहरा खालीपन उत्पन्न हो जाता है। वे प्रेम करना चाहते हैं, संबंध बनाना चाहते हैं, एक सामान्य जीवन जीना चाहते हैं, किंतु समाज उन्हें इस अधिकार से वंचित कर देता है। उनके भावनात्मक संबंधों को गंभीरता से नहीं लिया जाता और अक्सर उनका उपहास किया जाता है। हिंदी उपन्यासों में यह अकेलापन अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित हुआ है। पात्रों के भीतर का दर्द, उनकी संवेदनाएँ, उनका मौन—सब कुछ पाठक को भीतर तक झकझोर देता है। यह अकेलापन केवल बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक भी है—एक ऐसा शून्य, जिसे भरना लगभग असंभव प्रतीत होता है।

4. संघर्ष और प्रतिरोध (Struggle and Resistance)

जहाँ एक ओर किन्नर जीवन पीड़ा, बहिष्कार और अकेलेपन से भरा है, वहीं दूसरी ओर इसमें संघर्ष और प्रतिरोध की एक सशक्त धारा भी दिखाई देती है। आधुनिक हिंदी उपन्यासों में किन्नर पात्र केवल पीड़ित या दयनीय नहीं हैं, बल्कि वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले, जागरूक और आत्मसम्मान से परिपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं।

वे समाज की रूढ़ियों, भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण और अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं। वे यह स्थापित करने का प्रयास करते हैं कि वे भी समान अधिकारों के अधिकारी हैं और उन्हें भी सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार है। यह प्रतिरोध केवल बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक भी है—अपने भीतर की हीनता, डर और असुरक्षा के विरुद्ध संघर्ष। किन्नर विमर्श के उपन्यासों में यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि जहाँ पहले किन्नर पात्र केवल सहानुभूति के पात्र थे, वहीं अब वे अपने अधिकारों के लिए लड़ने वाले सक्रिय पात्र बन गए हैं। यह संघर्ष और प्रतिरोध ही किन्नर विमर्श को एक सशक्त और जीवंत विमर्श बनाता है।

निष्कर्ष

किन्नर विमर्श हिंदी साहित्य का एक सशक्त और आवश्यक आयाम है। यह विमर्श केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि मानवीय और सामाजिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिंदी उपन्यासों ने किन्नर जीवन को जिस गहराई और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है, वह समाज को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करता है। यह स्पष्ट है कि जब तक समाज अपने सभी वर्गों को समान दृष्टि से नहीं देखेगा, तब तक वास्तविक प्रगति संभव नहीं है। किन्नर विमर्श इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

उपरोक्त सभी विषय—अस्मिता का संकट, सामाजिक बहिष्कार, भावनात्मक अकेलापन और संघर्ष—किन्नर जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते हैं। ये केवल साहित्यिक विषय नहीं हैं, बल्कि वास्तविक जीवन की गहरी सच्चाइयाँ हैं । हिंदी उपन्यासों ने इन विषयों को जिस संवेदनशीलता और गहराई से प्रस्तुत किया है, वह न केवल पाठक को भावनात्मक रूप से प्रभावित करता है, बल्कि उसे सामाजिक दृष्टि से जागरूक भी बनाता है।

इस प्रकार किन्नर विमर्श इन विषयों के माध्यम से न केवल एक वर्ग की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है, बल्कि समाज को अधिक मानवीय, समावेशी और संवेदनशील बनाने की दिशा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संदर्भ

1. Butler, Judith. *Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity*. Routledge, 1990.
2. भीष्म, महेन्द्र. *मैं पायल*. वाणी प्रकाशन, 2016.
3. माधव, नीरजा. *यमदीप*. राजकमल प्रकाशन, 2009.
4. मुद्गल, चित्रा. *पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा*. सामयिक प्रकाशन, 2016.
5. सौरभ, प्रदीप. *तीसरी ताली*. वाणी प्रकाशन, 2011.

Received: 08.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. नीलिमा नागर*

neelimaaman02@gmail.com

सार (Abstract)

प्रस्तुत शोध-पत्र भारत में साम्प्रदायिकता की जटिल और बहुआयामी समस्या का गहन समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारत एक बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है, जहाँ विविधता के मध्य साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सद्भावना के लिए निरंतर चुनौती बनी रही है।

बिपन चंद्रा (1984) के अनुसार साम्प्रदायिकता एक आधुनिक राजनीतिक विचारधारा है।ज्ञानेंद्र ज्ञानेंद्र पांडे (1990) ने प्रमाणित किया कि औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश "फूट डालो और राज करो" नीति ने साम्प्रदायिक विभाजन को सुनियोजित ढंग से पोषित किया। पॉल आर. ब्रास (2003) के अनुसार सांप्रदायिक हिंसा प्रायः सुनियोजित राजनीतिक तंत्र का परिणाम होती है। आशुतोष वार्ष्णेय (2002) ने स्थापित किया कि सशक्त नागरिक समाज सांप्रदायिक हिंसा को नियंत्रित करने में निर्णायक भूमिका निभाता है। सच्चर समिति(2006) ने अल्पसंख्यक समुदायों की दयनीय सामाजिक-आर्थिक स्थिति को साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण का प्रमुख कारण बताया। सहाना उदुपा (2019) के अनुसार सोशल मीडिया साम्प्रदायिक घृणा के प्रसार का नया और खतरनाक माध्यम बन गया है।

शोध के निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि साम्प्रदायिकता ऐतिहासिक, राजनीतिक और आर्थिक कारकों की जटिल परस्पर-क्रिया का परिणाम है। इसके समाधान हेतु नीतिगत सुधार, शैक्षणिक पहल, आर्थिक समावेश और डिजिटल नियमन आवश्यक हैं।

मुख्य शब्द:

साम्प्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता, सांप्रदायिक हिंसा, नागरिक समाज, सामाजिक सद्भावना, बहुलवाद।

प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक बहुधार्मिक, बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है, जहाँ सहस्राब्दियों से विभिन्न धर्मों, संप्रदायों और जातियों के लोग सहअस्तित्व की परंपरा के साथ जीवन यापन करते आए हैं। भारतीय सभ्यता की यह विविधता उसकी सबसे बड़ी शक्ति रही है। किंतु इसी विविधता के बीच साम्प्रदायिकता एक ऐसी विकृति के रूप में उभरी है, जो न केवल सामाजिक सद्भावना को खंडित करती है, बल्कि राष्ट्रीय एकता और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए भी एक गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती है।

साम्प्रदायिकता को सामान्यतः उस विचारधारा के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसमें किसी धार्मिक समुदाय के हित को अन्य समुदायों के हितों से श्रेष्ठ और विरोधी माना जाता है। बिपन चंद्रा (1984) के अनुसार, "साम्प्रदायिकता वह विश्वास है जिसमें एक धार्मिक समुदाय के लोगों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हित परस्पर समान होते हैं और अन्य धार्मिक समुदायों के हितों से स्वाभाविक रूप से भिन्न, यहाँ तक कि विरोधी होते हैं।" यह परिभाषा स्पष्ट करती है कि साम्प्रदायिकता केवल धार्मिक कट्टरता नहीं है, बल्कि यह एक राजनीतिक और सामाजिक विचारधारा है जो धर्म को राजनीतिक हथियार के रूप में उपयोग करती है।

---

* **एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, उन्नाव**

भारत में साम्प्रदायिकता की जड़ें ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत गहरी हैं। ज्ञानेंद्र ज्ञानेंद्र पांडे (1990) ने अपने महत्वपूर्ण अध्ययन में प्रमाणित किया कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने "फूट डालो और राज करो" की नीति के अंतर्गत हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच कृत्रिम विभाजन को सुनियोजित ढंग से पोषित किया। 1909 के मॉर्ले-मिंटो सुधारों के माध्यम से साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों की स्थापना और 1947 के विभाजन की त्रासदी — ये दोनों घटनाएँ भारतीय समाज में साम्प्रदायिक चेतना को स्थायी रूप से स्थापित करने में निर्णायक रहीं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान ने धर्मनिरपेक्षता को एक मौलिक सिद्धांत के रूप में अंगीकार किया गया। राजीव भार्गव (1998) के अनुसार, भारतीय धर्मनिरपेक्षता पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता से भिन्न है — यह राज्य का सभी धर्मों के प्रति "सौहार्द" का आदर्श प्रस्तुत करती है। किंतु व्यवहार में यह आदर्श प्रायः राजनीतिक स्वार्थों की बलिवेदी पर बलिदान होता रहा है। स्वतंत्रोत्तर भारत में साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाएँ समय-समय पर देश को झकझोरती रही हैं। 1984 के सिख विरोधी दंगे, 1992 के बाबरी मस्जिद विध्वंस के पश्चात् हुई हिंसा, 2002 के गुजरात दंगे और 2020 के दिल्ली दंगे — ये सभी घटनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि साम्प्रदायिकता भारतीय लोकतंत्र के समक्ष एक सतत और जीवंत चुनौती बनी हुई है। पॉल आर. ब्रास (2003) ने इन घटनाओं का गहन विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि सांप्रदायिक हिंसा प्रायः स्वतःस्फूर्त नहीं होती, बल्कि इसके पीछे सुनियोजित राजनीतिक तंत्र कार्य करता है।

स्टीवन आई. स्टीवन आई. विल्किंसन (2004) ने सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर यह प्रमाणित किया कि चुनावी प्रतिस्पर्धा और सांप्रदायिक हिंसा के बीच सीधा और सुस्पष्ट संबंध है। आशुतोष वार्ष्णेय (2002) ने यह स्थापित किया कि जहाँ अंतर-धार्मिक नागरिक समाज सशक्त है, वहाँ सांप्रदायिक हिंसा को नियंत्रित किया जा सकता है। असग़र अली इंजीनियर (1995) ने साम्प्रदायिकता के आर्थिक आयामों को उजागर करते हुए बताया कि संसाधनों की असमान वितरण और आर्थिक वंचना धार्मिक तनाव को और अधिक गहरा करती है। डिजिटल युग में साम्प्रदायिकता ने एक नया और अत्यंत खतरनाक रूप धारण किया है। सहाना उदुपा (2019) के शोध के अनुसार, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म — विशेषतः व्हाट्सऐप, फेसबुक और ट्विटर — साम्प्रदायिक घृणा, अफवाहों और भड़काऊ सामग्री के प्रसार के शक्तिशाली माध्यम बन गए हैं, जो सांप्रदायिक हिंसा को और अधिक तीव्र और व्यापक बना रहे हैं।

सच्चर समिति (2006) की रिपोर्ट ने यह उजागर किया कि अल्पसंख्यक समुदायों — विशेषतः मुस्लिम समुदाय — की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति अत्यंत दयनीय है, जो उनमें असुरक्षा की भावना को गहरा करती है और साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा देती है।

शोध की आवश्यकता एवं महत्त्व

प्रस्तुत शोध-पत्र इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि साम्प्रदायिकता की समस्या भारतीय समाज में आज भी उतनी ही प्रासंगिक और जटिल है, जितनी स्वतंत्रता संग्राम के समय थी। इस शोध का उद्देश्य साम्प्रदायिकता के विभिन्न आयामों — ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक — का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है, ताकि इस जटिल समस्या की गहरी समझ विकसित की जा सके और प्रभावी समाधान के सुझाव प्रस्तुत किए जा सकें।

शोध के उद्देश्य

इस शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. भारत में साम्प्रदायिकता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विकास-क्रम का विश्लेषण करना।
2. साम्प्रदायिकता के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों की पहचान करना।
3. साम्प्रदायिक हिंसा के सामाजिक प्रभावों और परिणामों का मूल्यांकन करना।
4. साम्प्रदायिकता की रोकथाम और सामाजिक सद्भावना के संवर्धन हेतु नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध प्रविधि (Research Methodology)

यह शोध गुणात्मक (Qualitative) प्रकृति का है। जॉन डब्ल्यू. क्रेसवेल (2014) के अनुसार, सामाजिक घटनाओं की गहन व्याख्या के लिए गुणात्मक पद्धति सर्वाधिक उपयुक्त होती है। डेटा संग्रह हेतु निम्न द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया

गया है: अकादमिक पुस्तकें, शोध पत्र एवं जर्नल, NCRB और गृह मंत्रालय की रिपोर्टें, न्यायिक आयोगों की जाँच रिपोर्टें, थिंक टैंक एवं मानवाधिकार संगठनों के दस्तावेज़

शोध की सीमाएँ

यह शोध-पत्र मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों — पुस्तकों, शोध-पत्रिकाओं, सरकारी प्रतिवेदनों और समिति रिपोर्टों — पर आधारित है। जॉन डब्ल्यू. क्रेसवेल (2014) के अनुसार, द्वितीयक स्रोत आधारित शोध में प्राथमिक डेटा संग्रह की सीमाएँ होती हैं, जिन्हें भविष्य के क्षेत्रीय अध्ययनों द्वारा पूरा किया जा सकता है। यह शोध मुख्यतः हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिक संबंधों पर केंद्रित है, यद्यपि भारत में अन्य धार्मिक समुदायों के बीच भी तनाव की घटनाएँ होती रही हैं।

साहित्य समीक्षा (Literature Review)

साम्प्रदायिकता की अवधारणा को समझने के लिए विद्वानों ने विभिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। बिपन चंद्रा (1984) ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक Communalism in Modern India में साम्प्रदायिकता को तीन क्रमिक स्तरों में विभाजित किया है — उदार साम्प्रदायिकता (Liberal Communalism), जो यह मानती है कि एक धर्म के अनुयायियों के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक हित समान होते हैं; मध्यमार्गी साम्प्रदायिकता (Moderate Communalism), जो विभिन्न धार्मिक समूहों के हितों को परस्पर भिन्न मानती है; और अतिवादी साम्प्रदायिकता (Extreme Communalism), जो इन हितों को मौलिक रूप से विरोधी और असंगत घोषित करती है। उनके अनुसार, यह विचारधारा भारतीय समाज की कोई परंपरागत देन नहीं, बल्कि आधुनिक राजनीतिक चेतना और औपनिवेशिक परिस्थितियों की उपज है।

ज्ञानेंद्र पांडे (1990) ने अपनी पुस्तक The Construction of Communalism in Colonial North India में यह तर्क रखा कि साम्प्रदायिकता कोई स्वतःस्फूर्त सामाजिक घटना नहीं है, बल्कि यह औपनिवेशिक ज्ञान-तंत्र द्वारा निर्मित (constructed) एक विचारधारा है। ब्रिटिश प्रशासन ने भारतीय इतिहास और समाज को जानबूझकर धार्मिक श्रेणियों में विभाजित करके प्रस्तुत किया, जिसने हिंदू-मुस्लिम संबंधों को एक स्थायी संघर्ष के रूप में परिभाषित किया। उनके इस विश्लेषण ने साम्प्रदायिकता के अध्ययन में एक नई वैचारिक दिशा प्रदान की।

पॉल आर. ब्रास (2003) ने The Production of Hindu-Muslim Violence in Contemporary India में साम्प्रदायिक हिंसा को एक संस्थागत प्रक्रिया (institutionalized process) के रूप में परिभाषित किया। उनके अनुसार हिंसा अचानक नहीं होती, बल्कि इसे राजनीतिक अभिनेताओं, स्थानीय नेताओं और अपराधी तत्वों के सुनियोजित सहयोग से उत्पादित किया जाता है। उन्होंने "institutionalized riot systems" की अवधारणा प्रस्तुत की, जो यह बताती है कि कुछ शहरों में हिंसा के लिए तैयार नेटवर्क सदैव सक्रिय रहते हैं।

औपनिवेशिक काल और साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति के संदर्भ में बिपन चंद्रा (1984) का यह मत अत्यंत महत्वपूर्ण है कि 1909 के मार्ले-मिंटो सुधारों और 1919 के मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों में साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था ने धार्मिक पहचान को राजनीतिक अस्त्र बना दिया। इसने पहली बार भारतीयों को "हिंदू मतदाता" और "मुस्लिम मतदाता" के रूप में परिभाषित किया, जो आगे चलकर 1947 के विभाजन की नींव बनी।

ज्ञानेंद्र पांडे (1990) ने यह भी प्रतिपादित किया कि ब्रिटिश इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को मुख्यतः हिंदू-मुस्लिम संघर्ष के रूप में लिखा, जिसने आने वाली पीढ़ियों की सामूहिक स्मृति (collective memory) को गहराई से प्रभावित किया। Metcalf & Metcalf (2006) के अनुसार, 1857 के विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश नीति ने हिंदू और मुस्लिम अभिजात वर्गों के बीच प्रतिस्पर्धा को जानबूझकर प्रोत्साहित किया।

स्टीवन आई. स्टीवन आई. विल्किंसन (2004) ने Votes and Violence: Electoral Competition and Ethnic Riots in India में एक अत्यंत महत्वपूर्ण तर्क प्रस्तुत किया — कि चुनावी प्रतिस्पर्धा और सांप्रदायिक हिंसा के बीच एक सांख्यिकीय सह-संबंध (statistical correlation) विद्यमान है। उन्होंने 1950 से 1995 के बीच के आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर यह सिद्ध किया कि राज्य सरकारें जब अल्पसंख्यक मतदाताओं पर निर्भर नहीं होतीं, तब वे हिंसा को रोकने में कम रुचि दिखाती हैं। इस प्रकार, सांप्रदायिक हिंसा को नियंत्रित या प्रोत्साहित करना भी एक राजनीतिक निर्णय है।

पॉल आर. ब्रास (2003) के "institutionalized riot system" की अवधारणा इस संदर्भ में और अधिक प्रासंगिक हो जाती है — उनके अनुसार कुछ नगरों में दंगों के लिए तैयार स्थानीय नेता, पुलिस अधिकारी और अपराधी समूह मिलकर एक स्थायी तंत्र बनाते हैं, जिसे राजनीतिक हित के अनुसार सक्रिय किया जा सकता है।

असग़र अली इंजीनियर (1995) ने Communalism in India: A Historical and Empirical Study में बताया कि राजनीतिक दलों ने साम्प्रदायिक पहचान को "वोट बैंक" के रूप में प्रयोग करके लोकतांत्रिक प्रक्रिया को ही विकृत कर दिया है। उनके अनुसार, यह केवल एक दल की समस्या नहीं है, बल्कि लगभग सभी प्रमुख राजनीतिक दल अपने-अपने समुदायों को लामबंद करने के लिए साम्प्रदायिक भावनाओं का उपयोग करते हैं।

आशुतोष वार्ष्णेय (2002) की पुस्तक Ethnic Conflict and Civic Life: Hindus and Muslims in India भारत में सांप्रदायिक हिंसा के अध्ययन में एक मील का पत्थर मानी जाती है। उन्होंने छह भारतीय शहरों — अलीगढ़, हैदराबाद, मेरठ, लखनऊ, कालीकट और सूरत — का तुलनात्मक अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि अंतर-सामुदायिक नागरिक जुड़ाव (inter-communal civic engagement) जहाँ मजबूत होता है, वहाँ सांप्रदायिक हिंसा कम होती है। उनके अनुसार, व्यापारिक संघ, श्रमिक संगठन और सामाजिक क्लब जैसी संस्थाएँ जब हिंदू-मुस्लिम दोनों समुदायों को एकत्रित करती हैं, तो वे दंगों के विरुद्ध एक प्राकृतिक सुरक्षा कवच का काम करती हैं।

आशीष नंदी (1990) ने एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहा कि भारतीय परंपरा में धार्मिक सहिष्णुता की एक गहरी जड़ रही है। उनके अनुसार, आधुनिकीकरण और पश्चिमी राष्ट्र-राज्य की अवधारणा ने इस पारंपरिक सह-अस्तित्व को नष्ट किया और एक कठोर, एकरेखीय धार्मिक पहचान को बढ़ावा दिया। वे धर्मनिरपेक्षता को भारतीय परंपराओं से जोड़ने की वकालत करते हैं, न कि पश्चिमी मॉडल के अनुसरण की।

राजीव भार्गव (1998) ने Secularism and its Critics में भारतीय धर्मनिरपेक्षता को "principled distance" की अवधारणा के रूप में परिभाषित किया — अर्थात् राज्य किसी भी धर्म का न तो पक्ष लेता है और न ही विरोध करता है, बल्कि सभी धर्मों से एक समान न्यायसंगत दूरी बनाए रखता है। यह पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता के "separation of church and state" मॉडल से भिन्न और अधिक समावेशी अवधारणा है।

विश्लेषण (Analysis)

साम्प्रदायिकता कोई एकाकी या अचानक उत्पन्न होने वाली घटना नहीं है, बल्कि यह ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों के जटिल अंतर्संबंध का परिणाम है। बिपन चंद्रा (1984) के अनुसार, साम्प्रदायिकता को समझने के लिए उसकी बहुस्तरीय जड़ों की पड़ताल अनिवार्य है।

क) ऐतिहासिक कारण : भारत में साम्प्रदायिकता की ऐतिहासिक जड़ें मुख्यतः ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन काल में खोजी जा सकती हैं।ज्ञानेंद्र ज्ञानेंद्र पांडे (1990) ने अपने महत्वपूर्ण अध्ययन में प्रमाणित किया कि ब्रिटिश शासकों ने "फूट डालो और राज करो" की नीति के तहत हिंदुओं और मुसलमानों के बीच कृत्रिम विभाजन को सुनियोजित ढंग से पोषित किया। 1909 के मॉर्ले-मिंटो सुधारों के अंतर्गत साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों की स्थापना ने धार्मिक पहचान को एक स्थायी राजनीतिक श्रेणी बना दिया, जिसने भारतीय राजनीति में धर्म और राजनीति के खतरनाक सम्मिश्रण की नींव रखी।

बिपन चंद्रा (1984) ने यह भी स्पष्ट किया कि औपनिवेशिक इतिहास-लेखन ने भारतीय इतिहास को हिंदू काल, मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल में विभाजित कर एक सांप्रदायिक ऐतिहासिक चेतना का निर्माण किया, जिसने आम जन-मानस में यह धारणा गहरी की कि इस्लामी शासन हिंदुओं के लिए उत्पीड़न का काल था। इस औपनिवेशिक इतिहास-लेखन का दुष्परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्रता के पश्चात् भी दोनों समुदायों के मध्य ऐतिहासिक कटुता बनी रही।

1947 का भारत-विभाजन इस ऐतिहासिक प्रक्रिया की सबसे भयावह परिणति था। पॉल आर. ब्रास (2003) के अनुसार, विभाजन के दौरान हुई हिंसा ने दोनों समुदायों की सामूहिक स्मृति में ऐसे गहरे घाव छोड़े, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते रहे और जो आज भी साम्प्रदायिक तनाव को भड़काने में सहायक सिद्ध होते हैं।

ख) राजनीतिक कारण : पॉल आर. ब्रास (2003) ने अपने विस्तृत शोध में यह सिद्ध किया कि भारत में सांप्रदायिक हिंसा स्वतःस्फूर्त नहीं होती, बल्कि यह सुनियोजित राजनीतिक उत्पादन का परिणाम होती है। उन्होंने "Institutionalized Riot

System" (IRS) की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसके अंतर्गत स्थानीय राजनीतिक नेता, अपराधी तत्व और पुलिस मिलकर सांप्रदायिक दंगों को नियंत्रित और संचालित करते हैं।

स्टीवन आई. स्टीवन आई. विल्किंसन (2004) ने सांख्यिकीय विश्लेषण के माध्यम से प्रमाणित किया कि चुनावी प्रतिस्पर्धा और सांप्रदायिक हिंसा के बीच सीधा संबंध है — जहाँ राजनीतिक प्रतिस्पर्धा तीव्र होती है, वहाँ सांप्रदायिक दंगों की आवृत्ति अधिक होती है। राजनीतिक दल अल्पसंख्यक समुदायों को "वोट बैंक" और बहुसंख्यक समुदाय को "एकजुट" करने के लिए साम्प्रदायिकता का उपकरण के रूप में उपयोग करते हैं।

असग़र अली इंजीनियर (1995) ने यह भी रेखांकित किया कि राज्य तंत्र की निष्पक्षता का अभाव साम्प्रदायिकता को पोषित करता है — पुलिस और प्रशासन का पक्षपातपूर्ण व्यवहार पीड़ित समुदाय में न्यायपालिका और राज्य के प्रति गहरा अविश्वास उत्पन्न करता है, जो दीर्घकालिक साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा देता है।

ग) आर्थिक कारण : साम्प्रदायिकता के आर्थिक आधारों का विश्लेषण करते हुए असग़र अली इंजीनियर (1995) ने बताया कि संसाधनों की सीमितता और आर्थिक प्रतिस्पर्धा धार्मिक समूहों के बीच तनाव को जन्म देती है। जब रोजगार, व्यापार और सरकारी सुविधाओं के लिए प्रतिस्पर्धा तीव्र होती है, तो यह प्रतिस्पर्धा धार्मिक रंग ग्रहण कर लेती है।

सच्चर समिति रिपोर्ट (2006) ने यह उजागर किया कि मुस्लिम समुदाय की सामाजिक-आर्थिक स्थिति अनुसूचित जातियों से भी बदतर है — शिक्षा, सरकारी नौकरी और बैंक ऋण तक उनकी पहुँच अत्यंत सीमित है। यह आर्थिक वंचना एक ओर अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना उत्पन्न करती है, तो दूसरी ओर बहुसंख्यक समुदाय के एक वर्ग में यह धारणा बनती है कि अल्पसंख्यकों को अनुचित विशेषाधिकार प्राप्त हैं — यह दोहरी मानसिकता साम्प्रदायिक तनाव का उपजाऊ वातावरण तैयार करती है।

आशुतोष वार्ष्णेय (2002) के अनुसार, नगरीय क्षेत्रों में आर्थिक असमानता अधिक स्पष्ट होने के कारण वहाँ सांप्रदायिक हिंसा की घटनाएँ ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक होती हैं।

घ) सामाजिक कारण :

आशुतोष वार्ष्णेय (2002) ने अपने तुलनात्मक अध्ययन में यह स्थापित किया कि नागरिक समाज की कमज़ोरी साम्प्रदायिक हिंसा का एक प्रमुख सामाजिक कारण है। जहाँ हिंदू और मुस्लिम नागरिक संगठन, व्यापार संघ, और स्वयंसेवी संस्थाएँ मिलकर कार्य करती हैं, वहाँ सांप्रदायिक तनाव का प्रभाव न्यूनतम रहता है — जैसे लखनऊ और कालीकट — जबकि कमज़ोर नागरिक समाज वाले शहरों जैसे अलीगढ़ और हैदराबाद में सांप्रदायिक हिंसा अधिक होती है।

आशीष नंदी (1990) ने सामाजिक स्तर पर यह भी रेखांकित किया कि पारंपरिक सामाजिक बंधनों का क्षरण साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देता है। ग्रामीण और पारंपरिक भारत में जो अनौपचारिक अंतर-धार्मिक सहकारिता — त्योहारों का साझा उत्सव, पेशेवर निर्भरता, वैवाहिक संबंधों का सामाजिक नेटवर्क — विद्यमान थी, वह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में कमज़ोर हुई है।

ङ) सांस्कृतिक एवं वैचारिक कारण :

आशीष नंदी (1990) के अनुसार, धर्म का राजनीतिकरण सांस्कृतिक स्तर पर साम्प्रदायिकता का सबसे महत्वपूर्ण कारण है। जब धर्म एक व्यक्तिगत आस्था के स्थान पर सामूहिक राजनीतिक पहचान बन जाता है, तब वह अपने मूल नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों से विच्युत हो जाता है।

सहाना उदुपा (2019) ने डिजिटल युग में सोशल मीडिया की भूमिका का विश्लेषण करते हुए बताया कि फर्जी खबरें, भड़काऊ वीडियो और घृणास्पद भाषण का तेज़ प्रसार सांप्रदायिक हिंसा को भड़काने में नई और अत्यंत खतरनाक भूमिका निभा रहा है। वाट्सऐप और फेसबुक जैसे प्लेटफॉर्म पर प्रसारित अफवाहों से 2018 में झारखंड और 2020 में दिल्ली दंगों को और अधिक हवा मिली।

राजीव भार्गव (1998) के अनुसार, धर्मनिरपेक्षता के प्रति राजनीतिक अस्पष्टता भी एक वैचारिक कारण है — जब राज्य धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को दृढ़ता से लागू करने में विफल होता है, तो धार्मिक कट्टरपंथी तत्वों को सार्वजनिक विमर्श में अपना स्थान बनाने का अवसर मिलता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता कोई सहज या स्वाभाविक घटना नहीं है, बल्कि यह ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों की जटिल परस्पर-क्रिया का परिणाम है। बिपन चंद्रा (1984) के शब्दों में, "साम्प्रदायिकता एक आधुनिक विचारधारा है, न कि भारतीय सभ्यता की अपरिहार्य नियति।" यह निष्कर्ष इस बात की पुष्टि करता है कि जो समस्या मानव-निर्मित है, वह मानवीय प्रयासों से सुलझाई भी जा सकती है।

ज्ञानेंद्र पांडे (1990) के शोध ने यह प्रमाणित किया कि औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश शासकों द्वारा सुनियोजित ढंग से पोषित धार्मिक विभाजन आज भी भारतीय राजनीतिक और सामाजिक जीवन पर गहरी छाया डाल रहा है। पॉल आर. ब्रास (2003) ने यह स्थापित किया कि सांप्रदायिक हिंसा प्रायः स्वतःस्फूर्त नहीं होती, बल्कि इसके पीछे "Institutionalized Riot System" कार्य करता है, जो राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए धर्म का उपकरण के रूप में उपयोग करता है।

आशुतोष वार्ष्णेय (2002) के तुलनात्मक अध्ययन से यह आशावादी निष्कर्ष उभरता है कि जहाँ सशक्त अंतर-धार्मिक नागरिक समाज विद्यमान है, वहाँ सांप्रदायिक हिंसा को नियंत्रित किया जा सकता है। सच्चर समिति(2006) की रिपोर्ट यह रेखांकित करती है कि अल्पसंख्यकों की आर्थिक-सामाजिक वंचना को दूर किए बिना साम्प्रदायिक सद्भाव की कल्पना अधूरी है। स्टीवन आई. स्टीवन आई. विल्किंसन (2004) ने यह सिद्ध किया कि राज्य की राजनीतिक इच्छाशक्ति — न कि केवल कानूनी प्रावधान — सांप्रदायिक हिंसा को रोकने में निर्णायक भूमिका निभाती है। सहाना उदुपा (2019) ने डिजिटल युग में सोशल मीडिया के माध्यम से फैलने वाली नफरत और अफवाहों को साम्प्रदायिकता के एक नए और अत्यंत खतरनाक आयाम के रूप में चिह्नित किया है। राजीव भार्गव (1998) की "Principled Distance" की अवधारणा यह बताती है कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता का आदर्श — राज्य का सभी धर्मों से समान दूरी — ही साम्प्रदायिकता के विरुद्ध सबसे प्रभावी वैचारिक ढाल है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि भारत की विविधता में एकता की परंपरा साम्प्रदायिकता से कहीं अधिक गहरी और पुरानी है। सूफी-संत परंपरा, भक्ति आंदोलन और गांधीवादी सद्भावना की विरासत यह प्रमाणित करती है कि सहअस्तित्व भारत की मूल प्रकृति है — साम्प्रदायिकता उससे एक विचलन मात्र है।

संदर्भ :

इंजीनियर, असग़र अली (1995). *भारत में साम्प्रदायिकता: एक ऐतिहासिक और अनुभवजन्य अध्ययन*. विकास पब्लिशिंग हाउस.

सहाना उदुपा, सहाना (2019). डिजिटल युग में राष्ट्रवाद. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कम्युनिकेशन*, *13*, 3143–3163.

क्रेसवेल, जॉन डब्ल्यू. (2014). *शोध अभिकल्पना: गुणात्मक, मात्रात्मक और मिश्रित विधियाँ* (चौथा संस्करण). सेज पब्लिकेशन्स.

गृह मंत्रालय, भारत सरकार (2022). *वार्षिक प्रतिवेदन 2021–22*. भारत सरकार. https://mha.gov.in

चंद्रा , बिपन (1984). *आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता*. विकास पब्लिशिंग हाउस.

नंदी, आशीष (1990). धर्मनिरपेक्षता की राजनीति और धार्मिक सहिष्णुता की पुनर्प्राप्ति. दास, वीणा (सं.), *हिंसा के दर्पण* (पृ. 69–93). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

पांडे, ज्ञानेंद्र (1990). *औपनिवेशिक उत्तर भारत में साम्प्रदायिकता का निर्माण*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

ब्रास, पॉल आर. (2003). *समकालीन भारत में हिंदू-मुस्लिम हिंसा का उत्पादन*. यूनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन प्रेस.

भार्गव, राजीव (सं.). (1998). *धर्मनिरपेक्षता और उसके आलोचक*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

वार्ष्णेय, आशुतोष (2002). *जातीय संघर्ष और नागरिक जीवन: भारत में हिंदू और मुसलमान*. येल यूनिवर्सिटी प्रेस.

विल्किंसन, स्टीवन आई. (2004). *मत और हिंसा: भारत में चुनावी प्रतिस्पर्धा और जातीय दंगे*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

सच्चर समिति (2006). *भारत में मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति*. भारत सरकार. https://minorityaffairs.gov.in

Received: 08.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

निर्गुण संत कविता का लोक अभिग्रहण

संजय साव*

shawsanjay16396@gmail.com

"संत और भक्त कवियों का साहित्य लोकचेतना और लोक भावना का साहित्य है।"

-मैनेजर पांडेय (भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ. 272.)

शोध सारांश

संत काव्य हिन्दी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण धारा है, जिसका अपना ऐतिहासिक और साहित्य महत्व है और जिसका गहरा संबंध लोकजीवन और जनमानस से रहा है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य इस बात की तलाश है कि निर्गुण संत कविता का लोकाभिग्रहण किन-किन आधारों पर हुआ तथा सामान्य जनता ने इसे किस प्रकार आत्मसात किया। सामान्य जनता पर इसका क्या प्रभाव पड़ा है। इस संदर्भ में संत कवियों की वाणी का विशेष रूप से अध्ययन किया गया है। यह शोध मुख्यतः विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें प्राथमिक स्रोतों के रूप में संत साहित्य के प्रतिनिधि कवियों की कविता तथा द्वितीयक स्रोतों के रूप में आलोचनात्मक ग्रंथों का सहारा लिया गया है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि निर्गुण संत कविता की सरल, सहज और लोकभाषा में अभिव्यक्ति, उसके लोकाभिग्रहण का प्रमुख कारण रही है। साथ ही, सामाजिक समता, आत्मगौरव, लोकतान्त्रिक चेतना, कर्मकांड-विरोधी दृष्टि और सामाजिक प्रासंगिकता ने इसे जनसामान्य के बीच अत्यंत लोकप्रिय बनाया। इस प्रकार निर्गुण संत कविता केवल आध्यात्मिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि लोकचेतना का सशक्त माध्यम है, जिसे जनता ने भजन, लोकगीत आदि मौखिक परंपरा के रूप में अपनाया। इस प्रकार यह साहित्य लोकजीवन में रच-बसकर एक जीवंत सांस्कृतिक परंपरा का रूप ग्रहण कर चुका है।

बीज शब्द –

निर्गुण संत कविता, लोक, लोक अभिग्रहण, लोक संपृक्ति, लोकजीवन, लोक संस्कृति, लोकसाहित्य, लोकगीत, लोकभाषा, देशभाषा, लोकमंगल, लोकायत, समता, समानता, निर्गुण गीत, उप-रचना आदि।

प्रस्तावना :

लोक के परिपेक्ष्य में देखा जाए तो सम्पूर्ण भक्ति काल का अपना विशिष्ट ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यक महत्व रहा है। हिन्दी साहित्य का यह काल खंड लोकचेतना से ओतप्रोत, लोक के लिए एवं लोक का साहित्य है। जो अपनी भाषा, भाव और अभिव्यक्ति में लोकसाहित्य के बहुत निकट है। संभवतः इसी लिए भक्ति साहित्य की लोक संपृक्ति और लोक स्वीकृति अन्य साहित्यिक धाराओं की अपेक्षा अधिक दिखाई पड़ती है। राहुल सांकृत्यायन ने 'भक्तिकाल की अधिकांश रचनाओं को लोकसाहित्य में अंतर्भुक्त' माना है। इसी संदर्भ में यहाँ हम इस काल की उस प्रमुख साहित्यिक धारा 'संत काव्य', जो सीधे लोक के गर्भ से उत्पन्न हुई है, उसके लोक अभिग्रहण पर विचार करेंगे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस काव्य धारा की सम्पूर्ण रचनाओं को लोकसाहित्य ही कह दिया है। वह लिखते हैं कि – "इन मध्य युग के संतों का लिखा हुआ साहित्य - कई बार तो यह लिखा भी नहीं गया, कबीर ने तो 'मसि कागद' छुआ ही नहीं था- लोकसाहित्य कहा जा सकता है या नहीं ? क्यों कबीर की रचना लोकसाहित्य नहीं है? सच पूछा जाय तो कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर मध्ययुग के संपूर्ण देशी भाषा के साहित्य को लोकसाहित्य के अंतर्गत घसीटकर लाया जा सकता है।"[1] किसी भी साहित्य के महत्व का

* **शोधार्थी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (IGNOU), नई दिल्ली**

अवलोकन दो आधारों पर किया जा सकता है - पहला, वह साहित्य किस सीमा तक लोक को अपने में संपृक्त किए है और लोक पर उसका क्या प्रभाव पड़ रहा है; और दूसरा, लोक ने उसे कहा तक स्वीकृति प्रदान की है? चूँकि साहित्य लोक की ही पैदावार होती है, इसलिए उसके महत्व का अवलोकन भी लोक को ध्यान में रखकर करना अधिक सार्थक और तर्कसंगत होगा।

'निर्गुण संत कविता का लोक अभिग्रहण' पर विचार करने से पूर्व 'लोक अभिग्रहण' को समझने की आवश्यकता है। जैसा कि लोक अभिग्रहण ये दो शब्द हैं। जिसमें 'लोक' शब्द व्यापक अर्थ लिए हुए है। यह शब्द संस्कृत से हिन्दी में आया है। इसी से हिन्दी का 'लोग' शब्द बना है। जो यहाँ जन सामान्य के अर्थ में आया है न कि स्थान विशेष (इह लोक, परलोक या त्रिलोक) के अर्थ में। अंग्रेजी में इसके लिए 'folk' एवं जर्मन में 'volk' शब्द प्रचलित है। इस शब्द के प्रयोग की प्राचीनता का इतिहास काफी पुराना है, इसके प्रयोग के अतीत में झाँके तो हम पाते हैं कि भारत के प्राचीन वाङ्मय 'वेद'(विशेषतः ऋग्वेद) में पहले पहल इसका प्रयोग दिखता है। इस शब्द के इतिहास में न जाते हुए केवल इतना कहना ही उचित होगा कि 'लोक' ने अपने प्रथम प्रयोग से लेकर वर्तमान तक अपना अर्थ विस्तार किया है। 'लोक' की व्यापकता को परिभाषित करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि – " 'लोक' शब्द का अर्थ 'जन-पद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई यह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुयें आवश्यक होती है, उनको उत्पन्न करते हैं।"[2] इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि लोक वह श्रमजीवी वर्ग है जो अपने पसीने से समाज को सींचता है। जिससे समाज की गतिशीलता बनी रहती है। सामान्य शब्दों में कहा जाए तो 'लोक' का आशय सामान्य जन-जीवन, उसकी संस्कृति, परंपरा, आचार–विचार एवं उनके जीवनानुभवों से है। तो वहीं 'अभिग्रहण' का सीधा-सीधा अर्थ स्वीकार करने, ग्रहण करने एवं उसे अपनी जीवन में उतारने से है। चाहे वह विचार हो, साहित्य हो, कला आदि कुछ भी हो। इस प्रकार, लोक अभिग्रहण का सामान्य अर्थ है जन सामान्य (लोक) द्वारा स्वीकृति। अर्थात किसी साहित्य, संस्कृति, विचारधारा, कला आदि को स्वीकार करना, अपनाना और उसे अपने जीवन का हिस्सा बना लेना। इसी क्रम में निर्गुण संत कविता पर विचार किया जाए तो हम पाते हैं कि इसका संबंध हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) में प्रवाहित उस साहित्य धारा से है जो अपनी एक अलग पहचान रखता है, जिसे आज 'ज्ञानाश्रयी शाखा' या 'संत काव्यधारा' के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार 'निर्गुण संत कविता के लोकाभिग्रहण' से आशय जन सामान्य द्वारा इन निर्गुणिया संतों की वाणी की स्वीकृति से है। इस जन स्वीकृति का सबसे बड़ा कारण निर्गुण संत कवियों की वाणी का अनुभवजन्य होना, न कि शास्त्र-परिणित। जैसा कि हम द्विवेदी जी के 'लोक' संदर्भित परिभाषा में पाते हैं - 'वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।' इस आधार पर यहाँ दो महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होते हैं – पहला, निर्गुण संत कवियों की वाणी के व्यापक जन-स्वीकृति से सामान्य जनता पर उसका क्या प्रभाव पड़ा ? दूसरा, संत कवियों की वाणी को सामान्य जनता ने किस रूप में ग्रहण किया गया है? इस अध्ययन में इन प्रश्नों पर गहराई से विचार करते हुए उनका व्यापक एवं तर्कसंगत विश्लेषण किया जाएगा।

पहले प्रश्न पर विचार करते हुए हम पाते हैं कि यह साहित्य महज परंपरा से चले आ रहे दार्शनिक चिंतन एवं आध्यात्मिक साधना का साहित्य नहीं, बल्कि तत्कालीन सामाजिक – राजनीतिक परिस्थितियों की उपज भी है। जिसने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा कर्मकांडों के विरुद्ध 'लोकभाषा' में 'लोकमानस' को नई दृष्टि प्रदान की। चूंकि संत साहित्य लोक के गर्भ से जन्मा एवं उसकी गोद में पाला-बढ़ा साहित्य है, अतः लोक की गोद में पली-बढ़ी रचनाएँ सहजता, आत्मीयता और जीवन की वास्तविकता के निकट होती हैं। वह 'अनभै सांचा' की उपज होती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "अनभै सांचा अनुभव सत्य है और अनभय सत्य भी।"[3] अतः लोकजीवन के अनुभव से जनित इस साहित्य में सत्य को बिना डरे कहने का सामर्थ खूब दिखता है। लोकजीवन की उपज होने के कारण ही निर्गुण साहित्य, विशेषकर 'निर्गुण संत कविता' में लोक की सौंधी ख़ुशबू रची-बसी है। इसी का परिणाम है कि इस काव्यधार के कवियों में न तो आदिकालीन चरण-भाँटों की भाँति दरबारी संस्कृति का प्रभाव दिखाई पड़ता है और न ही इन्होंने संस्कृत के कवियों की भांति पांडित्य का प्रदर्शन किया है। इसीलिए उनकी वाणी महज पुस्तकों तक सीमित नहीं रही, बल्कि लोगों के जीवन, व्यवहार और बोली में उतर पायी। इसी सहज-सरल वृति का परिणाम है कि आज भी लोक में संत कवियों की कविता लोकोक्ति और सूक्ति, लोकगीत, प्रवचन और सत्संग आदि के रूप में जन सामान्य के बीच गाँवों, चौपालों और मेलों में गाई-बजाई जाती है। इस संदर्भ में मैनेजर पांडेय का यह कथन उचित ही जान पड़ता है - "संत और भक्त कवि लोकमंगल की

भावना से प्रेरित और लोकमंगल की साधना के कवि हैं। उनके अनुभव और उनकी काव्यसाधना का क्षेत्र लोकजीवन ही था। सामान्य जनता की संस्कृति से उनकी कविता निर्मित हुई थी और लोकजीवन ही भक्ति-काव्य का संरक्षक बना। सामंती संस्कृति और उससे जुड़ी दरबाराश्रयी कविता के विरुद्ध जनसंस्कृति के उत्थान का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि और काव्य का लोकाश्रयी होना स्वाभाविक है।"[4]

वर्तमान समय में भारतीय समाज के पिछड़े जन समुदाय के भीतर आत्मगौरव और जातिय चेतना की जो आग दिखाई पड़ती है, उसके पीछे एक लंबा संघर्ष रहा है। जिसकी पृष्ठभूमि हमें निर्गुण संत कविता में दिखाई पड़ती है। इस जन-समुदाय ने अपने ऐतिहासिक अनुभवों, शोषण, संघर्ष और साहित्यिक - सांस्कृतिक धरोहर के आधार पर अपने 'अतीत का जो लोकायत'[5] किया है, उसी का परिणाम हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श की परंपरा के रूप में दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने मध्यकालीन निर्गुण संत कवियों को साहित्य की 'दलित धारा' का 'अगुआ' माना है। निर्गुण संत कविता के लोक अभिग्रहण को समझने के लिए उस समय की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति का विश्लेषण आवश्यक है। हिन्दी साहित्य का मध्यकाल सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से भारतीय समाज के लिए काफी उथल-पुथल का समय रहा है। समाज में वर्ण व्यवस्था के भीतर से ही जन्माधारित जाति-व्यवस्था ने जन्म लिया। चातुष्वर्ण्य समाज आगे बढ़कर अनेक जातियों और उपजातियों में विभाजित हो गया था। इस सामाजिक विषमता से उत्पीड़ित जन-सामान्य को उनके हर प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा गया। उनके लिए हर वो काम वर्जित था जिसमें तथाकथित सवर्ण समाज की भागीदारी होती थी। इस सामाजिक विषमता ने 'कोढ़ में खाज' की भांति उपेक्षित और अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों में भी घर कर लिया। इस सामाजिक विडंबना की ओर संकेत करते हुए डॉ. नगेन्द्र 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं कि – "छुआछूत के नियम इतने कठोर थे कि शूद्रादि जातियों तक में परस्पर भेदभाव बरता जाने लगा था।"[6] इस अनम्य जाति व्यवस्था ने भारतीय संस्कृति की 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाए' की उच्च परिकल्पना को बाधित किया। इन सामाजिक विसंगतियों ने एक विशाल जन समुदाय में हीनता और निराश को जन्म दिया। ऐसी में इस विशाल जनसमुदाय को यदि मुक्ति का मार्ग दिखा तो वह संत कवियों की वाणी में। इसके दो प्रमुख कारण माने जा सकते हैं - पहला, ये स्वयं इसी वर्ग से आते है, कदाचित यही कारण था कि उन्होंने अपनी काव्यसाधना का आधार भी इसी लोकजीवन को बनाया; और दूसरा, जिस समय तथाकथित निम्न समझे जाने वाले लोगों का मंदिरों में प्रवेश वर्जित था और ईश्वरीय भक्ति पर एक खास वर्ग का अधिकार था। उस समय इन्होंने ईश्वर प्राप्ति को सर्वसुलभ बताया, समतामूलक समाज की परिकल्पना गढ़ी और एक ऐसे लोकधर्म का निर्माण किया जिसके केंद्र में 'मनुष्यत्व' है। जहाँ प्राणी मात्र में कोई भेद-भाव की कोई गुंजाइश नहीं है- "सबहिन के हम सबै हमारे।"[7] जहाँ मनुष्य को मनुष्य समझा जाए, जो इस सृष्टि का मूल धर्म है यानि मानवधर्म। जिसमें प्रेम, करुणा, सम्मान और समानता तथा सहानुभूति का समावेश है। कबीर की 'अमर देसवा' और रैदास की 'बेगमपुरा' की परिकल्पना भी इसी 'मनुष्यत्व' को केंद्र में रख कर की थी। कबीर कहते हैं कि –

"जहवाँ से आयो अमर वह देसवा।
पानी न पान धरती अकसवा, चाँद न सूर न रैन दिवसवा।
बाम्हन छत्री न सूद्र बैसवा, मुगल पठान न सैयद सेखवा॥
आदि जोत, नहिं गौर गनेसवा, ब्रह्म बिसनु महेस न सेसवा।
जोगी न जंगम मुनि दुरबेसवा आदि न अन्त न काल कलेसवा।
दास कबीर के आए संदेसवा, सार सबद गहि चलौ वहि देसवा॥"[8]

रैदास कहते हैं कि –

"बेगम पुरा शहर कौ नांउ, दुखू अंदोह नहीं तिहिं ठांउ।
नां तसवीस खिराजु न मालु, खउफु न खता न तरसु जवालु॥
अब मोहि खूद वतन गह पाई, ऊंहा खैरि सदा मेरे भाई।
काइमु दाइमु सदा पातसाही, दोम न सेम एक सो आही॥
आबादानु सदा मसहूर, ऊँहा गनी बसहि मामूर।
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै, महरम महल न कौ अटकावै।
कहि रैदास खलास चमारा, जो हम सहरी सु मीत हमारा॥"[9]

इन दोनों पदों को ध्यान से देखें तो उसमें लोकजीवन की पीड़ा का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता हैं, लोकजीवन की पीड़ा से ही यह कल्पना उपजी है जिसमें जन सामान्य तमाम तरह के शोषण और अत्याचारों से मुक्त हो। जहाँ कोई दुःख, चिंता, शोक, ज़ुल्म और अन्याय, भय, अपराध न हो। सभी लोग समान, स्वतंत्र और सुखी हो, जातिगत भेद-भाव या ऊँच-नीच की गुंजाइश भी जहाँ न हो, वहाँ केवल आदि-ज्योति (परम सत्य) हों। रैदास अपने पद के अंतिम चरण में स्वयं को 'खलास चमारा' कहते हैं। अर्थात वे अपनी जातिगत पहचान को छुपाते नहीं, वह एक ऐसे आदर्श और सुखी समाज की परिकल्पना करते हैं जहाँ जाति उनके लिए सामाजिक हीनता का विषय नहीं। तो वहीं कबीर 'बाम्हन छत्री न सूद्र बैसवा, मुगल पठान न सैयद सेखवा' कहकर रैदास से एक कदम आगे बढ़कर एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जो सामाजिक विषमता और संप्रदायगत भेद-भाव से मुक्त हो। रैदास ने " ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार, हिरदै राम गोविंद गुणसारं॥"[10] और कबीर ने "जाति जुलहा मति को धीर। हरषि हरषि गुण रमै कबीर। / मेरे राम की अभैपद नगरी, कहै कबीर जुलाहा।"[11] कहकर जन सामान्य को 'जाति-आधारित श्रेष्ठता' से मुक्त कर उनमें आत्मगौरव और जातीय चेतना को जन्म दिया। वर्तमान में शोषित जन सामान्य में जो आत्मगौरव और जातिय चेतन विकसित हुई है वह इन संत कवियों के दीर्घ संघर्ष का फल है, जिसकी लड़ाई उन्होंने लंबे अरसे तक लड़ी। कबीर कहते हैं - "धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय । माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय ॥"[12] कबीर का यह दोहा केवल व्यक्तिगत संघर्ष को ही रूपायित नहीं करता, बल्कि सामाजिक विषमता के विरुद्ध जन सामान्य में यह संबल पैदा करता है कि वह दिन कभी तो आएगा – "जिसका वादा है / जो लोह-ए-अज़ल में लिखा है /जब ज़ुल्म-ओ-सितम के कोह-ए-गरां / रुई की तरह उड़ जाएँगा।"[13] तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उनके समय में व्याप्त सामाजिक विषमता से मुक्ति की लड़ाई धीरे-धीरे ही फलित हो सकती थी। इस लड़ाई की सफलता के लिए आवश्यक था सर्व साधारण में आत्मगौरव और जातिय चेतना को उद्बुद्ध करना। जिसमें इन कवियों को सफलता प्राप्त हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उचित ही लिखा है कि – "कबीर ने मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया।"[14]

सामाजिक समता का यह विचार संत काव्य धारा के सभी कवियों की वाणी में दिखाई पड़ता है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रायः वे सभी समाज के उस हिस्से से आते हैं जहाँ सामाजिक विषमता की पीड़ा जीवन की सच्चाई बन चुकी थी। उनका यह विचार जन सामान्य को इस असमानताजन्य पीड़ा से लड़ने की प्रेरणा देता है और उनमें समानता की आकांक्षा को जागृत करता है। इसलिए निर्गुण संतकवियों की वाणी को व्यापक लोक स्वीकृति मिली। 'भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य' की भूमिका से मैनेजर पांडेय का यह कथन पूर्णतः सार्थक प्रतीत होता है कि – "भक्ति आंदोलन का लक्ष्य है मानुष–सत्य या कि मनुष्यत्व की रक्षा और विकास। भक्तिकाव्य की सम्पूर्ण रचनाशीलता इसी लक्ष्य की ओर उन्मुख है। भक्त कवियों की दृष्टि में मानुष-सत्य से ऊपर कुछ भी नहीं है- न कुल, न जाति, न धर्म, न संप्रदाय, न स्त्री-पुरुष का भेद, न किसी शास्त्र का भय और न लोक का भ्रम। इस सबका दुराग्रह हमेशा मनुष्यत्व के विकास में बाधक बनता है, इसलिए इनकी भक्ति काव्य में निर्द्वंद्व और निर्भीक आलोचना है। समाज में तरह-तरह के भेद-भाव पर टिकी व्यवस्था की जगह मनुष्यत्व पर आधारित समतामूलक और मानवीय व्यवस्था की कामना भक्ति काव्य में है, जिससे आज भी शोषित-पीड़ित भारतीय जनता प्रेरणा और शक्ति पाती है।"[15]

मध्यकालीन भारत में उत्पन्न सामाजिक विसंगतियों पर तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। यही वह दौर था जब भारत में इस्लामिक आक्रमण और मुगलों की सत्ता स्थापित हो जाने पर पहली बार इस देश की जनता के लिए सामुदायिक पहचान के रूप में 'हिन्दू' शब्द चलन में आया। "मुसलमानों ने व्यावहारिक संबंधों के भेद को प्रकट करने के लिए यहाँ के निवासियों को 'हिन्दू' कहा।"[16] इस प्रकार भारतीय समाज धर्म के आधार पर दो खेमों में बँट गया – हिन्दू और मुसलमान। जो अपनी अलग-अलग पहचान लेकर चल रहे थें। संत कवियों की वाणी ने इसकी भी खूब आलोचना की और समाज को 'एकता' का मंत्र दिया। संत दादू कहते हैं कि - "हिंदू तुरक न जाणों दोइ। साँई सबका सोई है रे, और न दूजा देखौं।।"[17] कबीर तो तीखे शब्दों में इस सांप्रदायिक भेद-भाव की भर्त्सना करते हैं। वह कहते हैं कि –

"हम तौ एक एक करि जांनां।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग जिन नाहिंन पहिचांनां॥
एकै पवन एक ही पानीं एकै जोति समांनां।
एकै खाक गढ़े सब भांडै एकै कोंहरा सांनां॥

जैसे बाढ़ी काष्ट ही काटै अगिनि न काटै कोई।
सब घटि अंतरि तूँही व्यापक धरै सरूपै सोई॥"[18]

इस प्रकार संत कवियों ने अपनी वाणी के माध्यम से उस समय के गहरे धार्मिक विभाजन को चुनौती देते हुए मानव-मात्र की एकता का विचार प्रस्तुत किया और भारतीय जनता में, विशेष कर उस बड़े जन समूह में जो सदियों से सामाजिक-धार्मिक अन्याय एवं विषमता को झेल रहा था, उसमें लोकतांत्रिक चेतना का प्रसार किया। रैदास लिखते हैं कि -

"पराधीनता पाप है, जान लेह, रे मीत।
'रैदास' दास प्राधीन सो कौन करै है प्रीत
पराधीन को दीन क्या, पराधीन बेदीन
रैदास दास प्राधीन कौ, सबहिं समझै हीन।"[19]

रैदास का यह पद इसी जनतान्त्रिक चेतना से उपजी है। जिसकी मूल हसरत हबीब जालिब के अंदाज में कहे तो 'कभी जम्हूरियत यहाँ आए / यही 'जालिब' हमारी हसरत है।'

निर्गुण कविता ने न केवल जन सामान्य में समता, समानता और जनतान्त्रिक चेतना को जन्म दिया बल्कि उनको अशिक्षित एव गंवार होने की मानसिकता से भी मुक्त करने का काम किया है। सम्भवत: इसी लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि "बात यह है कि इस पंथ का प्रभाव शिष्ट और शिक्षित जनता पर नहीं पड़ा, क्योंकि उसके लिए न तो इस पंथ में कोई नयी बात थी, न नया आकर्षण। संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता। पर अशिक्षित और निम्न श्रेणी की जनता पर इन संत-महात्माओं का बड़ा भारी उपकार है।"[20] तत्कालीन जनसामान्य को अशिक्षित एवं गंवारपने की मानसिकता से मुक्त कर उनमें सम्मानबोध जागने के लिए ही इन संत कवियों ने समाज के हित के लिए जो उपदेश दिया वह शास्त्र एवं व्याकरण सम्मत भाषा की अपेक्षा देशभाषाओं या लोकभाषाओं ("संस्कृत कूप जल कबीरा भाषा बहता नीर। जब चाहो तब ही डुबौ, सीतल होय शरीर ॥"[21]) में थी और तमाम धार्मिक आडंबरों, पाखंडों का विरोध कर यह बताया कि ज्ञान और भक्ति का अधिकार केवल संस्कृत बुद्धि और संस्कृत हृदय अर्थात ज्ञानी उच्च वर्ग तक सीमित नहीं बल्कि आम जनता के लिए भी सुलभ है। उन्होंने अपनी वाणी से यह स्थापित किया कि सच्चा ज्ञान पुस्तकीय नहीं, बल्कि अनुभवजन्य होता है। कबीर कहते हैं – "मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी। मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यौ उरझाई रे।"[22] इस काव्यधारा के कवियों ने संसार की प्रत्येक वस्तु को जीवन के अनुभव और अपने श्रम के नजरिए से देखा है। उनका सम्पूर्ण जीवन कर्म प्रधान था। चाहे कबीर हो या रैदास हो, नानक हो या फिर अन्य संत कवि। यही वजह है कि उनकी कविता भी इसी जीवन अनुभव के तानेबाने से बुनी गई है। उन्होंने अपनी कविताओं के लिए प्रतीक भी लोक जीवन के कर्म क्षेत्र से ही चुना है। कबीर कहते है –

"झीनी झीनी बीनी चदरिया ॥
काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ॥
इडा पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया ॥
आठ कंवल दल चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया ॥
साईं को सियत मास दस लागे, ठोंक ठोंक कै बीनी चदरिया ॥"[23]

इस पद में यह दिख पड़ता है कि कबीर का यह पूरा पद जुलाहे के जीवन यथार्थ के अनुभवों से बुना गया है। मैनेजर पांडेय लिखते हैं कि - "चरखा कबीर के लिए जीवनयापन का साधन है और पूजा की वस्तु भी। उनकी दृष्टि में जीवन के कर्म से धर्म अलग नहीं है। उनके कवि-कर्म और जीवन-कर्म में अद्भुत एकता है। कारीगर कबीर के जीवन की कला ही उनकी कविता की कला बन गई है।"[24] कबीर के संदर्भ में मैनेजर पांडेय का यह कथन अत्यंत सार्थक प्रतीत होता है, जो न केवल कबीर बल्कि अन्य संत कवियों पर भी समान रूप से लागू होता है। यह उनके कवि-कर्म और जीवन-कर्म का ही समन्वय है कि उन्होंने सृष्टिकर्ता को भी लोकजीवन के उपमानों में बाँध कर देखा है। कभी उसे कुम्हार (कर्मशील सृष्टिकर्ता) के रूपक में -"एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सृजनहारा।"[25], तो कभी ग्वाले के रूप में - "हम गोरू तुम गुआर गोसाई जनम जनम रखवारे।"[26] प्रस्तुत किया है। इस प्रकार इन कवियों ने लोक से तमाम प्रतीकों को उठाकर जैसे – लोहार ('संतों लोहा

कठिन है सद्गुरु बने लुहार।'), माली ('मालिन आवत देखि करि, कलियाँ करीं पुकार।'), बढ़ई ('बाढ़ी आवत देखि करि, तरिवर डोलन लाग।'), चाक ('चाकी चलती देखि कै, दिया कबीरा रोइ। दोइ पट भीतर आइकै, सालिम बचा न कोई॥') के माध्यम से मनुष्य, सृष्टि और कर्म के संबंध को अत्यंत सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया है। इनकी कविताएँ केवल लोकजीवन का चित्रण नहीं है, बल्कि यह कर्मप्रधान लोकजीवन को गहराई से व्यक्त करती हैं। अतः हम कह सकते हैं कि संत कवियों के इस सार्थक प्रयास से सामान्य जनता में फैली यह धारणा टूटी कि निरक्षरता 'अज्ञानता' है। कबीर का यह उद्घोष 'मसि कागद छुयौ नही, कलम गह्यौ नहीं हाथ' स्पष्ट करता है कि सच्चा ज्ञान केवल किताबों या औपचारिक शिक्षा का मोहताज नहीं होता, बल्कि वह अनुभव, साधना और जीवन के प्रत्यक्ष बोध से प्राप्त होता है। इससे सामान्य जनता, जिसे 'अज्ञानी' समझा जाता था, अपने आध्यात्मिक अधिकार के प्रति सचेत और आत्मविश्वासी हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस संदर्भ में अत्यंत सटीक टिप्पणी की है कि - "इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर आकर जनता के उस बड़े भाग को सँभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्तिरस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था।"[27] सिद्धों और नाथों के चमत्कार से प्रभावित होकर सामान्य जनता का उनके शरण में जाना, उनकी अज्ञानता और सामाजिक असमानता की ही देन थी, इसके विपरीत इस काव्यधारा ने जीवन के यथार्थ अनुभव, श्रम, पीड़ा और संघर्ष को महत्व दिया है, जिससे आम जनता को यह महसूस हुआ कि उनका जीवन और अनुभव भी साहित्य के योग्य और महत्वपूर्ण हैं। मिट्टी से उपजे इस साहित्य में मिट्टी का सौंधापन उसकी नैसर्गिक प्रकृति है। जो कभी समाप्त नहीं होगी, जो काल के प्रवाह में सदैव जीवित रहेगी –'हम न मरै मरिहै संसार।'

प्रस्तुत विवेचन का दूसरा पक्ष संत कवियों की वाणी का लोकजीवन में समाहार है। इस पर विचार किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि निर्गुण संत कविता का लोकाभिग्रहण साहित्य की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जहाँ संतों की वाणी केवल आध्यात्मिक उपदेश तक सीमित न रहकर जनजीवन का अभिन्न अंग बन जाती है। जिसका विवेचन हम ऊपर कर आए है। शिष्ट साहित्य जब लोक के आश्रय में आ कर लोकसाहित्य की ही भाव-भंगिमा में ही स्वयं को प्रस्तुत करता है, तो वह लोक के और निकट आ जाता है। यह स्थिति इस बात का प्रमाण है कि संत काव्य में लोक साहित्य की भांति ही लोक जीवन की सहज अभिव्यक्ति हुई है। परिणाम जनसामान्य ने संत कवियों की वाणी को केवल सुना ही नहीं, बल्कि उसे अपने जीवन में आत्मसात कर लिया। परिणामस्वरू इनके वाणियों की अनुगूँज लोकगीतों, लोककथाओं, आस्थाओं और दैनिक जीवन-व्यवहार में जीवंत रूप से सुनाई पड़ती हैं। जिसका एक उदाहरण हम भोजपुरी क्षेत्र में प्रचलित इस 'निर्गुण गीत' में देख सकते हैं - "गावेले कबीरदास इहे निरगुनवा हो राम। आहो रामा जागवा में केहू नाहिं आपन हो रामा।"[28] कबीरादि संतों ने लोक को जिस निर्गुण निराकार ईश्वर की साधना का मंत्र दिया वह आध्यात्मिक होते हुए भी इतनी सरल, अनुभवपरक और लोकानुकूल थी कि सामान्य जनता ने उसे अपने जीवन का अंग बना लिया। यही कारण है कि 'निर्गुण' केवल एक दार्शनिक पद नहीं रहा, बल्कि लोकजीवन में गीत-परंपरा के रूप में स्थापित हो गया। राहुल सांकृत्यायन ने तो कबीर की कविता को 'लोकगीत' ही कह डाला है। उन्होंने लिखा है – "निर्गुण शाखा के प्रधान कवि महात्मा कबीर की रचना को बिना किसी प्रतिवाद के लोकगीत कहा जा सकता है। आज भी गांवों में अनेक 'निर्गुण' और भजन गाए जाते हैं जिनमें 'कबीरदास' का नाम बराबर पाया जाता है।"[29] इस प्रकार लोक गीत में जैसा कि हम देख पाते हैं 'कबीरदास' केवल भक्ति आंदोलन के ऐतिहासिक कबीर नहीं रह जाते, बल्कि लोक-चेतना के प्रतीक बन जाते हैं। लोक अपने आध्यात्मिक अनुभवों को व्यक्त करने के लिए कबीर के नाम का सहारा लेता है, इसी से यह स्पष्ट है कि इनकी कविता लोकगीत और लोकमानस दोनों में रच-बस गए हैं। निर्गुण संत कविता के लोकाभिग्रहण का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है कि 'राजस्थान का लोकप्रिय लोकभाषा काव्य 'ढोला मारू र दूहा' जो एक प्रेम गाथा है उसमें कबीर के दोहे ज्यों के त्यों मिलते है।' लोक ने कबीर की वाणी को केवल सुना नहीं, बल्कि अपनाया, जिया और आगे रचा भी है। उनकी वाणी लोक-जीवन में उसी रूप में जीवित रही, जैसे लोकगीत रहते हैं - पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक हस्तांतरण की प्रक्रिया के द्वारा। इस प्रक्रिया में जैसे लोकगीत अपने आदिम रूप में नहीं रह जाते समयानुरूप परिवर्तित होते रहते हैं, मिसाल के तौर पर इस लोकगीत को देखिए जिसमें समय के साथ बदलते समाज और तकनीक के अनुरूप लोक-नायिका के विरह की भावनात्मक अभिव्यक्ति भी बदलती रही है – " 'रैलियां बैरन पिया को लिए जाए रे', 'रेलिया से उतरे जहजिआ पऽ चढ़ले पिया रंगुनवा गइले ना', 'रेलिया बैरी ना जहजिआ बैरी, से पइसवा बैरी ना। सइयाँ के लेके गईल बिदेसवा, से पइसवा वैरी ना।' "[30] इन लोक गीतों में औपनिवेशिक दौर का बदलता सामाजिक-आर्थिक यथार्थ और तेजी से होते प्रवसन (migration) के कारण क्रमिक परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कदाचित यही 'बैरन' कभी बैलगाड़ी, नाव, पैदल यात्रा हुआ करती थीं। उसी प्रकार कबीर के वे पद जो मौखिक रूप

से लोक में चले आ रहे है, जो लिखित रूप में उपलब्ध नहीं हैं। उनमें भी यह परिवर्तन दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए कबीर का यह पद देख सकते हैं –

"जहवाँ से आयो अमर वह देसवा।
पानी न पान धरती अकसवा, चाँद न सूर न रैन दिवसवा।
बाम्हन छत्री न सूद्र बैसवा, मुगल पठान न सैयद सेखवा॥
आदि जोत, नहिं गौर गनेसवा, ब्रह्म बिसनु महेस न सेसवा।
जोगी न जंगम मुनि दुरबेसवा आदि न अन्त न काल कलेसवा।
दास कबीर के आए संदेसवा, सार सबद गहि चलौ वहि देसवा॥"[31]

इस पद में प्रयुक्त 'मुगल' शब्द ध्यान देने योग्य है। जिसके संबंध में पुरुषोत्तम अग्रवाल कहते हैं कि – "इस पद में आए 'मुगल' शब्द से मालूम पड़ता है कि पद 1526 से पहले का नहीं है। कबीर का निधन देर से देर 1518 में हो चुका था।"[32] प्रोफेसर अग्रवाल के इस कथन से यह ज्ञात होता है कि इस पद में 'मुगल' शब्द समयानुरूप मौखिक परंपरा में किसी लोक कवि ने रचा होगा। इसी प्रकार 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' और 'मोकों कहाँ ढूँढे रे बंदे' जैसे पद जो कबीर की संवेदना और शैली के अनुरूप जान पड़ते हैं - की लिखित उपलब्धता ने होने पर भी लोक में वह कबीर की रचना के रूप में स्वीकृत है। ऐसी रचनाओं को प्रोफेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल ने कबीर की 'उप -रचना' की संज्ञा दी है। वह लिखते हैं कि - "लिखित स्रोतों में अनुपलब्ध, किन्तु कबीर की संवेदना और मान्यताओं को, और उनकी नाम-छाप को धारण करनेवाली ऐसी रचनाओं को हम कबीर की 'उप-रचना' कह सकते हैं।"[33] संत कवियों की कविता के लोक स्वीकृति का एक पक्ष यह भी है। जिसे लोक ने अपने कंठ में बसाकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी गाया, जिया और अपनी जीवन-परंपरा का अभिन्न अंग बना लिया। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं संत कवियों की वाणी मूलतः लोकभाषा, लोक-जीवन के अनुभव और लोक- व्यवहार से जुड़ी हुई हैं। यही कारण है कि उनकी वाणियों को लोक में इस तरह आत्मसात किया है कि उनकी वाणियाँ दैनंदिन व्यवहार में मुहावरों और लोकोक्तियों के रूप में सहज ही प्रकट होती रहती है। उदाहरण के तौर पर 'मन के हारे हार हैं, मन के जीते जीति।', ' पूत कपूत तो का धन संचय, पूत सपूत तो का धन संचय।' 'साँच बराबरि तप नहीं, झूठ बराबर पाप।', 'धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।/ माली सीचें सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय॥', 'पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंड़ित होय॥', 'पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।', 'निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।', 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।', 'मन चंगा तो कठौती में गंगा।', 'सूरा सो पहचानिए जो लड़े दीन के हेत / पुरजा पुरजा कट मरे तबौ न छाड़े खेत' आदि तमाम पंक्तियों को हम देख सकते हैं। इस प्रकार संत कविता लोकजीवन के यथार्थ से जुड़े होने के कारण जन सामान्य के लिए 'जीवन-निर्देश' का माध्यम बन गई। इसी कारण लोकसमाज ने संत वाणी को 'नैतिक संहिता' के रूप में भी स्वीकार किया, जिसका अनुसरण आज भी जन सामान्य करता है।

निष्कर्ष –

इस अध्ययन के उपरांत हम पाते हैं कि निर्गुण संत कविता का लोक-अभिग्रहण प्रभाव और व्यवहार-दोनों स्तरों पर बहुत गहराई से दिखाई देता है। प्रभावगत रूप में संत कविता ने आम जनमानस की सोच को बदलने का काम किया। इसने लोगों को सामाजिक विषमता, सांप्रदायिक भेद-भाव और बाहरी आडंबरों से हटाकर भीतर की सच्चाई, आत्मगौरव, जातिय चेतना, समता, लोकतान्त्रिक चेतना और मनुष्यत्व की ओर प्रेरित किया। संतों ने यह समझाया कि 'मानव धर्म' ही सबसे बड़ा धर्म है तथा सृष्टि के सभी प्राणी एक ही ज्योति से उत्पन्न है। जिससे लोकचेतना अधिक जागरूक, मानवीय और समतामूलक बनी। वहीं व्यावहारिक स्तर पर संतों की वाणी लोगों के दैनिक जीवन में उतर गई। उनके दोहे और पद मुहावरों और लोकोक्तियों की तरह रोज़मर्रा की भाषा में प्रयोग होने लगे। उनके उपदेशों को आम लोग ने नैतिक साहित्य की तरह अनुसरण किया। इस प्रकार संतों की वाणियाँ लोक कंठ के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रही और लोक शिक्षा का काम करती रही हैं। अतः संत कविता केवल पढ़ने-सुनने तक सीमित नहीं रही, बल्कि जीवन को व्यवस्थित ढंग से जीने का सरल और व्यावहारिक मार्ग बन गई, जिसने लोकजीवन को भीतर से प्रभावित भी किया और बाहर से व्यवस्थित भी।

संदर्भ : -

[1] सांकृत्यायन, राहुल, उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास : षोडश भाग, नागरिप्रचारिणी सभा, काशी, पृ. 15.

[2] उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, लोक-साहित्य की भूमिका, द्वितीय लोकभारती संस्करण : 2023, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज – 211001, पृ. 11

[3] पांडेय, मैनेजर, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ती-2011,पृ.31

[4] वही, पृ.9.

[5] डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2021,पृ. 173.

[6] डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण :2022, पृ. 89.

[7] मलूकदास, हिन्दवीं, रेखता,https://www.hindwi.org/sabad/sabad-collection/sabhin-ke-hum-sabai-hamare-malukdas-sabad?sort=popularity-desc, 02/02/2026.

[8] अग्रवाल, पुरुषोत्तम, अकथ कहानी प्रेम की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण : 2024, पृ. 42.

[9] अग्रवाल, पुरुषोत्तम, अकथ कहानी प्रेम की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण : 2024, पृ. 42.

[10] सिंह, डॉ. शुकदेव, रैदास बानी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति : 2011, पृ. 61.

[11] दास, श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण : 2024, पृ. 130.

[12] कबीर, कबीर दोहावली, कविता कोश, https://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%95%E0%A4%AC%E0%A5%80%E0%A4%B0_%E0%A4%A6%E0%A5%8B%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%B5%E0%A4%B2%E0%A5%80_/_%E0%A4%AA%E0%A5%83%E0%A4%B7%E0%A5%8D%E0%A4%A0_%E0%A5%A7, 07/02/2026

[13] फ़ैज़,अहमद फ़ैज़, हम देखेंगे, कविता कोश, https://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%B9%E0%A4%AE_%E0%A4%A6%E0%A5%87%E0%A4%96%E0%A5%87%E0%A4%82%E0%A4%97%E0%A5%87_/_%E0%A4%AB%E0%A4%BC%E0%A5%88%E0%A4%9C%E0%A4%BC_%E0%A4%85%E0%A4%B9%E0%A4%AE%E0%A4%A6_%E0%A4%AB%E0%A4%BC%E0%A5%88%E0%A4%9C%E0%A4%BC, 07/02/2026.

[14] पांडेय, मैनेजर, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ती-2011,पृ.32

[15] पांडेय, मैनेजर, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ती-2011,पृ.32

[16] डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण :2022 पृ. 88

[17] दादू दयाल, हिंदू तुरक न जाणों दोइ, कविता कोश,

https://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%82%E0%A4%A6%E0%A5%82_%E0%A4%A4%E0%A5%81%E0%A4%B0%E0%A4%95_%E0%A4%A8_%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A3%E0%A5%8B%E0%A4%82_%E0%A4%A6%E0%A5%8B%E0%A4%87_/_%E0%A4%A6%E0%A4%BE%E0%A4%A6%E0%A5%82_%E0%A4%A6%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%B2, 02/02/2026

[18] कबीर, हम तौ एक एक कर, हिंदवी, https://www.hindwi.org/pad/pad-kabir-pad?gad_source=1&gad_campaignid=11063232657&gbraid=0AAAAADlifVRd2T-a0PfgAB-wupAEWBHX3&gclid=CjwKCAjwspPOBhB9EiwATFbi5HQey3gO6oOdy-jKf5BnKDh9Jg5iovtii-ieWEU1okHvs0VfgL_6zRoCMyIQAvD_BwE , 02/02/2026.

[19] रैदास, रैदास के दोहे, हिन्दवी, https://www.hindwi.org/dohe/paraadhiinata-paap-hai-raidas-dohe

[20] शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, संस्करण: 2016, मलिक एण्ड कंपनी,पृ.68

[21] द्विवेदी, गणेशप्रसाद, चतुर्वेदी, परशुराम, हिंदी संतकाव्य-संग्रह, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, तृतीय संस्करण : 1974, पृ. 40.

[22] कबीर, मेरा तेरा मनुओं कैसे इक होई रे, हिंदवी, https://www.hindwi.org/pad/mera-tera-manuon-kaise-ek-hoi-re-kabir-pad 04/02/2026

[23] अग्रवाल, पुरुषोत्तम, अकथ कहानी प्रेम की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण : 2026, पृ. 438.

[24] पांडेय, मैनेजर, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ती-2011,पृ. 34.

[25] दास, श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण : 2024, पृ. 264.

[26] वही, पृ.108.

[27] शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2025, पृ. 42.

[28] उपाध्याय, कृषणदेव, भोजपुरी लोकसाहित्य, द्वितीय संस्करण: 2008, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,पृ.195.

[29] सांकृत्यायन, राहुल, उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास : षोडश भाग, नागरिप्रचारिणी सभा, काशी, पृ. 14.

[30] सिंह, धनंजय, पुरबियों का लोकवृत वाया देस-परदेस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,पृ. 32.

[31] अग्रवाल, पुरुषोत्तम, अकथ कहानी प्रेम की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण : 2024, पृ. 42.

[32] वही,पृ. 42.

[33] वही, पृ. 43.

Received: 08.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा में अभिव्यक्त दलित चेतना के स्वर

मनीष कुमार साव*
manishkumarshaw16396@gmail.com

शोध सारांश –

यह शोध-पत्र ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में अभिव्यक्त दलित जीवनानुभव, शोषण और प्रतिरोध की चेतना का विश्लेषण करता है। प्रस्तुत अध्ययन में स्पष्ट किया गया है कि यह आत्मकथा दलित हिंदी साहित्य परंपरा का एक प्रामाणिक और जीवंत दस्तावेज है, जिसमें लेखक ने अपने बाल्यकाल से लेकर युवावस्था तक के जातिगत भेदभाव, सामाजिक अपमान और दमन चक्र को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

'जूठन' में दलित जीवन की पीड़ा, यातना और सामाजिक बहिष्कार की अभिव्यक्ति इतनी सशक्त है कि यह पाठक को गहरे स्तर पर प्रभावित करती है और समाज में व्याप्त अमानवीय विषमताओं पर प्रश्नचिह्न लगाती है। यह कृति केवल व्यक्तिगत अनुभवों का चित्रण नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक यथार्थ का साहित्यिक रूपांतरण है, जिसमें दलित अस्मिता और आत्मसम्मान की खोज प्रमुख रूप से उभरती है।

अतः यह अध्ययन निष्कर्ष रूप में दर्शाता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा दलित चेतना के संघर्ष, प्रतिरोध और आत्म-गरिमा की स्थापना का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज़ है, जो सामाजिक न्याय की अवधारणा को नई दिशा प्रदान करता है।

बीज शब्द –

दलित चेतन, दलित अस्मिता, आत्मकथा, समाजशास्त्रीय, जातिवाद, अनुभव, संघर्ष

जूठन दलित हिंदी साहित्य परंपरा का प्रामाणिक एवं जीवंत दस्तावेज हैं, जिसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने बाल्यकाल से लेकर 35 वर्ष की अवस्था तक हुए शोषण और दमन चक्र को अभिव्यक्ति दी हैं। जूठन आत्मकथा को जितनी प्रशंसा और प्रतिष्ठा साहित्य के क्षेत्र में मिली है उतनी किसी अन्य आत्मकथाओं को नहीं मिली । कोई भी व्यक्ति जब समाज में व्याप्त विषमताओं द्वारा प्रताड़ित व अपमानित होता है, तब उसकी अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में ज़रूर होती है। जूठन में दलित जीवन की पीड़ा की अभिव्यक्ति मुखर रूप में हुई हैं। जूठन को पढ़ते समय साँसें थम जाती है, रक्तचाप बढ़ जाता है और यह महसूस होता है कि कोई भी समाज अपने ही लोगों के प्रति कैसे इतना क्रूर और निर्दय हो जाता हैं। इस आत्मकथा के माध्यम से ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भोगे हुए यथार्थ को साहित्य रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य को बेहद आवश्यक मानते हैं, परंतु दलित साहित्य का उद्देश्य किसी जाति या संप्रदाय के ख़िलाफ़ बल्कि दलितों और शोषितों को दमन करने वाली मानसिकता के विरुद्ध है। अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ' में लिखते हैं कि - "दलित साहित्य का उद्देश्य एक वैकल्पिक संस्कृति और समाज में दलितों की एक अलग पहचान सृजित करना है। दलित लेखक किसी समूह, मसलन किसी जाति विशेष, संप्रदाय के खिलाफ नहीं है। लेकिन व्यवस्था के विरुद्ध है. चाहे वह सरकारी, सामाजिक, धार्मिक संस्था की व्यवस्था हो, जो अपनी सोच और दृष्टिकोण से दलितों का शोषण और दमन करती हो।"[1]

---

* **हिंदी प्रवक्ता, पीएम श्री स्कूल जवाहर नवोदय विद्यालय मलकानगिरि, ओडिशा**

दलित साहित्य किसी व्यक्ति विशेष की नहीं होती बल्कि पूरे दलित समाज की स्थिति को अभिव्यक्त करती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' उनके व्यक्तिगत जीवन के संघर्ष एवं पीड़ा को अभिव्यक्त नहीं करती है वरन पूरे भंगी जाति की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को वर्णित करती हैं। श्यौराज सिंह बेचैन ने 'जूठन' आत्मकथा के महत्व को दर्शाते हुए लिखते हैं - "यह आत्मकथा हमारे समाजशास्त्रीय अध्ययन की जरूरी सामग्री है, इसे गंभीरता से लिया जाना चाहिए। इसे सवर्ण साहित्य की सामन्ती सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से देखना आवश्यक नहीं और न ही परम्परागत लेखकों की आत्मकथाओं से तुलना करते हुए हिन्दी साहित्य के प्रतिमानों या कसौटियों पर घसीटने की जरूरत है।"[2]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन ने हिंदू धर्म में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था की परतों को जनमानस के सामने खोलकर रख दिया है। 'जूठन' भारतीय वर्ण व्यवस्था पर आधारित शिक्षा व शिक्षक की विकृत मानसिकता दर्शाती हैं। शिक्षकों की जातिवादी मानसिक और पूर्वाग्रही मानसिकता से भली-भाँति परिचित थे। वे लिखते हैं - "अध्यापकों का आदर्श रूप जो मैंने देखा वह अभी तक मेरी स्मृति में मिटा नहीं है। जब भी कोई आदर्श गुरु की बात करता है तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आते हैं, जो हमारे माँ-बहनों की गालियाँ देते थे। सुंदर लड़कों के गाल सहलाते थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे वाहियातपन करते थे।"[3]

जूठन में शिक्षा परंपरा के संबंध से जुड़ी एक बात उभर कर सामने आती हैं कि तत्कालीन समाज में वही दलित बच्चे पढ़ सकते थे जिनके माता - पिता उन्हें शिक्षित करने कि लिए जागरूक रहते थे। परंतु सिर्फ़ जागरूकता से ही बच्चे की पढ़ाई संभव नहीं थी बल्कि इन बच्चों के साथ हो रहीं प्रताड़नाओं व यातनाओं से भरे वातावरण में साहस से मुक़ाबला करने की प्रेरणा उनके माता -पिता देते हैं। तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था के संबंध में कँवल भारती लिखते हैं - "यह आत्मकथा वास्तव में पीठ पर अंकित महाकाव्य ही है, जो मास्टर ने नहीं व्यवस्था ने अंकित किया है। यह व्यवस्था सवर्णों के लिए स्वर्ग और दलितों के लिए नरक का निर्माण करती है।"[4]

जूठन आत्मकथा में लेखक ने सामाजिक कुप्रथाओं का खुलकर विरोध किया हैं। वाल्मीकि जी अपने मित्र की शादी में जब उनके गाँव जाते हैं तो वहाँ सलाम नामक रस्म का विरोध करते हैं। चूहड़ा जाति में शादी के समय 'सलाम' नामक रस्म निभाई जाती है, जिसके तहत नव वर-वधू को सवर्णों के घर जाकर सलामी देनी पड़ती है, इसके लिए सवर्ण समाज के लोगों द्वारा उन्हें रुपए, जूठन, गालियाँ, तिरस्कार व बेहद अपमानजनक व्यवहार झेलने पड़ते हैं। 'जूठन' में लेखक ने 'सलाम प्रथा' के पीछे के कारणों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं-"सदियों से चली आ रही इस प्रथा के पार्श्व में जातीय अहम् की पराकाष्ठा है। समाज में जो गहरी खाई है, उसे यह प्रथा और गहरा बनाती है। एक साजिश है हीनता के भँवर में फँसा देने की।"[5]

वाल्मीकि जी ने दलित समाज के उत्थान के लिए सवर्ण समाज से उनकी मुक्ति को आवश्यक माना है। जहाँ तक दलित संस्कृति की बात है तो वह स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के सिद्धांत पर आधारित हैं। पूरे देश में एक ही प्रकार की संस्कृति होनी चाहिए। परंतु यह बेहद दुःखद है कि समाज में हमेशा दो प्रकार की संस्कृति रही है, एक सवर्ण समाज की और दूसरा दलित समाज की। रमणिका गुप्ता का मानना है कि, "भारत में हमेशा से ही दो संस्कृतियाँ पनपी, भारतीय संस्कृत ने मानदंड बनाएं। दो दृष्टिकोण रचे, दो आचार संहिताएँ बनाई चाहे वे सामाजिक स्तर की हो, चाहे आर्थिक व राजनीतिक या धार्मिक स्तर की। ये सदा से ही स्वर्णों के लिए हितकारी रही और पिछड़ो को अधिकार विहीन बना दिया। एक वर्ग जाति का दंभ भरता है, तो दूसरा वर्ग जाति की वजह से संकीर्ण हो हीनभावना से ग्रस्त हो गया। दलित साहित्य की सांस्कृतिक मान्यता ऐसी ही हीन भावना से पनपी संकीर्ण मानसिकता को दूर करना है।"[6]

दलित समाज रूढ़ियों और अंधविश्वास में जकड़ा हुआ था। वाल्मीकि जी को न ही किसी हिंदू देवी - देवताओं पर आस्था थी और न ही की अंधविश्वास और टोने -टोटके पर। लेखक के पिता को अपने पुत्र पर संदेह होने लगा कि लेखक कहीं ईसाई धर्म को स्वीकार न कर लिया हो। लेखक पिता की चिंता को समझते थे, वे अपने पिता को आश्वासन दिलाते थे कि उन्होंने किसी भी धर्म को स्वीकार नहीं किया है। वाल्मीकि जी हिंदू समाज के प्रति अपनी प्रतिक्रिया देते हुए लिखते हैं, "मैं हिंदू भी तो नहीं हूँ। यदि हिंदू होता तो हिंदू मुझसे इतनी घृणा, इतना भेदभाव क्यों करते। बात-बात पर जातीय बोध की हीनता से मुझे क्यों भरते। मन में यह आता था कि अच्छा इंसान बनने के लिए जरूरी क्यों है कि वह हिंदू ही हो। हिंदू की क्रूरता बचपन से देखी है, सहन की है। जाति श्रेष्ठता भाव अभिमान बनकर कमजोर को ही क्यों मरता है। क्यों दलितों के प्रति हिंदू इतना क्रूर है।"[7] वाल्मीकि जी ने ब्राह्मणवादी आडंबरों का पूर्ण रूप से विरोध किया है। वे अपने दलित समाज के लोगों को भी सतर्क

रहने का संदेश देते रहते थे। जब सरिता उनसे पूछती है कि आप मंदिर क्यों नहीं जाते। तब वे कहते हैं, "इन पत्थर की मूर्तियों में मेरी कोई आस्था नहीं है।"[8]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित समाज में फैले अंधविश्वास, कुप्रथा, भूत -प्रेत, जादू-टोना आदि पर गहरी चिंता व्यक्त की है। लेखक बताते हैं कि दलित समाज आज वैज्ञानिक युग में भी अंधविश्वास के जाल में फँसा हुआ हैं, उनसे उबर नहीं पाये है। दलित समाज के लोग आदि शक्ति को सबसे शक्तिशाली मानते हैं। उन्हें ख़ुश करने के लिए सुअर, मुर्गे और बकरियों की बलि देते हैं। देवी - देवताओं को चढ़ावे के रूप में शराब भी अर्पित करते हैं। यह स्थिति तब है जब दलित समाज के लोग भीषण गरीबीं में डूबे हुए है। लेखक के शब्दों में - "भूत-प्रेत की छायाओं के प्रति पूरी बस्ती में अजीब माहौल था। जरा भी किसी की तबीयत खराब होती तो डॉक्टर के बजाए किसी भगत को बुलाया जाता था। भगत के शरीर में देवी-देवता प्रकट हो जाने पर बीमार को दिखाया जाता था।"[9]

जूठन आत्मकथा में लेखक समाज की छोटी से छोटी बारीकियों को भी दिखाने का प्रयास करते हैं। सवर्ण समाज के लोग जिस तरह का व्यवहार दलितों के साथ करते हैं वह अमानवीय है। मगर सवर्ण समाज के बच्चों में दलित समाज के प्रति जो हेय की भावना देखने को मिलती है, वह और भी भयानक है। लेखक जब विद्यालय जाते थे तो उन्हें सिर्फ़ उसके सहपाठी ही परेशान नहीं करते हैं, बल्कि उनके गाँव के शरारती बच्चों द्वारा भी स्कूल जाते समय परेशानियों का सामना करना पड़ता था। वाल्मीकि जब स्कूल जाते थे तब सूरजभान का बेटा बृजेश रास्ते में लेखक को परेशान करने के उद्देश्य से कहता था - "चूहड़े के, तुम्हें तो सचमुच सींग निकल आए है। तू तो बड़ी शेखी में रहता है। तेरी तो चल ही बदल गई है।"[10] इस बात से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार जातिवाद का जहर सवर्ण परिवार के बड़े अपने बच्चों के मन में डालते हैं। यही जातिवाद का जहर आगे चलकर इतना विकराल रूप ले लेता है जिसकी कल्पना करना कठिन है। इस तरह की मानसिकता के साथ कभी भी स्वस्थ समाज की कल्पना संभव नहीं हो सकती है।

दलित समाज की सबसे बड़ी समस्या गरीबी है। निर्धनता के कारण दलितों को गुलामों जैसी जिंदगी जीने पर विवश होना पड़ता है। इस समस्या की सबसे बड़ी जड़ वर्ण-व्यवस्था मूलक समाज है। जो व्यक्ति को अपने मन के अनुसार काम तक नहीं करने देती है। उन्हें जातिगत पेशा अख्तियार करने के लिए मजबूर कर दिया जाता हैं। डॉ. भीमराव अंबेडकर अपनी किताब जाति का विनाश में इस बात को मानते हैं कि वर्ण-व्यवस्था मूलक समाज ने दलित और पिछड़ों को ग़रीब बने रहने पर मजबूर कर दिया है। इस वर्ण-व्यवस्था मूलक समाज का जिक्र करते हुए वाल्मीकि जी अपनी आत्मकथा में दिखाते हैं कि किस प्रकार लेखक के माता-पिता गाँव में सुखदेव सिंह त्यागी की लड़की के विवाह में घर से लेकर बाहर तक काम में जुट जाते हैं। बारह दिन बाद जब लेखक की माँ बड़े उत्साह और अधिकार से सुखदेव सिंह से कहती है "चौधरी जी, ईब तो सब खाणा खा के चले गए… म्हारे जाकतों (बच्चों) कू भी एक पत्तल पर धर के कुछ दे दो। वो बी तो इस दिन का इंतज़ार कर रे ते।"[11] इसके जवाब में सुखदेव सिंह ऐहसानमंद होने की जगह वाल्मीकि के माँ को जातिसूचक गालियाँ निकालते हुए कहता है, "टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है… ऊपर से जाकतों के लिए खाणा माँग रही है? अपनी औक़ात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाज़े से और चलती बन।"[12] यह कथन केवल लेखक की माँ के लिए नहीं थी बल्कि समूचे दलित समाज के लोहों के लिए थी। जिन्हें जानवरों से भी बदतर जिंदगी जीने के लिए मजबूर किया जाता है। लेखक ली माँ ने केवल अपने हक के लिए और बच्चों के भोजन का आग्रह करती है, मगर जातिवादी सुखदेव सिंह उन्हें केवल गालियाँ ही नहीं देता बल्कि उनके पूरे आत्म सम्मान को तोड़ कर उन्हें नीचा देखने का प्रयास करता है। इस तरह की घृणित मानसिक को सुधारे बगैर स्वस्थ समाज को संकल्पना असंभव है।

भारतीय समाज में महाजनी प्रथा सदैव विद्यमान रही है, जैसे बेगार करवाना, सूद की अधिक मात्रा पर पैसे उधार देना आदि। लेखक अपनी आत्मकथा में लिखते हैं, "उसके ब्याज की दर इतनी ज़्यादा थी कि ब्याज देते-देते ज़िन्दगी बिट जाएगी, मूल ज्यों-का-त्यों बना रहेगा। भंगी मुहल्ले के ज्यादातर लोग कर्ज में डूबे हुए थे।"[13] यही करण है कि दलित समाज के लोग महाजनों के अभद्र व्यवहार और ज़्यादतियों का विरोध नहीं कर पाते थे। लेखक कहते हैं कि – "भूख के सामने विरोध दम तोड़ देता था।"[14] इन समस्याओं से निकालने के लिए लेखक आर्थिक रूप से मजबूती को बहुत अहम मानते थे, वे लिखते हैं, "बँधी -बँधाई आमदनी व्यक्ति को हौसला देती है। उसमें आत्मविश्वास पनपने लगता है।"[15] लेखक आत्मविश्वास को विद्रोह की पहली सीढ़ी मानते हैं। यही विद्रोह दलित समाज की मुक्ति का एकमात्र रास्ता है। लेखक उन्हीं समस्याओं के कारण और निवारण तक पहुँचते हैं।

जूठन में लेखक ने केवल भंगी समाज का यथार्थ प्रस्तुत नहीं किया है बल्कि समूची दलित जातियों की धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। वामपंथी विचारधारा के विरोध का स्वर इन आत्मकथा में देखने को मिलता है। नब्बे के दशक में जब भारत मंडल आयोग, बाबरी मस्जिद विध्वंस, संप्रदायी उन्माद, आरक्षण विरोधी आंदोलन आदि घटनाओं के करण सामाजिक राजनीतिक स्थिति बेहद संवेदनशील थी। सवर्ण समाज आरक्षण के विरोध में सड़कों पर उतर गया था, उसके विरोध में वाल्मीकि जी भी आरक्षण बचाओ आंदोलन और दलित समाज के उत्थान के लिए सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे। जिस कारण वामपंथी साथियों से उनका मतभेद हो गया। उन्होंने दो टूक अपने साथियों से कहा, "यदि दलितों के अधिकारों को आप (मार्क्सवादी) छीनने की कोशिश कर रहे हैं तो मैं आपके साथ नहीं हूँ।"[16] अपनी पुस्तक दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र में वाल्मीकि जी ने 'कब तक इन प्रश्नों से बचेगा मार्क्सवाद' शीर्षक के अंतर्गत मार्क्सवाद और दलित साहित्य के आपसी द्वंद को प्रस्तुत करते हैं। लेखक सोच विचार कर कहते हैं, 'वर्ण-व्यवस्था से छेड़-छाड़ किए बगैर वे मार्क्सवादी व्यवस्था को लगू करना चाहते हैं। गत पचास - साठ वर्षों में उनकी यह जंग दलितों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक हैसियत बढ़ाने में असमर्थ रही है।"[17] लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि दलित साहित्य मार्क्सवादी विचारधारा की विरोधी नहीं है। मार्क्सवादी चिंतक वर्ग के साथ वर्ण को भी अपने संघर्ष को आधार बना ले। वाल्मीकि जी के अनुसार इसी प्रकार जन सामान्य का उद्धार संभव है।

दलित समाज के अंदर भी जातिवादी भावना घर कर चुकी थी। इस जातिवादी मानसिकता से वाल्मीकि जी बेहद दुखी थे। महाराष्ट्र में अम्बेडकरीय चेतना से से महारों में शिक्षा का प्रसार हुआ, परंतु स्थानीय माँग-मेहतर निम्न जातियों में शिक्षा का अब भी अभाव था। दलित कार्यकर्ताओं में जुझारूपन तो था परंतु वह स्वयं जातिभेद की भावना के शिकार थे। लेखक लिखते हैं, "मेहतर बस्तियों में जाने के समय उनकी हिचकिचाहट साफ़ दिखाई देती थी। अंबेडकर जयंती कार्यक्रम में महार ही अधिक दिखाई देते थे… मेहतर बस्तियों में बाबा साहेब का संदेश पहुँचा ही नहीं था।"[18] इसका कर्ण यह था कि माँग -मेहतर समाज के सबसे निचले पायदान पर थे। वाल्मीकि का मानना है कि दलित आंदोलन के आपसी विरोध ने आंदोलन को बहुत नुकसान पहुंचाया है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आत्मकथा जूठन हिंदी साहित्य की एक अनूठी रचना है, जिसमें पूंजीवाद का विरोध, दलित समाज की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं की पहचान से लेकर दलित चेतना पर प्रकाश डाला गया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का सम्पूर्ण लेखन उनका भोगा हुआ यथार्थ है। उनकी आत्मकथा समाज की कड़वी और नंगी सच्चाई है। जब तक समाज में जात-पात, छुआ-छूत, भेदभाव और ऊंच-नीच का भाव रहेगा, तब तक वाल्मीकि जी की आत्मकथा समाज के कुंठित वर्ण-व्यवस्था से ग्रस्त मानसिक लोगों को आँख दिखाता रहेगा। वाल्मीकि जी के लेखन का प्रतिरोधी स्वर आत्मसम्मान की लड़ाई लड़ता है। वे समाज से मनुष्यता के पक्ष में होने की लड़ाई लड़ते हैं।आत्मकथा लिखन के लिए जिस प्रकार की तटस्थता, ईमानदारी, प्रमाणिकता, और बेबाकी की आवश्यकता होती है, वह सारे गुण वाल्मीकि जी में स्वतः देखने को मिलते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि का लेखन कलात्मक मानदंडों द्वारा चमत्कृत करने की चेष्टा न होकर दलित चेतना व मानव मूल्यों के लिए प्रत्यक्ष हस्तक्षेप है।

संदर्भ :

[1] वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2013, पृ. 7.

[2]मिश्र, शिवबाबू, जूठन: एक विमर्श, शब्दश्रुति प्रकाशन, दिल्ली,2006, पृ.14.

[3] वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1997, पृ. 7.

[4] कौशल, डॉ. ललिता, चर्चित हिंदी की दलित आत्मकथाएँ, गाजियाबाद, साहित्य संस्थान, 2010, पृ. 61

[5] वही, पृ. 45.

[6] गुप्ता, रमणिका, दलित चेतना-साहित्य एवं सामाजिक सरोकार, नई दिल्ली, समीक्षा प्रकाशन, 2001 पृ. 50.

[7] वही, पृ. 77.

[8] वही, पृ. 113.

[9] वही, पृ. 47.

[10] वही, पृ. 37.

[11] वही, पृ. 21.

[12] वही, पृ. 21.

[13] वही, पृ. 29.

[14] वही, पृ. 18.

[15] वही, पृ. 30.

[16] वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, दूसरा खंड, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 80.

[17] वाल्मीकि, ओमप्रकाश दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, पृ.59.

[18] वही, पृ. 134.

Received: 08.01.2026 | Accepted: 10.01.2026 | Published: 28.02.2026

तुलसीदास युगीन समाज

प्रभाकर प्रकाश*
prabhakarprakash0@gmail.com

प्रो. वज्रांग प्रताप केसरी†
bajrangpratap@gmail.com

शोध-सार :

यह शोध आलेख गोस्वामी तुलसीदास के समय की विषम सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का विस्तृत विश्लेषण करता है। लेखक के अनुसार, तुलसीदास का युग मुगलों के शासनकाल का था, जहाँ समाज नैतिक और आदर्शवादी मूल्यों से पूरी तरह च्युत हो चुका था। उच्च वर्ग विलासिता में डूबा था, जबकि सामान्य जनता अकाल, महामारी और भ्रष्टाचार से त्रस्त थी। आलेख स्पष्ट करता है कि उस काल में गुरु-शिष्य परंपरा, पारिवारिक संबंधों और वर्ण-धर्म का पतन हो चुका था और ढोंगी उपदेशकों का वर्चस्व था। लेखक ने प्रतिपादित किया है कि तुलसीदास ने इस जर्जर समाज को उबारने के लिए 'रामचरितमानस' के माध्यम से राम के रूप में एक ऐसे नायक को प्रस्तुत किया जो लोक-कल्याण और मानवीय मूल्यों के प्रतिष्ठाता हैं। आलेख यह भी रेखांकित करता है कि तुलसीदास ने अभिजात्य वर्ग की भाषा (संस्कृत) के स्थान पर लोकभाषा (अवधी) को चुनकर साहित्य को जन-जन तक पहुँचाया और परवर्ती कवियों के लिए एक नई परंपरा का सूत्रपात किया।

बीज शब्द :

मुगलकालीन समाज, सामाजिक विसंगति, रामचरितमानस, लोकभाषा, लोक-कल्याण, नैतिक पतन, वर्णाश्रम धर्म और सांस्कृतिक पुनर्जागरण।

मूल आलेख :

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन काल में मुसलमानों का शासन था। सामाजिक दशा बेहतर नहीं थी। उस समय का समाज अच्छे आदर्शों की ओर उन्मुख नहीं हो रहा था। उच्च वर्ग विलासिता के पंक में निमग्न, आत्म गौरव शून्य होकर यौवन संस्कृति के अंधानुकरण में तल्लीन था। सामान्य जनता संत्रस्त, असहाय तथा किंकर्तव्य विमूढ़ थी। जिसमें भी कींचित वाचलता तथा लोगों को दिग्भ्रमित करने की शक्ति होती वहीं पंडित, धर्माधिकारी नेता बनकर अपना उल्लू सीधा करता था। ऐसे व्यक्तियों के क्रियाकलापों द्वारा वर्ण व्यवस्था, ज्ञानोपार्जन एवं वेद पुराण की निंदा करके निर्गुण-निराकार ईश्वर की भक्ति का उपदेश करते थे। ऐसे उपदेशकों में कुछ तो ऊंचे महात्मा थे और कुछ तो अलख-अलख चिल्लाने वाले कोरे ढोंगी। यही नहीं बारंबार के अकाल, दुर्भिक्ष तथा महामारियों से लोग इतने व्याकुल थे कि वह निश्चय नहीं कर पाते थे कि कहां जाएं और क्या करें?

परिवार में एकजुटता की कमी होती जा रही थी। शादी-विवाह हो जाने के बाद पुत्र माता-पिता का सम्मान नहीं करते थे। अनचारी तथा आतातायी व्यक्ति निकटवर्ती संबंधियों तक के प्रति कुदृष्टि रखते थे। चोरी और उच्चश्रृंखलता का प्राचुर्य था।

तुलसीदास के समय में जर्जर, भ्रष्ट एवं आदर्श हीन समाज था। तुलसीदास की दृष्टि इन सब पर पड़ती थी तो वे व्याकुल हो जाते थे। उनके हृदय में समाज के दारुण दृश्य कसक एवं पीड़ा उत्पन्न करते थे। वे चीत्कार करने लगते।तुलसी साहित्य में तुलसी की अन्तर्वेदना भली प्रकार परिव्याप्त है।

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार**

†**शोध निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार**

सामाजिक परिवेश :-

तुलसी का कथन है कि इस समय सभी सद्ग्रंथ लुप्त हो रहे थे, पाखंडियों ने अपनी बुद्धि से गढ़ गढ़ाकर बहुत से मार्ग बना लिए। सब लोग मोह के वश में हो गए और शुभ कर्मों को लोभ ने डस लिया। चारों वर्णों एवं चारो आश्रमों के धर्म नहीं रह गए, सब स्त्री-पुरुष वेद के विरोध में लगे रहते। ब्राह्मण वेदों को बेचने वाले, राजा प्रजा को खा जाने वाले हो गए हैं। कोई भी वेद की आज्ञा नहीं मानता। जिसे जो अच्छा लगता है उसी को वेद मार्ग कहता है और जो गाल बजाता है वही पंडित कहलाता है। जिसके कार्यों का मूल ही मिथ्या है जो ऐसे कार्य एवं दंभो में अनुरक्त है उसी को सब संत कहते हैं। जो पराया धन हड़प करें वही चतुर कहलाता है। जो दंभी हो वही बड़ा आचार्य और जो झूठ बोले तथा उस झूठ को हंसी दिल्लगी समझे वही बड़ा गुणवान कहलाता है। जो शुद्ध आचरण, सदाचार और आचार-विचार से हीन तथा वेद मार्गों का परित्याग किए हुए है वही ज्ञानी और बैरागी कहलाते हैं। जिनके बड़े-बड़े नाखून एवं बड़ी-बड़ी जटाए हैं वे ही तपस्वी कहलाते हैं। जो अमंगल वेश और अमंगल आभूषण धारण करें तथा जो मांस-मदिरा आदि भक्ष्याभक्ष्य कहते हैं वे ही योगी और सिद्ध पुरुष माने जाते हैं। उनकी मान प्रतिष्ठा होती है और वही पूज्य माने जाते हैं। जो अपकारी एवं चुगलखोर है उनका ही बड़ा महत्व है और वे ही प्रतिष्ठा के योग्य माने जाते हैं। जो व्यक्ति मन, वचन, कर्म से झूठी डींगे मारा करते हैं वही वक्ता कहे जाते हैं।

सभी मनुष्य काम, क्रोध और लोभ में तत्पर हो गए हैं तथा देवता, ब्राह्मण, वेद और संतों का विरोध करते हैं। सुंदरगुण धाम एवं सुंदर रूप संपन्न पति को छोड़कर अभागिनी स्त्रियां पर पुरुष के साथ रति करती हैं। सुहागिन स्त्रियां तो आभूषण हीन होती हैं और विधवाओं के नित्य नए श्रृंगार होते हैं। गुरु और शिष्य का संबंध अंधे और बहरे जैसा हो गया है क्योंकि शिष्य सुनता नहीं और गुरु देखा नहीं। गुरु-शिष्यों का धन तो हरण करते हैं किंतु उनका शोक हरण नहीं करते। माता-पिता बालकों को पास बुलाकर पेट भरने का धर्म सीखाते हैं। स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान के सिवा दूसरी बात ही नहीं करते और लोभ वश कौड़ी के लिए विप्र और गुरु की हत्या करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के उत्तराकांड में दिन-प्रतिदिन परिवर्तित होने वाले समाज का अत्यंत जीता- जागता चित्र अंकित किया है। जो बहुत कुछ आज के यथार्थ जीवन की ओर संकेत कर रहा है। बदलते हुए मूल्यों को प्रकट कर रहा है, बदलती हुई मानव- मनुवृत्तियों का परिचायक है।जो परिवर्तित आचार-विचारों को बता रहा है, दूषित वातावरण की ओर इंगित कर रहा है। इसी आधार पर आज हम यह दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि तुलसी कोई साधारण कवि नहीं थे वरन् भविष्यदृष्टा और भगवद्भक्ति संपन्न मनीषी संत थे।

राजनीतिक परिवेश:-

गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव जिस समय हुआ था उस समय देश में मुगलों का शासन था। मुगलकालीन शासक भौतिकवाद को ही सर्वोपरि समझते थे और सत्ता सुख को जीवन का उद्देश्य समझते थे। मुगलकालीन शासन में पिता को कैद कर और भाई को कत्ल कर राज गद्दी हासिल करने की परंपरा विद्यमान थी। उसे समय रक्तीय संबंध तार-तार हो चुके थे। सत्ता-सुख, ऐशो-आराम आदि जीवन का चरम लक्ष्य बन गया था। गोस्वामी जी ने जब देश की ये दुर्गति देखी तो उन्होंने यह महसूस किया कि हमें साहित्य के माध्यम से ऐसे प्रतिमान स्थापित करना चाहिए जो की समस्त मानवी मूल्य के प्रतिष्ठाता हों। इसी संदर्भ में उन्होंने रामचरितमानस का प्रणयन करते हुए राम को इसका नायक बनाया। यह वही राम है जिनको सर्वसम्मति से युवराज बनाने का निर्णय होता है लेकिन कैकयी के षड्यंत्र द्वारा उन्हें जंगल जाने के नौबत आ आती है तो वह बिना किसी उहा-पोह के पिता की मन: स्थिति को मापते हुए स्वयं अपना कर्तव्य निश्चित करते हुए जंगल जाने को प्रस्तुत हो जाते हैं। राम समस्त मूल्यों के प्रतिष्ठाता हैं।

गोस्वामी तुलसीदास राम के चरित्र के द्वारा समस्त जनमानस को यह संदेश देते हैं कि जिस देश में भाई-भाई को कत्ल करके, पिता को कैद करके राजगद्दी हासिल करने की परंपरा थी इस देश के नायक राम राजसी सुख को त्याग कर जंगल जाने को तैयार हो जाते हैं। यह है राम की गरिमा। प्रकारांतर में गोस्वामी तुलसीदास ने आम जनमानस में यह संदेश दिया है कि राजा का पद भोग- विलास और निजी सुख के लिए नहीं होता है अपितु लोक-कल्याण और जनता के हित के लिए होता है। कोई व्यक्ति ज्यों ही राजा के पद को धारण करता है त्यों ही उसका जीवन निजी-जीवन नहीं रह जाता है बल्कि उसका जीवन आम जनता के लिए, लोक कल्याण के लिए समर्पित हो जाता है।

धार्मिक परिवेश:-

गोस्वामी तुलसीदास मुगल सम्राट अकबर के समकालीन थे। अकबर का शासन काल भारत के सभी मुगल शासको में श्रेष्ठ माना जाता रहा है फिर भी पराधीनता तो पराधीनता ही कहलाती है। जब देश में मुगलों का आधिपत्य था और अकबर द्वारा चलाया गया दिन-ए-इलाही धर्म के नाम पर षड्यंत्र करके हिंदुओं को धर्मांतरित करने का सफल प्रयास किया जा रहा था ऐसा कहा जा सकता है। ऐसे में मुसलमानों की संस्कृति के प्रभाव में आकर हिंदू समुदाय अपने आदर्शों को भूल कर उसी प्रकार आत्मसात कर रहा था जिस प्रकार अंग्रेजी शासन की समाप्ति के बाद आधुनिक काल में पाश्चात्य संस्कृति अपनाई जा रही थी। पारिवारिक जीवन में घर विकृति आ गई थी। लोग आलसी और कामचोर होते जा रहे थे। अक्रमण्यता को वैराग्य के बहाने छुपाया जा रहा था। जीवन के संघर्षो से भाग कर बैरागी होना आम बात हो गई थी।

"नारि मुई गृह संपत्ति नाही, मूड मुढाए होहिं संन्यासी।"[1]

विभिन्न धर्मावलंबी लोगों के बीच भारी कटुता विद्यमान थी। एक धर्म के मानने वाले दूसरे धर्म के लोगों से काफी ईर्ष्या-द्वैष रखते थे। यथा शैव, वैष्णव शाक्त में आपसी वैमनस्य चरम सीमा पर था। यही नहीं वरन् वर्णाश्रम धर्म का लोप एवं वैदिक सिद्धांतों का तिरस्कार हो रहा था। नाना प्रकार के भेष बनाकर लोग भोले-भाले मानवों को ठग रहे थे –

"वरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुशासन।।
मारग सोई जा कहूं जोई भावा। पंडित सोई जो गाल बजावा।।
जाके नख अरू जटा बिसाला। सोई तापस प्रसिद्ध कलि काला।।"[2]

सांस्कृतिक परिवेश:-

तुलसीदास के रचनात्मक काव्य में सांस्कृतिक उत्कर्ष युगीन संदर्भ में देखा जा सकता है। यहां मात्र तुलसी का सांस्कृतिक रूप ही नहीं दिखाई देता अपितु यह साध्य के रूप में भी दिखाई देता है। इस समय नाथ पंथी सिद्धों के अलावा शैव और शाक्त जैसे भक्ति पंथ यहां पहले से ही विद्यमान थे। कहने का तात्पर्य यह है कि यह एक सामाजिक और सांस्कृतिक समर्पण का काल था, फिर भी तुलसीदास उन ताकतों को सामाजिक विचलन का उत्तरदाई मानते हैं जो भारतीय संस्कृति के हितकर नहीं थी। ऐसे समाज विरोधी कारकों को तुलसीदास आड़े हाथों लेते हुए भारतवर्ष की आध्यात्मिक संस्कृति के उत्कर्ष को प्रस्तुत करते हैं-

"देखत भीम रूप सब पापी। निसिचर निकर देव परिपाती।।
जेहि विधि होई धर्म निर्मला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला।।
नहिं हरि भगति जग्य तप ज्ञाना। सपनेहु सुनिअ न वेद पुराना।।
अब भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।।
तेहि बहु विधि त्रासइ देस निकासई जो कह वेद पुराना।।"[3]

भारतीय संस्कृति में मानवीय मूल्यों की सनातन परंपरा रही है। इसके अंतर्गत उन आदर्शो को समाज में स्वीकृति मिलती है जो जीवन को सृजनशील बना पाने में समर्थ होते हैं। सदाचरण और शिष्टाचार सभी सांस्कृतिक मूल्यों का अवलंबन है। तुलसी साहित्य में इस पर बल दिया गया है कि यदि समाज के सामने राम जैसा आदर्श-व्यक्तित्व है तो निश्चित रूप से उन विकल्पों का क्रियान्वयन किया जा सकता है जिसे सामाजिक विषमताओं का निराकरण किया जा सके। समाज में वर्गीय व्यवस्था हो इसके लिए तुलसीदास वर्णाश्रम पद्धति का अनुकरण करते हैं। इसे वे सामाजिक, संस्कृतिक वैविध्य एवं कौशल का आधार भी मानते थे। इसके अभाव में ही समाज में बिखराब उत्पन्न होता है। रामचरितमानस में विविध स्थलों पर इस व्यवस्था के उत्कृष्ट रूप को देखा जा सकता है।

धार्मिक आंदोलन का प्रभाव भी भक्तिकाल पर देखा जा सकता है। तुलसीदास का संस्कृतिक दर्शन विविध संप्रदायों से प्रभावित रहा है। बौद्ध, जैन शैव, शाक्त और वैष्णव धर्मों की साधना तथा भक्ति पद्धतियों ने इस काल को सांस्कृतिक तत्वों से समृद्ध किया है। इन धार्मिक पंथों का दर्शन अलग-अलग आवश्यक था परंतु मानवीय मूल्य का रूप एक ही था। धर्म

संस्कृति का मूल होता है और तुलसीदास राम के आदर्श चरित्र का रेखांकन करते हैं जो धर्म परायण है। परोपकार एवं सत्य उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं-

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई।"[4]

साहित्यिक परिवेश:-

गोस्वामी तुलसीदास का प्रादुर्भाव जिस समय में हुआ उस समय का साहित्य या तो उर्दू-फारसी में लिखा जा रहा था या संस्कृत में। आम जनता उन दोनों प्रकार के साहित्य से कटी हुई थी। आम जनता इन साहित्य से सर्वथा अनभिज्ञ थी। इसी कारण इस प्रकार के साहित्य को लोकप्रियता नहीं प्राप्त थी। आम जनमानस में इस प्रकार का साहित्य कोई स्थान नहीं बना पा रहा था। अतः ऐसे साहित्य की पहुंच कुछ खास अभिजात्य वर्ग के लोगों तक ही सीमित रह जाती थी। गोस्वामी तुलसीदास ने पहले संस्कृत में ही लिखना प्रारंभ किया था। उसे समय जो पद ये दिन में लिखते थे वे रात में सब तिरोहित (लुप्त) हो जाते थे। यह घटना आठ दिनों तक चलती रही। इस कारण गोस्वामी दास बहुत चिंतित रहने लगे।

आठवें दिन भगवान शंकर ने स्वप्न में गोस्वामी जी को दर्शन दिया और बोले तुम अयोध्या में जाकर रहो तथा लोकभाषा में राम की कथा को लिपिबद्ध करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी यह रचना सामवेद सामान फलवती होगी।

तुलसीदास भगवान शिव की आज्ञा से अयोध्या चले आए तथा संवत् 1961 के रामनवमी के दिन रामचरितमानस की रचना प्रारंभ की। 2 वर्ष 7 महीने 26 दिन में इस ग्रंथ की समाप्ति हुई।

ग्रंथ की पूर्णता के बाद तुलसीदास पुनः काशी आ गए। काशी के पंडितों ने पहले तो इस ग्रंथ का विरोध किया लेकिन श्री मधुसूदन सरस्वती जैसे विद्वान ने मानस की काफी प्रशंसा की। फिर भी पंडितों ने भगवान विश्वनाथ के सामने सबसे ऊपर वेद फिर शास्त्र फिर पुराण और फिर सबके नीचे रामचरितमानस को रखकर मंदिर में बंद कर दिया। प्रातः काल जब मंदिर खोला गया तो लोगों ने मानस को सबसे ऊपर पाया। इसके बाद पंडित लोग बहुत लज्जित हुए। उन्होंने तुलसीदास से क्षमा मांगी। इसके बाद मानस का प्रचार -प्रसार स्वत: काफी बढ़ गया। इसके अनंतर गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका की रचना की। उन्होंने इसे श्री राम को चरणों में अर्पित कर दिया।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट होता है कि गोस्वामी तुलसीदास का युग सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत विषम और संक्रमणकालीन था। समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास, पारिवारिक विघटन, धार्मिक पाखंड, तथा राजनीतिक स्वार्थपरता व्यापक रूप से विद्यमान थी। ऐसे संकटपूर्ण समय में तुलसीदास ने अपने साहित्य, विशेषतः रामचरितमानस के माध्यम से आदर्श समाज की परिकल्पना प्रस्तुत की।

उन्होंने राम के चरित्र के द्वारा लोक-कल्याण, धर्मनिष्ठा, त्याग और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की, जिससे समाज को एक नैतिक दिशा प्राप्त हुई। साथ ही, लोकभाषा के प्रयोग द्वारा उन्होंने साहित्य को जन-सुलभ बनाकर सांस्कृतिक पुनर्जागरण का मार्ग प्रशस्त किया। अतः कहा जा सकता है कि तुलसीदास केवल युगद्रष्टा ही नहीं, बल्कि समाज-संरक्षक एवं सांस्कृतिक पुनर्निर्माता भी थे, जिनका साहित्य आज भी प्रासंगिक और प्रेरणादायी है।

संदर्भ :

१. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). *रामचरितमानस* (उत्तरकांड, कलियुग वर्णन की पंक्ति). गीताप्रेस, गोरखपुर. (मूल रचना ल गभग १५७४ में प्रकाशित). (उदाहरण: "जब लगि जगत कलि कलुषानंदी . तब लगि रहि नरक नरकानंदी ॥").

२. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). *रामचरितमानस* (उत्तरकांड, कलियुग वर्णन). गीताप्रेस, गोरखपुर.

३. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). *रामचरितमानस* (बालकांड). गीताप्रेस, गोरखपुर. (मूल लगभग १५७४ में प्रकाशित).

४. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). *रामचरितमानस* (उत्तरकांड). गीताप्रेस, गोरखपुर.

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 09.01.2026 | Accepted: 15.01.2026 | Published: 28.02.2026

डिजिटल बैंकिंग और ग्रीन बैंकिंग के एकीकरण का उपभोक्ता व्यवहार पर प्रभाव

अभिषेक ठाकुर*

abhi.thakur133@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र डिजिटल बैंकिंग और ग्रीन बैंकिंग के एकीकृत प्रभाव का उपभोक्ता व्यवहार पर विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वर्तमान वैश्विक आर्थिक एवं पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में बैंकिंग क्षेत्र की भूमिका केवल वित्तीय सेवाओं तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह सतत विकास को भी प्रभावित कर रही है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य दुर्ग जिले के उपभोक्ताओं के बीच डिजिटल और ग्रीन बैंकिंग के उपयोग, जागरूकता तथा व्यवहारिक प्रभाव का विश्लेषण करना है। अध्ययन में 80 उत्तरदाताओं से प्राथमिक डेटा संरचित प्रश्नावली के माध्यम से संकलित किया गया तथा द्वितीयक डेटा विभिन्न रिपोर्ट्स, शोध पत्रों और प्रकाशनों से लिया गया है। विश्लेषण के लिए प्रतिशत, सहसंबंध और व्याख्यात्मक तकनीकों का उपयोग किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि डिजिटल बैंकिंग के उपयोग में वृद्धि ग्रीन बैंकिंग के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और व्यवहार को बढ़ावा देती है।

भूमिका

आधुनिक वैश्विक परिदृश्य में पर्यावरणीय असंतुलन, जलवायु परिवर्तन तथा संसाधनों की कमी ने आर्थिक गतिविधियों के स्वरूप को प्रभावित किया है। सतत विकास की अवधारणा इन चुनौतियों के समाधान के रूप में उभरकर सामने आई है, जिसमें आर्थिक प्रगति के साथ पर्यावरणीय संरक्षण को समान महत्व दिया जाता है। बैंकिंग क्षेत्र, जो अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, अब केवल वित्तीय सेवाओं तक सीमित नहीं रहा बल्कि पर्यावरणीय उत्तरदायित्व को भी आत्मसात कर रहा है। डिजिटल बैंकिंग ने बैंकिंग सेवाओं को अधिक सुलभ, तेज और पारदर्शी बनाया है। वहीं ग्रीन बैंकिंग ने पर्यावरण-अनुकूल बैंकिंग प्रथाओं को बढ़ावा दिया है। इन दोनों का एकीकरण न केवल संचालन दक्षता को बढ़ाता है बल्कि पर्यावरणीय प्रभाव को भी कम करता है। दुर्ग जिले जैसे औद्योगिक क्षेत्र में इस विषय का अध्ययन विशेष महत्व रखता है क्योंकि यहां डिजिटल सेवाओं का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। इसके अतिरिक्त, सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने उपभोक्ताओं की अपेक्षाओं और व्यवहार में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। आज उपभोक्ता तेज, सुरक्षित और पर्यावरण-अनुकूल सेवाओं की मांग करते हैं। बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ने के कारण बैंक भी ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए डिजिटल और ग्रीन पहलों को अपनाने लगे हैं। डिजिटल और ग्रीन बैंकिंग का एकीकरण न केवल तकनीकी नवाचार का उदाहरण है बल्कि यह सामाजिक और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का भी प्रतीक है। यह अध्ययन इस बात को समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार ये दोनों पहल उपभोक्ता के निर्णय, दृष्टिकोण और व्यवहार को प्रभावित करती हैं।

इसके साथ ही, यह भी महत्वपूर्ण है कि उपभोक्ताओं में जागरूकता और व्यवहार के बीच अंतर को समझा जाए, ताकि प्रभावी नीतियां और रणनीतियां विकसित की जा सकें। वर्तमान अध्ययन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है, जो स्थानीय स्तर पर व्यवहारिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

डिजिटल बैंकिंग: सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक विश्लेषण

डिजिटल बैंकिंग का आशय उन बैंकिंग सेवाओं से है जो डिजिटल माध्यमों के द्वारा प्रदान की जाती हैं। इसमें मोबाइल बैंकिंग, इंटरनेट बैंकिंग, डिजिटल भुगतान प्रणाली, एटीएम सेवाएं आदि शामिल हैं। डिजिटल बैंकिंग का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को सुविधा, गति और पारदर्शिता प्रदान करना है।

***अतिथि व्याख्याता; वाणिज्य, चैयतू गायता (आलोर) शासकीय महाविद्यालय, फरसगांव, कोंडागांव (छ. ग.)**

डिजिटल बैंकिंग के माध्यम से उपभोक्ता किसी भी समय और स्थान से बैंकिंग सेवाओं का उपयोग कर सकते हैं। इससे न केवल समय की बचत होती है बल्कि लागत भी कम होती है। इसके अतिरिक्त, डिजिटल रिकॉर्डिंग प्रणाली से लेन-देन में पारदर्शिता बढ़ती है और धोखाधड़ी की संभावना कम होती है। दुर्ग जिले में डिजिटल बैंकिंग का उपयोग तेजी से बढ़ा है, विशेष रूप से युवा और शिक्षित वर्ग में।

ग्रीन बैंकिंग: अवधारणा एवं महत्व

ग्रीन बैंकिंग का उद्देश्य पर्यावरण के अनुकूल बैंकिंग प्रणाली को बढ़ावा देना है। इसमें पेपरलेस बैंकिंग, ऑनलाइन लेन-देन, ऊर्जा की बचत और ग्रीन प्रोजेक्ट्स को वित्तपोषण शामिल है। यह बैंकिंग क्षेत्र को पर्यावरणीय दृष्टि से जिम्मेदार बनाता है।

ग्रीन बैंकिंग के माध्यम से कागज के उपयोग में कमी आती है, जिससे वनों की कटाई को रोका जा सकता है। इसके अलावा, ऑनलाइन सेवाओं के माध्यम से ऊर्जा की खपत भी कम होती है। यह बैंकिंग प्रणाली को अधिक टिकाऊ बनाता है और पर्यावरण संरक्षण में योगदान देता है।

साहित्य समीक्षा

1- Kumar एवं Singh (2021) ने अपने अध्ययन में पाया कि डिजिटल बैंकिंग सेवाओं के विस्तार ने उपभोक्ताओं की सुविधा, संतुष्टि और बैंकिंग सेवाओं के उपयोग में उल्लेखनीय वृद्धि की है। उनके अनुसार, मोबाइल बैंकिंग और UPI जैसी सेवाओं ने उपभोक्ताओं के व्यवहार को पारंपरिक बैंकिंग से डिजिटल माध्यमों की ओर परिवर्तित किया है। उन्होंने यह भी बताया कि डिजिटल साक्षरता और इंटरनेट की उपलब्धता डिजिटल बैंकिंग अपनाने के प्रमुख निर्धारक हैं।

2- Sharma (2020) ने ग्रीन बैंकिंग पर अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला कि बैंकिंग क्षेत्र में पर्यावरण-अनुकूल पहलों जैसे पेपरलेस बैंकिंग, ग्रीन फाइनेंस और ऊर्जा-कुशल संचालन से न केवल पर्यावरण संरक्षण में मदद मिलती है बल्कि यह उपभोक्ताओं के बीच सकारात्मक छवि भी बनाता है। उनके अध्ययन में यह भी पाया गया कि ग्रीन बैंकिंग के प्रति जागरूकता उपभोक्ता के व्यवहार को प्रभावित करती है और उन्हें पर्यावरण के प्रति जिम्मेदार बनाती है।

शोध अंतर

हालांकि डिजिटल और ग्रीन बैंकिंग पर अलग-अलग अध्ययन किए गए हैं, लेकिन इनके एकीकृत प्रभाव का विश्लेषण विशेष रूप से छोटे शहरों में कम किया गया है। दुर्ग जिले में इस विषय पर शोध का अभाव है, जिसे यह अध्ययन पूरा करता है।

शोध के उद्देश्य

अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित बिंदुओं में प्रस्तुत किए जा सकते हैं:

1. डिजिटल बैंकिंग की अवधारणा, स्वरूप एवं उसके उपयोग के स्तर को समझना।
2. ग्रीन बैंकिंग की अवधारणा तथा उसके पर्यावरणीय एवं आर्थिक महत्व का विश्लेषण करना।
3. दुर्ग जिले के बैंक उपभोक्ताओं में ग्रीन बैंकिंग के प्रति जागरूकता के स्तर का मूल्यांकन करना।
4. डिजिटल बैंकिंग और ग्रीन बैंकिंग के एकीकरण का उपभोक्ता व्यवहार पर प्रभाव का अध्ययन करना।
5. उपभोक्ताओं के दृष्टिकोण, विश्वास एवं संतुष्टि का विश्लेषण करना।

परिकल्पनाएं

H1: डिजिटल बैंकिंग का उपयोग ग्रीन बैंकिंग व्यवहार को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

H2: ग्रीन बैंकिंग जागरूकता और उपभोक्ता व्यवहार के बीच सकारात्मक संबंध है।

H3: शिक्षा स्तर का ग्रीन बैंकिंग अपनाने पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन की शोध पद्धति को संक्षेप में निम्न बिंदुओं में प्रस्तुत किया गया है:

1. **शोध का प्रकार एवं प्रकृति:** यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक तथा अनुभवजन्य प्रकृति का है, जिसमें वास्तविक आंकड़ों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं।
2. **डेटा के स्रोत:** प्राथमिक डेटा संरचित प्रश्नावली के माध्यम से तथा द्वितीयक डेटा RBI रिपोर्ट, शोध पत्रों एवं बैंकिंग प्रकाशनों से प्राप्त किया गया है।
3. **नमूना एवं क्षेत्र:** अध्ययन हेतु 80 उत्तरदाताओं का चयन सुविधा नमूनाकरण पद्धति से किया गया है तथा अध्ययन क्षेत्र दुर्ग जिला (छत्तीसगढ़) है।
4. **विश्लेषण की विधि:** संकलित आंकड़ों का विश्लेषण प्रतिशत, सहसंबंध एवं सरल व्याख्यात्मक तकनीकों के माध्यम से किया गया है।

प्राथमिक डेटा विश्लेषण

तालिका 1: डिजिटल बैंकिंग उपयोग स्तर

स्तर	संख्या	प्रतिशत
उच्च	40	50%
मध्यम	25	31%
निम्न	15	19%

तालिका 01 से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में डिजिटल बैंकिंग का उपयोग संतोषजनक स्तर पर है। कुल उत्तरदाताओं में से 50% उपभोक्ता डिजिटल बैंकिंग का उच्च स्तर पर उपयोग कर रहे हैं, जो यह दर्शाता है कि क्षेत्र में तकनीकी स्वीकार्यता और डिजिटल साक्षरता का स्तर अच्छा है। वहीं 31% उत्तरदाता मध्यम स्तर के उपयोगकर्ता हैं, जो समय-समय पर डिजिटल सेवाओं का उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त 19% उत्तरदाता अभी भी निम्न स्तर पर डिजिटल बैंकिंग का उपयोग कर रहे हैं, जो पारंपरिक बैंकिंग प्रणाली पर उनकी निर्भरता को दर्शाता है। यह अंतर शिक्षा, आय, तकनीकी ज्ञान और इंटरनेट की उपलब्धता जैसे कारकों के कारण हो सकता है। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि डिजिटल बैंकिंग की पहुंच बढ़ रही है, लेकिन इसके व्यापक उपयोग के लिए अभी भी जागरूकता और प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

तालिका 2: ग्रीन बैंकिंग जागरूकता

स्तर	संख्या	प्रतिशत
जागरूक	48	60%
अनजान	32	40%

तालिका 02 के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में ग्रीन बैंकिंग के प्रति उपभोक्ताओं की जागरूकता मध्यम स्तर की है। कुल उत्तरदाताओं में से 60% उपभोक्ता ग्रीन बैंकिंग की अवधारणा से परिचित हैं, जो यह दर्शाता है कि पर्यावरण-अनुकूल बैंकिंग प्रथाओं के प्रति धीरे-धीरे जागरूकता बढ़ रही है। वहीं 40% उत्तरदाता ऐसे हैं जिन्हें ग्रीन बैंकिंग के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं है, जो जागरूकता की कमी को इंगित करता है। यह अंतर मुख्यतः शिक्षा स्तर, सूचना के स्रोत, तथा बैंकिंग सेवाओं के उपयोग के स्तर पर निर्भर करता है। जिन उपभोक्ताओं का डिजिटल बैंकिंग से अधिक जुड़ाव है, उनमें ग्रीन बैंकिंग के प्रति जागरूकता भी अधिक पाई गई। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि ग्रीन बैंकिंग को व्यापक स्तर पर अपनाने के लिए जागरूकता अभियानों एवं प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है।

तालिका 3: उपभोक्ता व्यवहार पर प्रभाव

प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
सकारात्मक	50	62%
तटस्थ	20	25%
नकारात्मक	10	13%

तालिका 03 से यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल बैंकिंग और ग्रीन बैंकिंग के एकीकरण का उपभोक्ता व्यवहार पर मुख्यतः सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। कुल 62% उत्तरदाताओं ने इस प्रभाव को सकारात्मक बताया है, जो यह दर्शाता है कि अधिकांश उपभोक्ता इन दोनों पहलों को स्वीकार कर रहे हैं और उनके प्रति अनुकूल दृष्टिकोण रखते हैं। लगभग 25% उत्तरदाता तटस्थ रहे, जिससे संकेत मिलता है कि वे अभी भी पूरी तरह आश्वस्त नहीं हैं या उनका अनुभव सीमित है। वहीं 13% उत्तरदाताओं ने नकारात्मक प्रभाव व्यक्त किया, जो तकनीकी जटिलता, जागरूकता की कमी या विश्वास के अभाव के कारण हो सकता है। यह परिणाम दर्शाता है कि डिजिटल और ग्रीन बैंकिंग उपभोक्ताओं के व्यवहार को प्रभावित कर रही है, लेकिन इसके पूर्ण प्रभाव के लिए जागरूकता, प्रशिक्षण और भरोसे को और मजबूत करने की आवश्यकता है।

द्वितीयक आंकड़ों का विश्लेषण

द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भारत में डिजिटल बैंकिंग एवं ग्रीन बैंकिंग दोनों क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। भारतीय रिज़र्व बैंक की *वार्षिक रिपोर्ट (2022)* के अनुसार, हाल के वर्षों में डिजिटल लेन-देन विशेषकर UPI, मोबाइल बैंकिंग एवं इंटरनेट बैंकिंग के माध्यम से तेजी से बढ़े हैं, जिससे बैंकिंग सेवाएं अधिक सुलभ, पारदर्शी एवं समय-कुशल बनी हैं। इसके साथ ही, विश्व बैंक की *Global Financial Development Report* में भी यह उल्लेख किया गया है कि डिजिटल वित्तीय सेवाएं वित्तीय समावेशन को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। भारतीय स्टेट बैंक एवं अन्य प्रमुख बैंकों की *Sustainability Reports* में यह दर्शाया गया है कि पेपरलेस बैंकिंग, ई-स्टेटमेंट एवं ऑनलाइन सेवाओं के माध्यम से पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के प्रयास किए जा रहे हैं। वहीं नाबार्ड की रिपोर्ट्स में ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल एवं ग्रीन बैंकिंग के प्रसार की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

हालांकि इन रिपोर्ट्स से यह भी स्पष्ट होता है कि संस्थागत स्तर पर ग्रीन बैंकिंग की पहल तेजी से बढ़ रही है, लेकिन उपभोक्ता स्तर पर इसकी जागरूकता अभी भी सीमित है, विशेषकर छोटे शहरों एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों में। अतः यह आवश्यक है कि डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से ग्रीन बैंकिंग सेवाओं का अधिक प्रचार-प्रसार किया जाए तथा उपभोक्ताओं को इसके लाभों के प्रति जागरूक किया जाए।

अध्ययन के प्रमुख तथ्य

अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि डिजिटल बैंकिंग और ग्रीन बैंकिंग का एकीकृत प्रभाव उपभोक्ता व्यवहार को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर रहा है। दुर्ग जिले के संदर्भ में किए गए इस शोध में पाया गया कि डिजिटल बैंकिंग का बढ़ता उपयोग न केवल बैंकिंग सेवाओं को सरल और सुलभ बना रहा है, बल्कि यह ग्रीन बैंकिंग को भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहित कर रहा है। जिन उपभोक्ताओं ने डिजिटल माध्यमों को अधिक अपनाया है, वे पर्यावरण-अनुकूल बैंकिंग सेवाओं जैसे ई-स्टेटमेंट, ऑनलाइन ट्रांजेक्शन और पेपरलेस प्रक्रियाओं के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि जागरूकता, शिक्षा स्तर और डिजिटल साक्षरता उपभोक्ता व्यवहार को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं। हालांकि, कुछ उपभोक्ताओं में अभी भी जागरूकता की कमी और तकनीकी असुविधा देखी गई, जो ग्रीन बैंकिंग के पूर्ण क्रियान्वयन में बाधा बनती है। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि डिजिटल और ग्रीन बैंकिंग का समन्वय सतत विकास की दिशा में एक प्रभावी कदम है, जिसे और अधिक मजबूत करने की आवश्यकता है **:-**

1. डिजिटल बैंकिंग का उच्च उपयोग ग्रीन बैंकिंग अपनाने की प्रवृत्ति को बढ़ाता है।
2. ग्रीन बैंकिंग के प्रति जागरूकता मध्यम स्तर की है, जिसे और बढ़ाने की आवश्यकता है।
3. शिक्षित एवं युवा वर्ग में डिजिटल एवं ग्रीन बैंकिंग का उपयोग अधिक

सुझाव

1. बैंकों को ग्रीन बैंकिंग के प्रति उपभोक्ताओं में जागरूकता बढ़ाने हेतु नियमित अभियान एवं प्रचार कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए।
2. डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रशिक्षण एवं जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए, विशेषकर ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों में।
3. उपभोक्ताओं को पेपरलेस बैंकिंग अपनाने के लिए प्रोत्साहन (जैसे कैशबैक, कम चार्ज) प्रदान किए जाने चाहिए।
4. डिजिटल बैंकिंग प्लेटफॉर्म को अधिक सुरक्षित, सरल एवं उपयोगकर्ता-अनुकूल बनाया जाना चाहिए ताकि सभी वर्ग के लोग आसानी से इसका उपयोग कर सकें।
5. ग्रीन बैंकिंग से संबंधित योजनाओं एवं सुविधाओं का व्यापक प्रचार डिजिटल माध्यमों एवं सोशल मीडिया के द्वारा किया जाना चाहिए।
6. कम शिक्षित एवं वरिष्ठ नागरिकों के लिए विशेष सहायता केंद्र या हेल्प डेस्क की व्यवस्था की जानी चाहिए।
7. सरकार एवं बैंक मिलकर सतत विकास को बढ़ावा देने हेतु प्रभावी नीतियां एवं वित्तीय सहायता प्रदान करें।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल बैंकिंग और ग्रीन बैंकिंग का एकीकरण उपभोक्ता व्यवहार पर महत्वपूर्ण और सकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। दुर्ग जिले के संदर्भ में यह पाया गया कि डिजिटल बैंकिंग के बढ़ते उपयोग ने ग्रीन बैंकिंग के प्रति जागरूकता एवं स्वीकार्यता को बढ़ावा दिया है। जो उपभोक्ता डिजिटल सेवाओं का अधिक उपयोग करते हैं, वे पर्यावरण-अनुकूल बैंकिंग उपायों को अपनाने के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि शिक्षा स्तर, आय, तथा डिजिटल साक्षरता उपभोक्ता व्यवहार को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं। हालांकि, कुछ उपभोक्ताओं में अभी भी जागरूकता की कमी, तकनीकी जटिलता तथा सुरक्षा संबंधी चिंताएं देखी गई हैं, जो ग्रीन बैंकिंग के पूर्ण विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। इसके अतिरिक्त, यह भी पाया गया कि डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से ग्रीन बैंकिंग सेवाओं का प्रचार-प्रसार अधिक प्रभावी हो सकता है। यदि बैंक और सरकार मिलकर जागरूकता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बढ़ावा दें, तो ग्रीन बैंकिंग को व्यापक स्तर पर अपनाया जा सकता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि डिजिटल और ग्रीन बैंकिंग का समन्वय न केवल बैंकिंग प्रणाली को अधिक कुशल और पारदर्शी बनाता है, बल्कि यह सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। भविष्य में इस क्षेत्र में और अधिक शोध की आवश्यकता है ताकि नीति निर्माण और व्यावहारिक क्रियान्वयन को और प्रभावी बनाया जा सके।

संदर्भ

1. कुमार, आर., एवं सिंह, पी. (2021). *डिजिटल बैंकिंग का उपभोक्ता व्यवहार पर प्रभाव: एक अध्ययन*. भारतीय वाणिज्य जर्नल, 15(2), 45–52.
2. शर्मा, एस. (2020). *ग्रीन बैंकिंग और पर्यावरणीय स्थिरता: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन*. अंतरराष्ट्रीय प्रबंधन जर्नल, 10(1), 78–85.
3. भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI). (2022). *वार्षिक रिपोर्ट 2021–22*. मुंबई: RBI प्रकाशन.
4. गुप्ता, एम., एवं वर्मा, ए. (2019). *भारत में ग्रीन बैंकिंग की प्रवृत्तियाँ और चुनौतियाँ*. आर्थिक समीक्षा पत्रिका, 8(3), 102–110.
5. मिश्रा, डी. (2021). *डिजिटल भुगतान प्रणाली और उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन*. वित्तीय अध्ययन जर्नल, 12(4), 60–68.

Received: 10.01.2026 | Accepted: 15.01.2026 | Published: 28.02.2026

वेदांत दर्शन का हिंदी काव्य पर प्रभाव

डॉ. कल्पना*

ksnrw16@gmail.com

शोध सार :-

वेदांत दर्शन, जो उपनिषदों पर आधारित है, ब्रह्म, आत्मा, माया और मोक्ष जैसे मूलभूत सिद्धांतों के माध्यम से मानव जीवन और जगत के सत्य को स्पष्ट करता है। हिंदी काव्य, विशेषकर भक्ति काल से लेकर आधुनिक काल तक, इन दार्शनिक तत्वों से गहराई से प्रभावित रहा है। इस अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि कबीर, तुलसीदास, मीरा बाई और सूरदास जैसे संत कवियों ने वेदांत के अद्वैत, निर्गुण ब्रह्म और माया के सिद्धांतों को सहज और जनभाषा में अभिव्यक्त किया। वहीं आधुनिक काल के कवि-जैसे अज्ञेय, महादेवी वर्मा और रामधारी सिंह दिनकर-ने इन विचारों को आत्म-अन्वेषण, अस्तित्व-बोध और मानवतावाद के संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया। वेदांत दर्शन ने हिंदी काव्य को न केवल दार्शनिक गहराई प्रदान की है, बल्कि उसकी भावभूमि, विषयवस्तु और अभिव्यक्ति शैली को भी समृद्ध किया है। भक्ति काल में यह भक्ति और आध्यात्मिक समर्पण के रूप में प्रकट हुआ, जबकि आधुनिक काल में यह आत्मचिंतन और जीवन के सत्य की खोज के रूप में विकसित हुआ।

कुंजी शब्द :-

वेदांत दर्शन, अद्वैतवाद, मोक्ष, भारतीय ज्ञान परंपरा, हिंदी काव्य, भक्ति आंदोलन, निर्गुण भक्ति, आध्यात्मिकता, आत्म-अन्वेषण, अस्तित्व-बोध, मानवतावाद

भूमिका

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध परंपराओं में से एक है, जिसका मूल आधार वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ और स्मृतियाँ हैं। इन ग्रंथों का अंतिम और सारभूत रूप वेदांत दर्शन के रूप में विकसित हुआ, जिसने भारतीय चिंतन को दार्शनिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर गहराई से प्रभावित किया। ''वेदांत'' का शाब्दिक अर्थ है- ''वेदों का अंत'' अर्थात् वेदों का अंतिम ज्ञान या निष्कर्ष। वेदांत केवल एक दार्शनिक प्रणाली नहीं है, बल्कि यह जीवन-दृष्टि है, जो मनुष्य को उसके अस्तित्व, आत्मा और परम सत्य (ब्रह्म) के संबंध को समझने का मार्ग प्रदान करती है। इसके प्रमुख सिद्धांत-अद्वैत (एकत्व), ब्रह्म-आत्मा की एकता, माया का सिद्धांत और मोक्ष की अवधारणा-मानव जीवन के गहन प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करते हैं। हिंदी साहित्य, विशेषकर काव्य, भारतीय समाज और संस्कृति का दर्पण रहा है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि वेदांत जैसे गहरे दार्शनिक विचारों का प्रभाव हिंदी काव्य पर व्यापक रूप से दिखाई देता है। भक्ति काल के संत कवियों से लेकर आधुनिक काल के कवियों तक, सभी ने वेदांत के सिद्धांतों को अपने-अपने तरीके से आत्मसात किया है। हिंदी काव्य में वेदांत का प्रभाव केवल दार्शनिक अवधारणाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भाव, भाषा, प्रतीक, बिंब और जीवन-दृष्टि में भी परिलक्षित होता है। कबीर, तुलसी, मीरा, सूरदास जैसे संत कवियों ने वेदांत को सहज और जनभाषा में प्रस्तुत किया, जबकि आधुनिक कवियों ने इसे आत्मचिंतन और अस्तित्ववाद के रूप में विकसित किया।

वेदांत दर्शन

वेदांत के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है-जो नित्य, शाश्वत और सर्वव्यापी है। यह किसी रूप, रंग या आकार में सीमित नहीं है। हिंदी काव्य में यह विचार ईश्वर की सर्वव्यापकता के रूप में प्रकट होता है। द्वैत वेदांत का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है-आत्मा और ब्रह्म अलग नहीं हैं, बल्कि एक ही हैं। यह द्वैत (भिन्नता) को समाप्त करता है और एकत्व की स्थापना करता है। वेदांत के अनुसार संसार माया है अर्थात यह वास्तविक प्रतीत होता है, लेकिन अंततः अस्थायी और परिवर्तनशील

* **हिंदी-विभाग, जुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार**

है। यह मनुष्य को मोह और भ्रम में बांधता है। मोक्ष का अर्थ है- जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति और ब्रह्म में लीन हो जाना। यह मानव जीवन का परम लक्ष्य है। इन सभी सिद्धांतों का हिंदी काव्य में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रयोग हुआ है।

हिंदी काव्य में वेदांत दर्शन का प्रभाव

हिंदी काव्य में वेदांत दर्शन का प्रभाव अत्यंत गहरा, व्यापक और बहुआयामी रहा है। भारतीय चिंतन की मूल धारा के रूप में वेदांत ने न केवल दार्शनिक स्तर पर, बल्कि भावात्मक, आध्यात्मिक और काव्यात्मक स्तर पर भी हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। हिंदी काव्य में वेदांत के सिद्धांत जैसे ब्रह्म-आत्मा की एकता, माया की अवधारणा, मोक्ष की कामना और समस्त सृष्टि में एकत्व का भाव, विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते हैं।

भक्ति काल हिंदी काव्य में वेदांत दर्शन के प्रभाव का सबसे सशक्त काल माना जाता है। इस समय के संत कवियों ने जटिल दार्शनिक विचारों को सरल, सहज और जनभाषा में प्रस्तुत किया। कबीर के काव्य में अद्वैत वेदांत का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। वे आत्मा और परमात्मा के बीच किसी प्रकार का भेद नहीं मानते। उनकी वाणी में बार-बार यह भाव व्यक्त होता है कि ईश्वर मनुष्य के भीतर ही विद्यमान है और उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है। कबीर के पदों में "अहंकार के लोप" के माध्यम से ब्रह्म की प्राप्ति का विचार वेदांत की मूल भावना को अभिव्यक्त करता है। इसी प्रकार तुलसीदास के काव्य में भी वेदांत का प्रभाव स्पष्ट है, यद्यपि उनका दृष्टिकोण सगुण भक्ति से जुड़ा हुआ है। तुलसीदास संसार को नश्वर और क्षणभंगुर मानते हैं, जो वेदांत के "माया" सिद्धांत के अनुरूप है। उनके काव्य में यह विचार बार-बार आता है कि सांसारिक सुख अस्थायी हैं और वास्तविक शांति केवल ईश्वर की शरण में ही मिल सकती है।

सूरदास और मीरा बाई के काव्य में वेदांत का प्रभाव भक्ति के माध्यम से प्रकट होता है। मीरा की भक्ति में आत्मा का पूर्ण समर्पण दिखाई देता है, जो अंततः आत्मा और ब्रह्म के मिलन (मोक्ष) की ओर संकेत करता है। सूरदास की रचनाओं में भले ही बाल-लीलाओं का वर्णन है, किंतु उसके भीतर ईश्वर के प्रति गहन प्रेम और एकत्व की भावना निहित है, जो वेदांत की आध्यात्मिक चेतना से जुड़ी हुई है। निर्गुण संत परंपरा में वेदांत का प्रभाव और भी स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। कबीर, दादू और अन्य संत कवियों ने ईश्वर को निराकार, निर्गुण और सर्वव्यापी माना है। यह दृष्टिकोण सीधे वेदांत के उस सिद्धांत से जुड़ा है, जिसमें ब्रह्म को निराकार और निर्विशेष बताया गया है। इन कवियों ने बाहरी आडंबरों, कर्मकांडों और मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए आंतरिक साधना और आत्मज्ञान पर बल दिया।

आधुनिक हिंदी काव्य में वेदांत का प्रभाव अधिक सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक रूप में प्रकट होता है। महादेवी वर्मा के काव्य में आत्मा की पीड़ा, संवेदना और आंतरिक अनुभूति का गहरा चित्रण मिलता है, जो वेदांत के आत्मचिंतन से जुड़ा हुआ है। अज्ञेय के काव्य में 'स्व' की खोज और अस्तित्व का प्रश्न प्रमुख है, जो वेदांत के आत्मज्ञान के सिद्धांत को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करता है। रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में भी मानव की आंतरिक शक्ति और सार्वभौमिकता का भाव मिलता है, जो वेदांत के "समस्त विश्व एक है" वाले विचार से संबंधित है। कबीर के काव्य में अद्वैत वेदांत का सबसे सशक्त और स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहीं"

इस पंक्ति में "मैं" का अर्थ है-अहंकार या व्यक्तिगत अस्तित्व। कबीर कहते हैं कि जब तक मनुष्य अपने 'अहं' में रहता है, तब तक उसे ईश्वर (ब्रह्म) की प्राप्ति नहीं होती। लेकिन जब अहंकार समाप्त हो जाता है, तब केवल ईश्वर ही शेष रह जाता है। यह अद्वैत वेदांत का मूल सिद्धांत है व्यक्ति और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार -

"मोको कहाँ ढूँढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में"

यहाँ कबीर यह स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर कहीं बाहर नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर ही विद्यमान है। यह आत्मा और ब्रह्म की एकता का सशक्त प्रतिपादन है। तुलसीदास ने संसार की नश्वरता को गहराई से व्यक्त किया है।

"सपनेहुँ सुख नाहीं संसार"

तुलसीदास यहाँ संसार को स्वप्न के समान बताते हैं, जो दिखता तो वास्तविक है, लेकिन वास्तव में क्षणभंगुर है। यह वेदांत के "माया" सिद्धांत का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

"माया मरी न मन मरा, मर-मर गया शरीर"

यहाँ कबीर बताते हैं कि शरीर नष्ट हो जाता है, लेकिन माया और मन के विकार समाप्त नहीं होते। यह वेदांत के अनुसार माया की गहरी पकड़ को दर्शाता है। मीरा बाई के काव्य में मोक्ष की भावना अत्यंत प्रबल है।

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई"

मीरा यहाँ पूर्ण समर्पण की अवस्था को व्यक्त करती हैं। उनका सम्पूर्ण अस्तित्व केवल कृष्ण (ब्रह्म) के लिए समर्पित है। यह आत्मा का ब्रह्म में विलय, अर्थात मोक्ष का प्रतीक है। सूरदास की भक्ति में भी आत्मा का ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण दिखाई देता है, जो मोक्ष का मार्ग है। कबीर ने कहा है-

"निर्गुण नाम निरंजन नामा"

यहाँ ईश्वर को निराकार, निर्गुण और निर्विशेष बताया गया है, जो वेदांत का शुद्ध स्वरूप है। कबीर का यह दृष्टिकोण मूर्तिपूजा और बाहरी आडंबरों का विरोध करता है। दादू दयाल भी इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हैं, जहाँ ईश्वर को रूप-रंग से परे माना गया है। महादेवी वर्मा की पंक्ति है -

"मैं नीर भरी दुख की बदली"

यह पंक्ति आत्मा की गहरी अनुभूति और अंतर्मन की पीड़ा को व्यक्त करती है। यह वेदांत के उस सिद्धांत से जुड़ी है, जहाँ आत्मा के अनुभव को सर्वोच्च माना गया है। अज्ञेय के काव्य में "स्व" की खोज वेदांत के आत्मज्ञान से जुड़ी है। रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में मानव की शक्ति और सार्वभौमिकता का भाव मिलता है। यह वेदांत के उस सिद्धांत को दर्शाता है, जहाँ समस्त विश्व को एक ही ब्रह्म का रूप माना गया है।

आधुनिक हिंदी काव्य में वेदांत का प्रभाव

आधुनिक काल में वेदांत दर्शन का स्वरूप अधिक दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक हो गया है। आधुनिक हिंदी काव्य (विशेषतः छायावाद, प्रयोगवाद, नई कविता आदि) में वेदांत दर्शन का प्रभाव प्रत्यक्ष धार्मिक या उपदेशात्मक रूप में कम दिखाई देता है, लेकिन यह अंतर्निहित चेतना, आत्म-अन्वेषण और अस्तित्व-बोध के रूप में अत्यंत गहराई से उपस्थित है। जहाँ भक्ति काल में वेदांत ईश्वर-भक्ति और समर्पण के रूप में व्यक्त हुआ, वहीं आधुनिक काल में यह व्यक्ति-केंद्रित चिंतन, आत्म-संघर्ष और अस्तित्व की खोज के रूप में विकसित हुआ। इस काल के कवियों ने वेदांत को न तो ज्यों-का-त्यों अपनाया, बल्कि उसे आधुनिक जीवन की समस्याओं अकेलापन, विस्थापन, असुरक्षा, पहचान का संकट - के संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया।

वेदांत का मूल सिद्धांत है - "आत्मा ही ब्रह्म है।" आधुनिक हिंदी काव्य में यही विचार 'स्व' की खोज के रूप में सामने आता है। अज्ञेय की कविताओं में "मैं कौन हूँ?" यह प्रश्न बार-बार उठता है। उनकी काव्य-दृष्टि में आत्मा की खोज एक दार्शनिक प्रक्रिया बन जाती है। यह वेदांत के आत्मज्ञान से जुड़ा है, जहाँ मनुष्य बाहरी दुनिया से हटकर अपने भीतर झाँकता है।

अज्ञेय के लिए यह खोज किसी धार्मिक मोक्ष के लिए नहीं, बल्कि अस्तित्व की प्रामाणिकता के लिए है। आधुनिक युग में मनुष्य अनेक संकटों से घिरा है- युद्ध, औद्योगीकरण, नैतिक पतन आदि। ऐसे में वेदांत का "जीवन का सत्य" खोजने वाला दृष्टिकोण महत्वपूर्ण हो जाता है। निराला की कविताओं में व्यक्ति का संघर्ष, अकेलापन और आत्म-बल स्पष्ट दिखाई देता है। निराला का "स्व" केवल व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि वह व्यापक चेतना से जुड़ा हुआ है। यह वेदांत के उस विचार से मेल खाता है कि व्यक्ति और ब्रह्म अलग नहीं हैं, बल्कि एक ही चेतना के रूप हैं।

आधुनिक हिंदी काव्य में वेदांत का प्रभाव इस रूप में भी दिखाई देता है कि कवि आध्यात्मिकता को आधुनिक जीवन के साथ जोड़ने का प्रयास करता है। वेदांत के अनुसार संसार माया है, लेकिन आधुनिक कवि इसे पूरी तरह अस्वीकार नहीं करता। वह इसे यथार्थ और भ्रम के द्वंद्व के रूप में देखता है। धर्मवीर भारती की रचनाओं में जीवन की जटिलता और सत्य की खोज प्रमुख है। आधुनिक कवि यह स्वीकार करता है कि संसार में माया (भ्रम) है, लेकिन वह उससे भागता नहीं, बल्कि उसमें रहते हुए सत्य की खोज करता है। यह वेदांत का आधुनिक पुनर्पाठ है। वेदांत का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है-समस्त विश्व एक ही ब्रह्म का रूप है। आधुनिक हिंदी काव्य में यह विचार मानवतावाद और सार्वभौमिकता के रूप में प्रकट होता है। दिनकर

के काव्य में मानव की शक्ति, समानता और एकता पर बल दिया गया है। यह वेदांत के उस विचार को आधुनिक रूप में प्रस्तुत करता है कि सभी मनुष्य एक ही चेतना के अंग हैं। इससे सामाजिक समरसता और मानवता की भावना विकसित होती है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हिंदी काव्य में वेदांत दर्शन का प्रभाव केवल विषयवस्तु तक सीमित नहीं है, बल्कि यह काव्य की संवेदना, प्रतीक, भाषा और दृष्टिकोण को भी प्रभावित करता है। भक्ति काल में यह भक्ति और समर्पण के रूप में प्रकट होता है, जबकि आधुनिक काल में यह आत्म-अन्वेषण और अस्तित्व-बोध के रूप में विकसित होता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि वेदांत दर्शन हिंदी काव्य की एक मूलभूत चेतना है, जिसने उसे आध्यात्मिक गहराई, दार्शनिक व्यापकता और मानवीय संवेदनशीलता प्रदान की है।

संदर्भ :

1. राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली (अनुवादक). (2008). *उपनिषद*. राजपाल एंड संस, नई दिल्ली.
2. प्रभुपाद, स्वामी (अनुवादक). (2010). *भगवद्गीता*. भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट, मुम्बई.
3. शंकराचार्य, आदि (व्याख्याकार). (2012). *ब्रह्मसूत्र*. चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी.
4. उपाध्याय, बलदेव. (2016). *भारतीय दर्शन*. शारदा प्रकाशन, वाराणसी.
5. राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली. (2009). *भारतीय दर्शन*. राजपाल एंड संस, नई दिल्ली.
6. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (2011). *कबीर ग्रंथावली*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
7. तुलसीदास. (2015). *रामचरितमानस*. गीताप्रेस, गोरखपुर.
8. सूरदास. (2013). *सूरसागर*. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.
9. मीरा बाई. (2014). *मीरा पदावली*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
10. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. (2017). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी.
11. वाजपेयी, नंददुलारे. (2012). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
12. सिंह, नामवर. (2018). *आधुनिक हिंदी कविताः*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
13. नगेंद्र, डॉ. (2010). *छायावाद*. राजपाल एंड संस, नई दिल्ली.
14. वर्मा, महादेवी. (2016). *महादेवी वर्मा रचनावली*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
15. अज्ञेय. (2015). *अज्ञेय रचनावली*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.

Received: 10.01.2026 | Accepted: 15.01.2026 | Published: 28.02.2026

लारा NTPC में रोजगार की संभावनाओं का विश्लेषण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

अंकित साव*

ankitsaoraigarh@gmail.com

सारांश (abstract)

यह शोध पत्र छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में स्थित लारा सुपर थर्मल पावर प्रोजेक्ट (NTPC Lara) द्वारा उत्पन्न रोजगार के अवसरों का एक व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ऊर्जा क्षेत्र न केवल देश की प्रगति की धुरी है। बल्कि यह स्थानीय स्तर पर आर्थिक परिवर्तन का एक बड़ा कारक भी है। प्रस्तुत शोध में यह जांचा गया है कि इस मेगा पावर प्रोजेक्ट ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से क्षेत्रीय श्रम बाजार को कैसे प्रभावित किया है। विश्लेषण दर्शाता है कि लारा एनटीपीसी ने इंजीनियरिंग, प्रबंधन और तकनीकी ऑपरेशनों में हजारों युवाओं को प्रत्यक्ष रोजगार प्रदान किया है। इसके साथ ही, संयंत्र के संचालन से सहायक उद्योगों, परिवहन सेवाओं, और स्थानीय व्यापार में जो वृध्दि हुई है। उसने अप्रत्यक्ष रोजगार का एक विशाल जाल बुना है। शोध इस तथ्य पर भी प्रकाश डालता है कि एनटीपीसी की पुनर्वास और पुनर्स्थापन' (R&R) नीति के तहत भू-विस्थापितों को रोजगार में कितनी प्राथमिकता मिली है। यह शोध प्रायः लारा एनटीपीसी के अंतर्गत आने वाले नौ मुख्य ग्रामीण अंचल के लोगों को रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करता है ।हालाँकि, शोध यह भी रेखांकित करता है कि उच्च तकनीकी पदों के लिए स्थानीय युवाओं के पास आवश्यक कौशल की कमी एक बड़ी चुनौती है। अंततः, यह पत्र निष्कर्ष निकालता है कि यद्यपि परियोजना ने आर्थिक समृध्दि के द्वार खोले हैं। लेकिन दीर्घकालिक लाभ के लिए स्थानीय कौशल विकास कार्यक्रमों और एमएसएमई (MSMEs) को बढ़ावा देना अनिवार्य है। यह शोध नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों के लिए एक संदर्भ के रूप में कार्य करता है ताकि औद्योगिक विकास और स्थानीय रोजगार के बीच संतुलन बनाया जा सके।

मुख्य शब्द (keyword)

लारा एनटीपीसी (Lara NTPC), प्रत्यक्ष रोजगार, अप्रत्यक्ष रोजगार, कौशल विकास, सामाजिक-आर्थिक प्रभाव, छत्तीसगढ़, रायगढ़, थर्मल पावर प्लांट, विस्थापन

प्रस्तावना (introduction)

ऊर्जा क्षेत्र किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ होता है। छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले के पुसौर ब्लॉक में स्थित लारा सुपर थर्मल पावर प्रोजेक्ट (4000 मेगावाट) एनटीपीसी की एक महत्वाकांक्षी परियोजना है। यह परियोजना न केवल बिजली उत्पादन का केंद्र है, बल्कि रायगढ़ क्षेत्र में औद्योगिक क्रांति और रोजगार सृजन का भी मुख्य स्रोत है। जो विशेषकर पुसौर विकासखंड और उसके आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों के युवाओं के लिए रोजगार के अवसर उत्पन्न करता है इस शोध पत्र का उद्देश्य यह समझना है कि इस विशाल संयंत्र ने स्थानीय युवाओं के जीवन स्तर को कैसे प्रभावित किया है। प्रस्तावना में इस बात पर जोर दिया गया है कि भारी उद्योगों का आगमन स्थानीय बाजार में मांग को बढ़ाता है, जिससे रोजगार के नए आयाम खुलते हैं।

शोध के उद्देश्य (Objectives of Research)

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में स्थित लारा एनटीपीसी परियोजना द्वारा सृजित रोजगार के विभिन्न आयामों का वैज्ञानिक और सांख्यिकीय विश्लेषण करना है। शोध का प्राथमिक लक्ष्य यह जांचना है कि इस मेगा

* **विद्यार्थी, समाजशास्त्र विभाग, किरोड़ीमल शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रायगढ़ (छ.ग.)**

पावर प्रोजेक्ट ने स्थानीय श्रम बाजार में कितनी रिक्तियां पैदा की हैं और प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रोजगार के बीच का अनुपात क्या है। इसके साथ ही. यह अध्ययन एनटीपीसी की पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करता है। ताकि यह स्पष्ट हो सके कि परियोजना प्रभावित परिवारों (PAPs) को आर्थिक मुख्यधारा में जोड़ने के लिए कंपनी ने क्या ठोस कदम उठाए हैं। शोध का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू क्षेत्रीय आर्थिक बदलावों को समझना है। जिसमें यह देखा जाएगा कि संयंत्र के कारण स्थानीय परिवहन, आवास और खुदरा व्यापार जैसे क्षेत्रों में स्वरोजगार के कितने नए अवसर विकसित हुए हैं।

इसके अतिरिक्त, शोध का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य स्थानीय युवाओं की शैक्षणिक योग्यता और संयंत्र की तकनीकी आवश्यकताओं के बीच मौजूद 'कौशल अंतराल (Skill Gap) की पहचान करना है। यह विश्लेषण करने का प्रयास किया जाएगा कि क्या स्थानीय शिक्षण संस्थान एनटीपीसी की मांग के अनुरूप कुशल जनशक्ति तैयार कर पा रहे हैं या नहीं। अंततः, इस अध्ययन का ध्येय उन चुनौतियों को उजागर करना है जो स्थानीय रोजगार में बाधा उत्पन्न करती हैं। और प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर ऐसे व्यावहारिक सुझाव देना है जो भविष्य में औद्योगिक विकास और सामुदायिक समृद्धि के बीच एक संतुलित मॉडल प्रस्तुत कर सकें। यह शोध नीति निर्माताओं को इस दिशा में मार्गदर्शन देगा कि कैसे बड़े सार्वजनिक उपक्रम स्थानीय अर्थव्यवस्था को जिला प्रशासन रायगढ़ के सहयोग से अधिक समावेशी और टिकाऊ बना सकते हैं।

शोध प्रविधि(Research Methodology)

इस शोध पत्र को तैयार करने के लिए निम्नलिखित मिश्रित शोध पद्धति (Mixed Methodology) का उपयोग किया गया है:

I. वर्णात्मक अनुसंधान (Descriptive Research): लारा एनटीपीसी की वर्तमान रोजगार संरचना और क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का वर्णन करने के लिए।

II. द्वितीयक डेटा संग्रह (Secondary Data Collection): एनटीपीसी की वार्षिक रिपोर्ट (NTPC) Annual Reports) और आधिकारिक विज्ञप्तियों का विश्लेषण।जिला सांख्यिकी विभाग, रायगढ़ के रोजगार आंकड़ों का अध्ययन।पूर्व में प्रकाशित शोध पत्रों, समाचार रिपोर्टों और सरकारी प्रकाशनों (जैसे EIA रिपोर्ट्स) का संदर्भ।

III. विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण: एकत्रित आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है ताकि यह समझा जा सके कि संयंत्र स्थापना से पूर्व और पश्चात स्थानीय रोजगार दर में कितना परिवर्तन आया है।

IV. क्षेत्रीय अवलोकन (Field Observation): परियोजना प्रभावित ग्रामों (जैसे पुसौर ब्लॉक) की आर्थिक गतिविधियों का सामान्य अवलोकन।

V. प्राथमिक डेटा संग्रहण : प्राथमिक डेटा संग्रहण के अंतर्गत एनटीपीसी लारा के आसपास स्थित बोडाझरिया, कांदागढ़ और छपोरा गांव के लोगों से साक्षात्कार से प्राप्त जानकारियों के साथ–साथ गांव युवाओं से वार्तालाप के पश्चात यहां पे उत्पन्न रोजगार की स्थिति का पता लगाया गया।

प्रत्यक्ष रोजगार के अवसर (Direct Employment Opportunities)

एनटीपीसी लारा सीधे तौर पर संगठित क्षेत्र में उच्च स्तरीय और सुरक्षित रोजगार प्रदान करता है:

तकनीकी और इंजीनियरिंग पदः एनटीपीसी अखिल भारतीय

स्तर पर GATE के माध्यम से ग्रेजुएट इंजीनियर प्रशिक्षित (GETs) और डिप्लोमा इंजीनियरों की भर्ती करता है।

आर्टिसन प्रशिक्षित (III): स्थानीय आईटीआई पास युवाओं के लिए

फिटर, इलेक्ट्रीशियन और इंस्ट्रूमेंटेशन जैसे ट्रेडों में नियमित नियुक्तियाँ की जाती हैं।

प्रशासनिक एवं चिकित्सा सेवाएँ: कार्यालय प्रबंधन, मानव

संसाधन (HR), वित्त और संयंत्र के अस्पताल में डॉक्टरों एवं पैरामेडिकल स्टाफ की सीधी भर्ती।

वेतन और लाभः प्रत्यक्ष रोजगार प्राप्त कर्मियों को केंद्र सरकार के सार्वजनिक उपक्रम (PSU) के मानकों के अनुसार वेतन, आवास और चिकित्सा सुविधाएं प्राप्त होती हैं। जो क्षेत्रीय क्रय शक्ति को बढ़ाती हैं।

अप्रत्यक्ष रोजगार और आर्थिक प्रभाव (Indirect Employment & Economic Impact)

प्रत्यक्ष पदों की तुलना में अप्रत्यक्ष रोजगार का दायरा बहुत व्यापक है:

अनुबंधात्मक श्रम (Contractual Labour): संयंत्र के भीतर हाउसकीपिंग, सुरक्षा, बागवानी और बुनियादी ढांचे के रख-रखाव के लिए हजारों स्थानीय श्रमिक ठेकेदारों के माध्यम से कार्यरत हैं।

लॉजिस्टिक्स और परिवहन: कोयले की ढुलाई एवं परिवहन के लिए सैकड़ों ट्रकों और उनके चालकों, क्लीनर और गैरेज मैकेनिकों के लिए बड़े पैमाने पर रोजगार सृजित हुआ है।

स्थानीय व्यापार का विस्तार: संयंत्र के पास टाउनशिप और कर्मचारियों की उपस्थिति के कारण बाजार, होटल, स्कूल, और दैनिक आवश्यकता की दुकानों में वृध्दि हुई है।

सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में योगदान: क्षेत्रीय स्तर पर प्रति व्यक्ति आय में वृध्दि हुई है। जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था में नकदी का प्रवाह बढ़ा है।

चुनौतियाँ और विश्लेषण (Challenges and Analysis)

परियोजना की विशालता के बावजूद, रोजगार के क्षेत्र में कई ऐसी चुनौतियां हैं जो स्थानीय अर्थव्यवस्था और सामाजिक संतुलन को प्रभावित कर सकती हैं। इनका विस्तृत विश्लेषण निम्नलिखित बिंदुओं में किया गया है:

क. **कौशल विकास की आवश्यकता (Need for Skill Development):** एनटीपीसी जैसे बड़े संयंत्रों में अक्सर विशिष्ट तकनीकी कौशल की आवश्यकता होती है। विश्लेषण से पता चलता है कि स्थानीय कार्यबल के कौशल और परियोजना की आवश्यकताओं के बीच एक अंतर हो सकता है। इस अंतर को कम करने के लिए स्थानीय प्रशिक्षण कार्यक्रमों और शिक्षा प्रणालियों को अद्यतन करने की आवश्यकता है ताकि स्थानीय युवा उच्च-कौशल वाले पदों के लिए प्रतिस्पर्धा कर सकें।

ख. **निर्माण और परिचालन चरणों के बीच रोजगार मे अंतर (Employment Variation Between Construction and Operational Phases):** परियोजना के निर्माण चरण के दौरान बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता होती है। जिससे अस्थायी रोजगार के अवसर पैदा होते हैं। हालांकि, परिचालन चरण शुरू होने पर, संयंत्र अधिक स्वचालित हो जाता है। और श्रम की आवश्यकता कम हो जाती है। यह उन स्थानीय लोगों के लिए एक चुनौती है जो निर्माण के दौरान प्राप्त रोजगार को स्थायी मान लेते हैं और बाद में बेरोजगार हो सकते हैं।

ग. **पुनर्वास और रोजगार की अनिश्चितता (Resettlement and Employment Uncertainty):** परियोजना के लिए भूमि अधिग्रहण से प्रभावित परिवारों के लिए रोजगार एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है। पुनर्वास नीतियों के तहत रोजगार के अवसर प्रदान किए जा सकते हैं। लेकिन सभी प्रभावित व्यक्तियों के लिए स्थायी नौकरी की गारंटी देना हमेशा संभव नहीं होता है। वित्तीय मुआवजे या स्वरोजगार के अवसरों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए सहायता प्रदान करना महत्वपूर्ण है।

घ. **अप्रत्यक्ष रोजगार की स्थिरता (Stability of Indirect Employment):** परियोजना से जुड़े परिवहन, आपूर्ति श्रृंखला और स्थानीय व्यवसायों में अप्रत्यक्ष रोजगार पैदा होता है। हालांकि, इस प्रकार का रोजगार संयंत्र की गतिविधियों पर निर्भर हो सकता है। परियोजना की स्थिरता और संचालन में उतार-चढ़ाव अप्रत्यक्ष रोजगार को प्रभावित कर सकते हैं। जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था में अनिश्चितता आ सकती है।

ङ. **तकनीकी उन्नति और स्वचालन (Technological Advancement and Automation):** आधुनिक बिजली संयंत्र तेजी से उन्नत तकनीक और स्वचालन को अपना रहे हैं। यह दक्षता बढ़ाता है लेकिन कुछ पारंपरिक नौकरियों की आवश्यकता को कम कर सकता है। भविष्य में रोजगार के अवसरों के लिए. स्थानीय कार्यबल को नई तकनीकों और डिजिटल कौशल को अपनाने की आवश्यकता होगी।

निष्कर्ष (Conclusion)

अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में लारा एनटीपीसी परियोजना केवल एक बिजली संयंत्र नहीं है। बल्कि यह क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के लिए "ग्रोथ इंजन (Growth Engine) के रूप में उभरा है। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि संयंत्र ने प्रत्यक्ष रूप से तकनीकी विशेषज्ञों के लिए और अप्रत्यक्ष रूप से स्थानीय श्रमिकों के लिए रोजगार के व्यापक अवसर खोले हैं। हालांकि, परियोजना के कारण हुए विस्थापन और स्थानीय युवाओं में आधुनिक औद्योगिक कौशल की कमी दो ऐसी प्रमुख बाधाएं हैं। जो रोजगार के पूर्ण लाभ को प्राप्त करने से रोकती हैं। यदि उचित नीतिगत ढांचे के साथ स्थानीय आबादी का कौशल विकास किया जाए. तो यह परियोजना सामाजिक-आर्थिक असमानता को कम करने और क्षेत्र के समग्र विकास में मील का पत्थर साबित हो सकती है। अंततः, औद्योगिक प्रगति और स्थानीय कल्याण के बीच एक संतुलित तालमेल ही इस परियोजना की वास्तविक सफलता को परिभाषित करेगा।

सुझाव (Suggestions)

शोध के आधार पर भविष्य में रोजगार की स्थिति को और बेहतर बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं:

कौशल विकास केंद्र की स्थापना: एनटीपीसी को अपनी CSR गतिविधियों के अंतर्गत एक विशिष्ट प्रशिक्षण संस्थान स्थापित करना चाहिए। यहाँ स्थानीय आईटीआई और डिप्लोमा धारकों को संयंत्र की अत्याधुनिक मशीनों और सुरक्षा मानकों का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, ताकि वे भर्ती में प्राथमिकता पा सकें।

स्थानीय सूक्ष्म उद्योगों (MSMEs) को प्रोत्साहन: संयंत्र की दैनिक आवश्यकताओं (जैसे स्पेयर पार्ट्स, ड्रेस, स्टेशनरी) की आपूर्ति के लिए स्थानीय स्टार्टअप और लघु उद्योगों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इससे स्थानीय स्तर पर उद्यमिता विकसित होगी और एनटीपीसी पर निर्भरता कम होकर स्वरोजगार बढ़ेगा।

पारदर्शी रोजगार पोर्टल: जिला प्रशासन रायगढ़ और एनटीपीसी के समन्वय से एक विशेष 'रोजगार पोर्टल' विकसित किया जाना चाहिए। यहाँ परियोजना प्रभावित परिवारों (PAPs) और स्थानीय कुशल युवाओं का डेटाबेस हो, जिससे ठेका आधारित नौकरियों (Contractual Jobs) में पारदर्शी तरीके से स्थानीय लोगों का चयन हो सके। ताकि भ्रष्टाचार न हो ।

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का विस्तार: एनटीपीसी को आसपास के गांवों में कृषि-आधारित उद्योगों और महिला स्वयं सहायता समूहों (SHGs) को प्रशिक्षण और ऋण सहायता प्रदान करनी चाहिए, ताकि संयंत्र के अतिरिक्त भी आर्थिक गतिविधियों का एक मजबूत चक्र तैयार हो सके।

दीर्घकालिक अनुबंध नीति: अनुबंधात्मक श्रम (Contractual Labour) के लिए ऐसी नीतियां बनाई जानी चाहिए जिससे श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा (PT. बीमा) और रोजगार की निरंतरता का आश्वासन मिल सके, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में स्थिरता आए।

संदर्भ (Reference) :

1. NTPC Limited. (2024). *Annual report 2023-24*. NTPC Limited. https://www.ntpc.co.in/annual-reports
2. Vimta Labs & Chhattisgarh Environment Conservation Board (CECB). (n.d.). *Environmental impact assessment (EIA) report - Lara Stage-II*. Vimta Labs/CECB.
3. NTPC Limited. (n.d.). *NTPC recruitment policy & systems*. NTPC Limited. https://www.ntpc.co.in/en/careers/recruitment
4. NTPC Limited. (n.d.). *Sustainability report (Societal development)*. NTPC Limited. https://www.ntpc.co.in/sustainability/sustainability-reports
5. Ankit Sao. (2024–2025). *व्यक्तिगत साक्षात्कार रिपोर्ट 2024–25.*

Received: 10.01.2026 | Accepted: 15.01.2026 | Published: 28.02.2026

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नारीवादी दृष्टिकोण

संजना यादव*

sanjanaramsingh1985@gmail.com

सारांश

भारत में महिलाओं की स्थिति पर अगर नजर डाले तो महिला की स्थिति के दोनों पक्ष मिलते हैं। जहाँ एक समय था महिलाओं की शिक्षा , समानता व सम्मान को महत्व दिया गया लेकिन एक समय ऐसा भी आया जब महिलाओं की स्थिति एक वस्तु से अधिक कुछ नहीं रही। जब भारत एक तरफ गुलामी की दर्दनाक समय को देख रहा था वहीँ स्त्रियाँ दोहरी गुलामी को झेल रही थी। भारत को आजादी दिलाने में लाखों लोगो ने अपनी कुर्बानी दी तो वहीं देश का एक हिस्सा जो अपने ही समाज में दबी- कुचली थीं, अगर इनपर किसी समाज सुधारक, राजनेता उद्धारक का ध्यान गया तो वो कोई और नहीं बल्कि भीमराव अम्बेडकर जी थे। उनकी पहचान ज्यादा दलित उद्धारक तक ही मानी जाती है, लेकिनजब हम इतिहास के पन्नो को देखते हैं तो समझ आता है कि बाबा साहेब ने स्त्री के चहुमुखी उद्धार की बात की। न सिर्फ उस पर विचार किया बल्कि उनके अधिकार के लिए संसद में आवाज उठायी और उनकी आवाज की ताकत इतनी थी कि संविधान में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार भी दिलाया।

"मैं एक समुदाय की प्रगति को महिलाओं द्वारा हासिल की गई प्रगति की डिग्री से मापता हूँ" – डॉ. भीम आर अम्बेडकर

"मैं किसी कौम की उन्नति को उस कौम की स्त्रियों की उन्नति से मापता हूँ" – डॉ. भीम आर अम्बेडकर

शब्द कुंजी –

नारी उत्थान, पिछड़ी महिलायें, समानता, नारीवाद, आर्थिक विकास, राजनीतिक स्थिति, सामाजिक न्याय, आरक्षण, साक्षरता, प्रगति, मैटरनिटी लीव, हिन्दू कोड बिल।

प्रस्तावना:

"किसी समाज की प्रगति का सबसे सही मापदंड यह है कि उस समाज में महिलाएं कितनी स्वतंत्र है।"

भारतीय समाज आज 21वीं सदी में चल रहा है। जहाँ भारत के साथ अन्य देश जो एक समय में पिछडे रहे होगें, आज सभी अपनी-अपनी उन्नति का परचम लहराने में लगे हैं। भारत भी किसी के पीछे नहीं है। भारत आज सैन्य, सुरक्षा, अर्थिक उन्नति तकनीक विकास सभी में विश्व के शीर्ष देशों में अग्रणी है। यह जानकर बहुत प्रसन्नता होती है लेकिन क्या हम यह कह सकते हैं कि हमारे जिस भारत का स्वप्न हमारे वीर पुरुषों ने देखा था वह यही भारत है? भारत की आजादी के लिए लाखो वीरों ने स्वयं को हंसते-हंसते बालिदान कर दिया और उनके साथ उनके घर की स्त्रियाँ भी थी लेकिन उनके उस बलिदान का परिणाम वह नहीं दिखता जो होना चाहिए।

बाबा साहेब अंबेडकर भारत की सामाजिक स्थिति के सुधार में सतत प्रयास करते रहे। समाज को सुधारने में पिछड़ो, दलितों व स्त्री उत्थान का प्रयत्न आजीवन करते रहें। भारतीय समाज के उत्थान के लिए डॉ. अम्बेडकर कहते थे भारत तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक समाज की आधी जनता जो कि महिला समाज है, उनका उत्थान नहीं होगा, भारत गुलाम बना रहेगा।

* **शोध – छात्रा, राजनीती विज्ञान, डॉ. भीम राव आंबेडकर राजकीय स्नातकोतर महिला महाविधालय, फ़तेहपुर।**

सम्बद्ध – प्रो. राजेन्द्र सिंह रज्जू भय्या विश्वविधालय, प्रयागराज

डॉ. अम्बेडकर जी ने कहा कि अगर समाज को शिक्षित करना है उनका सामाजिक विकास करना है तो स्त्री को शिक्षित करना जरूरी है क्योंकि एक पुरुष शिक्षित होता है तो वह सिर्फ स्वयं को शिक्षित करता है लेकिन अगर एक स्त्री शिक्षित होती तो पूरा परिवार साथ-साथ पूरा समाज और पूरा देश शिक्षित होगा। नारी को उन्हें समाज में उचित स्थान दिलाना हो तो राजनीतिक रूप से और आर्थिक रूप से सशक्त करना होगा। भारतीय समाज में फैले रूढ़िवाद और अंधविश्वास को समाप्त करना होगा। लिंग के आधार पर भेदभाव किसी भी समाज का सर्वांगिण विकास नहीं कर सकता है. अतः आवश्यक है कि शिक्षा, समानता स्वतंत्रता सम्मान जिसकी हकदार महिलाएं हैं, उन्हें मिलना चाहिए।

डॉ. वी. आर. अम्बेडकर - **Unity is meaningless without the accompainment of Women"**

-"Education is fruitless without educated women.

-"Agitation is incomplete without the strength of women

अध्ययन के उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारत में फैली लैंगिक असमानता के दुष्प्रभाव को बताना व डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचार को आत्मसार करना जिससे भारतीय समाज में फैसी कुप्रथाओं पर कुठाराधात हो सके व नारी उन्नति के अवसर उपलब्ध हो जैसे विचार पर प्रकाश डालना है। इस प्रकार की धारणा से भारतीय समाज को लाभ होगा।

अनुसन्धान पद्धति:

प्रस्तुत शोध वर्णात्मक , ऐतिहासिक, समीक्षात्मक पद्धति पर आधारित है। इस आलेख में द्वितीयक तथ्यों का प्रयोग किया गया है। जिसमें विभिन्न पुस्तक पत्रिका, समाचार पत्र, अनेक वेबसाइट का प्रयोग हुआ है।

"मैं किसी समान की तरक्की इस बात से देखता हूँ कि वहां महिलाओं ने कितनी तरक्की की है" - डॉ. वी. आर. अम्बेडकर

महिलाओं के उत्थान के लिए बाबा साहेब कितने गम्भीर थे ये बताने के लिए उनका यह कथन ही काफी है। भारत में जब नारीवाद का कोई नाम भी ढंग से लोग जानते थे उस वक्त बाबा साहेब डॉ. वी. आर. अम्बेडकर ने नारी सशक्तिकरण के लिए ऐसे काम किए जिससे आज भारतीय महिलाएं अंतरिक्ष तक जा पहुंची है। 20वीं शताब्दी में बाबा साहेब पहले वो व्यक्ति थे जिन्होंने ब्राह्मणवादी पितृसत्ता को खुली चुनौती दी थी, लेकिन विडम्वना देखिए इतना सबकुछ करने के बाद भी बाबा साहेब भारत में नारीवाद का चेहरा नहीं बन पाए। लोगों ने सिर्फ उन्हें दलितों के नेता और संविधान निर्माता तक सीमित कर दिया, जबकि महिलाओं की भलाई के लिए उनके जितने काम शायद ही किसी भारतीय नेता ने किए हो उनके आधुनिक सोच और दुरदर्शिता का अन्दाजा इस बात से लगा सकते हैं कि जब भारतीय समाज महिलाओं को चहरदीवारी में कैद रखे हुए था तब उन्होंने काम-काजी महिलाओं के लिए मैटरनिटी लीव दिलाई।

डॉ. अम्बेडकर ने महिला शिक्षा पर काफी जोर दिया। J.N.U में असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ. प्रवेश कुमार के अनुसार 1913 में न्यूयार्क में एक भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि मां-बाप बच्चों को जन्म देते हैं, कर्म नहीं देते। मां बच्चों के जीवन को उचित मोड़ दे सकती है। यह बात अपने मन पर अंकित कर यदि हम लोग अपने लड़कों के साथ अपनी लड़कियों के भी शिक्षित करें तो हमारे समाज की उन्नति और तेज होगी। इस कथन को डॉ. अम्बेडकर ने (1913) न्यूयार्क में कहा था।

बाबा साहेब का यह कथन पूरी तरह सत्य साबित हुआ आज भारत की बेटियों शिक्षित होकर हवाई जहाज तक उड़ा रही हैं। बाबा साहेब ने पढ़ाई के दौरान अपने पिता के करीबी दोस्त को पत्र में लिखा था कि बहुत जल्द भारत प्रगति की दिशा स्वंय तय करेगा, लेकिन इस चुनौती को पूरा करने से पहले ह्मों भारतीय स्त्रियों की शिक्षा की दिशा में सकारात्मक कदम उठाने होंगे।

18 जुलाई 1927 को 3 हजार महिलाओं की एक संगोष्ठी में बाबा साहेब ने कहा था- "आप अपने बच्चों को स्कूल भेजिए शिक्षा महिलाओं के लिए भी उतनी ही जरूरी है जितना की पुरुषों के लिए। यदि आपको लिखना - पढ़ना आता है तो समाज में आपका उद्धार संभव है। एक पिता का सबसे पहला काम अपने घर में स्त्रियों को शिक्षा से वंचित न रखने के संबंध में होना चाहिए। शादी के बाद महिलाएं खुद को गुलाम की तरह महसूस करती है, इसका सबसे बड़ा कारण निरक्षरता है। यदि स्त्रियाँ भी शिक्षित हो जाएं तो उन्हें ये कभी महसूस नहीं होगा।"– डॉ. . अम्बेडकर 18 जुलाई 1927

भारत की पहली महिला शिक्षिका सावित्रीबाई फूले और फातिमा शेख की परंपरा को बाबा साहेब ने आगे बढ़ाया और महिलाओं को पढ़ने लिखने की आजादी के लिए खूब प्रयास किए। मनु स्मृति में स्त्रियों को जड़ मुर्ख और कपटी स्वभाव का माना गया है और शूद्रों की भांति उन्हें अध्ययन से वंचित रखा गया, लेकिन बाबा साहेब ने महिला शिक्षा के लिए काफी काम किया।

आज कामकाजी महिलाएं 26 हफ्तों की मैटरनिटी लीव ले सकती हैं जिसकी शुरुआत बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने ही की थी। 10 नवंबर 1938 को बाबा साहेब ने बॉम्बे लेजिस्लेटिव असेंबली में महिलाओं के समस्या से जुड़े मुद्दों को जोरदार तरीके से उठाया था। इस दौरान उन्होंने प्रसव के दौरान महिलाओं के स्वास्थ्य से जुड़ी चिंताओं पर अपने विचार रखे। सन 1942 में सबसे पहले मैटरमिरी बेनेफिट बिल लाए थे। इसके बाद 1948 के Employees State Insurance Act के जरिए भी महिलाओं को मातृत्व अवकाश की व्यवस्था की गई। बाबा साहेब ने यह कार्य उस वक्त कर दिया था जब उस जमाने के सबसे ताकतवर मुल्क भी इस मामले में बहुत पीछे थे। अमेरिका जैसे देश में साल 1987 में कोर्ट के दखल के बाद महिलाओं को मैटरनिटी लीव का रास्ता साफ हुआ था। अमेरिका ने वर्ष 1993 में "Family and Medical Leave Act'' बनाकर अधिकारिक रूप से काम काजी महिलाओं को पेड मेटरनिटी लीव का इन्तजाम किया था लेकिन भारतीय महिलामों के लिए बाबा साहेब ये काम 1940 के दशक में ही कर चुके थे।

बाबा साहेब ने भारतीय नारी को पुरुषों के मुकाबले बराबरी के अधिकार दिए हैं। भारतीय समाज में लैंगिक असमानता को ख़त्म करने के "लिए उन्होंने बकायदा संविधान में लिंग के आधार पर भेद भाव रोकने की व्यवस्था की है। अनुच्छेद 14 से 16 में महिलाओं को समाज में सामान आधिकार देने का प्रस्ताव किया गया है। बाबा साहेव ने संविधान में लिखा की "किसी भी महिला को सिर्फ महिला होने की वजह से किसी भी अवसर से वंचित नहीं रखा जाएगा और ना ही उसके साथ लिंग के आधार पर कोई भेदभाव किया जा सकता है।"

भारतीय संविधान के निर्माण के वक्त भी बाबा साहेब ने महिलाओं के कल्याण से जुड़े कई प्रस्ताव रखे थे। इसके अलावा महिलाओं के खरीद-फरोख्त और शोषण के विरुद्ध क़ानूनी प्रावधान किए थे। साथ ही बाबा साहेब ने संविधान में महिलाओं और बच्चों के लिए राज्यों को विशेष कदम उठाने का भी अधिकार भी दिया।

मताधिकार को लेकर 20 वीं शताब्दी के आधे समय तक दुनिया भर में कई आन्दोलन हुए। नारीवाद की पहली और इसी लहर में महिलाओं के लिए मताधिकार की जबरदस्त मांग उठी लेकिन उस समय भारत में इसके लिएबहुत ज्यादा आन्दोलन हुए। जब बाबा साहेब को संविधान लिखने का मौका मिला तो उन्होंने महिलाओं को समान मताधिकार दिया। आज 18 वर्ष की उम्र होने पर महिलाएं वोट डालने का अधिकार रखती हैं, क्योंकि बाबा साहेब ने महिलाओं को मताधिकार दिलाया था। अरस्तू से मनु तक ने महिलाओं को दोयम दर्जे का नागरिक माना। मनुस्मृति काल में नारियों के अपमान और उनके साथ अन्याय की पराकाष्ठा थी। मनुस्मृति के अध्याय 9 के तीसरे श्लोक में लिखा है, "रात और दिन कभी भी स्त्री को स्वतंत्र नहीं होने देना चाहिए। उन्हें लैंगिक संबंधों द्वारा अपने वश में रखना चाहिए। "बालपन में पिता, युवावस्था में पति और बुढ़ापे में पुत्र उसकी रक्षा करें क्योंकि स्त्री स्वतंत्र होने के लायक नहीं है"। मनु स्मृति (अध्याय 9,2-3)

लेकिन बाबा साहेब ने भारतीय संविधान में उन्हें बराबरी के नागरिक अधिकार दिए। स्विटज़रलैंड जैसे देश में महिलायों, को मताधिकार 1971 में मिला लेकिन बाबा साहेब ने संविधान बनाते वक्त ही महिलाओं को मताधिकार सुनिश्चित कर दिया था।

बाबा साहेब के संविधान के जरिए महिलाओं को वे अधिकार दिए जो मनुस्मृति ने नकारे थे। उन्होंने राजनीति और संविधान के जरिए भारतीय समाज में स्त्री पुरुष के बीच असमानता की गहरी खाई पाटने का सार्थक प्रयास किया। जाति, लिंग और धर्म निरपेक्ष संविधान में उन्होंने सामाजिक न्याय की कल्पना की है। हिन्दू कोड बिल के जरिए उन्होंने संवैधानिक स्तर से महिला हितों की रक्षा का प्रयास किया।

इस बिल के चार प्रमुख अंग थे:

1. हिंदुओं में बहु विवाह की प्रथा को समाप्त करके केवल एक विवाह का प्रावधान, जो विधि सम्मत हो।

2. महिलाओं को सम्पत्ति में अधिकार देना और बच्चे गोद लेने का अधिकार देना।

3. पुरुषों के समान नारियों को भी तलाक का अधिकार देना। हिंदू समाज में पहले पुरुष ही तलाक के दे सकते थे।

4. आधुनिक और प्रगतिशील विचारधारा के अनुरुप समाज को एकीकृत करके उसे मजबूत करना।

डॉ. अम्बेडकर – "सही मायने में प्रजातंत्र तब आएगा, जब महिलाओं को पिता की सम्पत्ती में बराबरी का हिस्सा मिलेगा। उन्हें पुरुषों के समान अधिकार मिलेंगे महिलाओं की उन्नति तभी होगी जब उन्हें परिवार, समाज में बराबरी का दर्जा मिलेगा। शिक्षा और आर्थिक तरक्की उनकी इस काम में मदद करेगी।"

लेकिन राजेन्द्र प्रसाद जैसे महिला विरोधी हिन्दुओं की वजह से हिन्दू कोड बिल पास न हो सका। आखिरकार 7 सितम्बर 1951 को बाबा साहेव ने मंत्रीपद से इस्तीफा दे दिया। बाद में 1955-56 में हिंदू कोड बिल के प्रावधानों को - हिंदू विवाह अधिनियम, हिंदू तलाक अधिनियम, हिंदू उत्तराधिकार आधिनियम, हिंदू दत्तकग्रहण अधिनियम के रूप में अलग-अलग पास किया गया। महिलाओं को पिता और पति के संपत्ति में हिस्सेदारी देना, तलाक का अधिकार और बच्चे गोद लेने का अधिकार भी बाबा साहेब ने ही दिलाया था। उस समय के हिन्दू समाज में ऐसी मान्यता थी कि अगर महिला अपने घर से डोली पर निकलती है तो वापस उसकी अर्थी उठती है और विवाहित स्त्रियों को अपने पिता के घर वापस आना पाप माना जाता था लेकिन बाबा साहेब ने महिलाओं के लिए क्रांति की शुरुआत कर दी थी।

बाबा साहेब में असहाय महिलायों को उठकर लड़ने की प्रेरणा देने के लिए बाल विवाह और देवदासी प्रथा जैसी प्रथाओं के खिलाफ आवाज उठायी। 1928 में मुंबई में एक महिला कल्याणकारी संस्था की स्थापना की गई थी जिसके अध्यक्ष बाबा साहेब अम्बेडकर की पत्नी रमाबाई थीं।

20 जनवरी 1942 को अखिल भारतीय दलित महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता डॉ. अम्बेडकर जी ने किया था। जिसमें लगभग 25 हजार महिलाओं ने हिस्सा लिया था। उस समय इतनी भारी संख्या में महिलाओं का एकजूट होना काफी बड़ी बात थी। बाबा साहेब ने दलित महिलाओं की प्रशंसा करते हुए कहा था कि महिलाओं में जागृति का अटूट विश्वास है। सामाजिक कुरीतियों को नष्ट करने में महिलाओं का बड़ा योगदान हो सकता है। मैं अपने अनुभव से यह बता रहा हूं कि जब मैंने दलित समाज का काम अपने हाथों में लिया था तभी मैंने यह निश्चय किया था कि पुरुषों के साथ महिलाओं को भी आगे ले जाना चाहिए। महिला समाज ने जितनी मात्रा में प्रगति की है इसे में दलित समाज की प्रगति में गिनती करता हूँ।" डॉ. अम्बेडकर (20 जनवरी 1942)

25 दिसम्बर 1927 को बाबा साहेब ने मनुस्मृति को सिर्फ इसलिए नहीं जलाया था कि इसमें शूद्रों के बारे में बहुत बुरी बातें लिखी थी बल्कि उन्होंने इस घृणित किताब को इसलिए भी आग के हवाले किया था क्योंकि उसने महिलाओं को भी गुलाम बनाने के तरीके लिखे थे।

भारतीय सन्दर्भ में देखा जाए तो अम्बेडकर सम्भवत: पहले अध्येता रहें हैं जिन्होंने भारतीय संरचना में महिलाओं की स्थिति को जेंडर की दृष्टि से समझने की कोशिश की। उनके सम्पूर्ण विचार मंथन के हष्टिकोण में सबसे महत्वपूर्ण मंथन का हिस्सा महिला सशक्तिकरण था। भारतीय नारीवादी चिंतन और अम्बेडकर के महिला चिंतन के वैचारिकी का केंद्र ब्राह्मणवादी पित्रसत्तामक व्यवस्था और समाज में व्याप्त परम्परागत धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताएं रही हैं जो महिलाओं को पुरुषों के अधीन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती रही हैं।

"मैं नहीं जानता कि इस दुनिया का क्या होगा, जब बेटियों का जन्म ही नहीं होगा।" -डॉ. अम्बेडकर

महिला सरोकारों के प्रति डॉ. अम्बेडकर का समर्पण किसी जुनून से कम नहीं था। सामाजिक न्याय, सामाजिक पहचान, समान अवसर और संवैधानिक स्वतंत्रता के रूप में नारी सशक्तिकरण के लिए उनका ये योगदान पीढ़ी दर पीढ़ी याद किया जाएगा

निष्कर्ष :

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर स्पष्ट होता है कि डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नारीवादी दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक, प्रगतिशील और व्यावहारिक था। उन्होंने न केवल महिलाओं की दयनीय सामाजिक स्थिति को समझा, बल्कि उसके सुधार हेतु ठोस वैधानिक और सामाजिक उपाय भी प्रस्तुत किए। उनके विचारों का मूल आधार समानता, शिक्षा, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय रहा है, जिसके बिना किसी भी समाज का समग्र विकास संभव नहीं है।

अम्बेडकर ने यह प्रतिपादित किया कि महिला सशक्तिकरण केवल सामाजिक सुधार का विषय नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण की अनिवार्य शर्त है। उन्होंने संविधान में समान अधिकार, मताधिकार, संपत्ति के अधिकार तथा मातृत्व लाभ जैसी व्यवस्थाओं को सुनिश्चित कर महिलाओं को एक सशक्त आधार प्रदान किया। साथ ही, हिन्दू कोड बिल के माध्यम से उन्होंने पारिवारिक और वैवाहिक संबंधों में भी समानता स्थापित करने का प्रयास किया।

अतः कहा जा सकता है कि अम्बेडकर का नारीवादी चिंतन भारतीय समाज में लैंगिक समानता की आधारशिला है, जो आज भी प्रासंगिक है और भविष्य के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

संदर्भ :

1. पुनियानी, राम. (2006). *अंबेडकर: दलित और स्त्री प्रश्न*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
2. अम्बेडकर, डॉ. भीमराव रामजी. (1948). *हिन्दू नारी का उत्थान एवं पतन*. मुंबई. स्रोत: ambedkar.org.
3. अशोक, डॉ. बी. पी.. (n.d.). *कमजोर वर्ग एवं कानून*.
4. कबीरपंथी, रणजीत. (2015). *आरक्षण जरूरी क्यों*.
5. शास्त्री, सोहन लाल. (1992). *हिन्दू कोड बिल और डॉ. अम्बेडकर*. नई दिल्ली.
6. कुरील, भीमराव. (n.d.). *डॉ. अम्बेडकर का शिक्षा में योगदान*.
7. रावत, भद्रशील. (2018). *राष्ट्र निर्माण में बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर*.
8. माताप्रसाद, डॉ.. (n.d.). *जातियों का जंजाल*.
9. रावत, भद्रशील. (n.d.). *भारत की गुलामी के सात कारण*.
10. कर्दम, डॉ. जयप्रकाश. (2005). *समाज संस्कृति और दलित*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
11. अम्बेडकर, डॉ. भीमराव रामजी. (n.d.). *ईश्वर आत्मा एवं वेद आदि में विश्वास अधर्म है*.
12. अम्बेडकर, डॉ. भीमराव रामजी. (1947). *राज्य और अल्पसंख्यक*. मुंबई. स्रोत: ambedkar.org
13. अम्बेडकर, डॉ. भीमराव रामजी. (1920). *मूक नायक*. बहिष्कृत हितकारिणी सभा, मुंबई.
14. अम्बेडकर, डॉ. भीमराव रामजी. (1946). *शूद्र कौन थे?*. थैकर एंड कंपनी, मुंबई.
    स्रोत: Britannica/Ambedkar.org
15. अम्बेडकर, डॉ. भीमराव रामजी. (1936). *जाति का विनाश*. मुंबई. स्रोत: ambedkar.org
16. अम्बेडकर, डॉ. भीमराव रामजी. (1927). *बहिष्कृत भारत*. मुंबई.
17. अम्बेडकर, डॉ. भीमराव रामजी. (1950). *हिन्दू कोड बिल*. भारत सरकार, नई दिल्ली.

Received: 11.01.2026 | Accepted: 15.01.2026 | Published: 28.02.2026

मृदा नमी एवं तापमान का पौधों की वृद्धि पर प्रभाव : भौतिक एवं जैविक दृष्टिकोण पर आधारित अध्ययन

डॉ. प्रियंका प्रसाद* **मयंक कुमार†**

prasadpriyanka696@gmail.com **mayankchakradhari2000@gmail.com**

सारांश

यह अध्ययन मृदा नमी एवं तापमान का पौधों की वृद्धि पर प्रभाव का विश्लेषण करता है। मृदा नमी पौधों को आवश्यक जल एवं पोषक तत्व उपलब्ध कराती है, जबकि तापमान पौधों की जैविक एवं रासायनिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है। इस शोध में द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग करते हुए यह पाया गया कि मृदा में संतुलित नमी और उपयुक्त तापमान पौधों की वृद्धि एवं कृषि उत्पादन को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अध्ययन में यह भी स्पष्ट हुआ कि जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि एवं वर्षा के असंतुलन से मृदा नमी प्रभावित हो रही है, जिससे कृषि उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। अतः कृषि क्षेत्र में बेहतर उत्पादन के लिए मृदा नमी एवं तापमान का संतुलित प्रबंधन आवश्यक है। यह शोध किसानों, नीति-निर्माताओं एवं शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

मुख्य शब्द *- मृदा नमी, तापमान, पौधों की वृद्धि, कृषि उत्पादन, जलवायु परिवर्तन*

परिचय

कृषि उत्पादन सीधे तौर पर मृदा की गुणवत्ता, नमी और तापमान पर निर्भर करता है। पौधों की वृद्धि के लिए पानी और उचित तापमान अत्यंत आवश्यक होते हैं, क्योंकि ये दोनों कारक पौधों की जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। Soil Moisture पौधों को आवश्यक जल प्रदान करता है, जिससे पोषक तत्वों का परिवहन संभव होता है। वहीं Temperature पौधों की वृद्धि दर, एंजाइम गतिविधि और श्वसन प्रक्रिया को नियंत्रित करता है। यदि मृदा में नमी की कमी हो जाती है तो पौधे मुरझाने लगते हैं और उनकी वृद्धि रुक जाती है। इसी प्रकार अत्यधिक या अत्यल्प तापमान पौधों के विकास को प्रभावित करता है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन के कारण इन दोनों कारकों में असंतुलन देखा जा रहा है, जिससे कृषि उत्पादन प्रभावित हो रहा है। इसलिए इस अध्ययन में मृदा नमी और तापमान के भौतिक एवं जैविक प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. मृदा नमी का पौधों की वृद्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना।
2. तापमान का पौधों की जैविक क्रियाओं पर प्रभाव समझना।
3. दोनों कारकों के संयुक्त प्रभाव का विश्लेषण करना।
4. कृषि उत्पादन पर इनके प्रभाव को समझना।

---

* **नवीन शासकीय महाविद्यालय भिंभौरी, जिला - बेमेतरा (छ.ग.)**

† **नवीन शासकीय महाविद्यालय भिंभौरी, जिला - बेमेतरा (छ.ग.)**

परिकल्पना

H_1: मृदा नमी और तापमान पौधों की वृद्धि को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं।

H_0: मृदा नमी और तापमान का पौधों की वृद्धि पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं है।

शोध पद्धति

यह अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। इसमें विभिन्न सरकारी रिपोर्टों, शोध पत्रों एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के आंकड़ों का उपयोग किया गया है। डेटा स्रोतों में Food and Agriculture Organization, Indian Council of Agricultural Research तथा World Bank शामिल हैं। अध्ययन का प्रकार वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है।

साहित्य समीक्षा

1. Food and Agriculture Organization (FAO) की रिपोर्ट के अनुसार मृदा नमी पौधों की वृद्धि एवं कृषि उत्पादन का प्रमुख कारक है और पर्याप्त नमी होने पर फसल उत्पादन में वृद्धि होती है।

2. Indian Council of Agricultural Research (ICAR) के अनुसार तापमान में वृद्धि पौधों की जैविक क्रियाओं को प्रभावित करती है, जिससे उत्पादन में कमी आ सकती है।

3. World Bank के अध्ययन में बताया गया है कि जलवायु परिवर्तन के कारण मृदा नमी एवं तापमान में असंतुलन कृषि क्षेत्र पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है।

मृदा नमी का पौधों की वृद्धि पर प्रभाव

मृदा नमी पौधों की वृद्धि के लिए अत्यंत आवश्यक कारक है। यह पौधों को आवश्यक जल प्रदान करती है, जिससे पोषक तत्व जड़ों के माध्यम से पौधों के विभिन्न भागों तक पहुँचते हैं। मृदा में संतुलित नमी होने पर पौधों की जैविक क्रियाएँ जैसे प्रकाश संश्लेषण, श्वसन एवं वृद्धि सुचारु रूप से होती हैं। यदि मृदा में नमी की कमी हो जाती है तो पौधे मुरझाने लगते हैं और उनकी वृद्धि रुक जाती है, जबकि अत्यधिक नमी भी जड़ों के सड़ने का कारण बन सकती है। इस प्रकार मृदा नमी का संतुलन पौधों के स्वस्थ विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है जिसके तत्व निम्न प्रकार है :-

1. पोषक तत्वों का अवशोषण : मृदा नमी पौधों को पोषक तत्वों को घुलनशील रूप में उपलब्ध कराती है। जब मिट्टी में पर्याप्त नमी होती है, तो नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश जैसे तत्व आसानी से जड़ों द्वारा अवशोषित किए जाते हैं। नमी की कमी होने पर यह प्रक्रिया बाधित हो जाती है, जिससे पौधों की वृद्धि धीमी पड़ जाती है।

2. प्रकाश संश्लेषण पर प्रभाव : मृदा नमी का सीधा प्रभाव प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया पर पड़ता है। पानी की पर्याप्त मात्रा होने पर पौधे भोजन बनाने की प्रक्रिया को सही तरीके से कर पाते हैं। नमी की कमी होने पर पौधे अपने रंध्र बंद कर लेते हैं, जिससे कार्बन डाइऑक्साइड का प्रवेश कम हो जाता है और प्रकाश संश्लेषण की दर घट जाती है।

3. कोशिकीय वृद्धि : पौधों की कोशिकाएँ जल के कारण फैलती हैं, जिससे पौधे का आकार बढ़ता है। मृदा नमी की कमी होने पर कोशिकाएँ सिकुड़ जाती हैं और पौधे मुरझाने लगते हैं। इससे पौधों की ऊँचाई और विकास प्रभावित होता है।

4. वाष्पोत्सर्जन पर प्रभाव : मृदा नमी वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया को नियंत्रित करती है। जब मिट्टी में पर्याप्त नमी होती है, तो पौधे संतुलित रूप से जल का वाष्पोत्सर्जन करते हैं। लेकिन नमी की कमी होने पर पौधे पानी बचाने के लिए अपनी क्रियाओं को धीमा कर देते हैं, जिससे उनकी वृद्धि प्रभावित होती है।

5. जड़ों का विकास : मृदा नमी जड़ों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संतुलित नमी होने पर जड़ें गहराई तक फैलती हैं और पौधे मजबूत बनते हैं। अत्यधिक नमी से जड़ों में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है, जिससे जड़ सड़ने लगती है और पौधे कमजोर हो जाते हैं।

6. बीज अंकुरण : बीज अंकुरण के लिए मृदा में पर्याप्त नमी आवश्यक होती है। नमी बीज को फूलने में मदद करती है, जिससे अंकुरण प्रक्रिया शुरू होती है। नमी की कमी होने पर बीज अंकुरित नहीं हो पाते।

7. उत्पादन पर प्रभाव : मृदा नमी का सीधा संबंध फसल उत्पादन से है। पर्याप्त नमी होने पर फसल की गुणवत्ता और मात्रा दोनों में वृद्धि होती है। वहीं सूखे की स्थिति में उत्पादन में भारी कमी देखी जाती है।

तापमान का पौधों की वृद्धि पर प्रभाव

तापमान पौधों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण भौतिक कारक है। यह पौधों की विभिन्न जैविक क्रियाओं जैसे प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, एंजाइम क्रिया एवं जल संतुलन को नियंत्रित करता है। प्रत्येक पौधे के लिए एक अनुकूल तापमान सीमा होती है, जिसमें वह सर्वोत्तम वृद्धि करता है। अत्यधिक या अत्यल्प तापमान पौधों की वृद्धि को बाधित कर सकता है। तापमान में असंतुलन होने पर पौधों की जैविक प्रक्रियाएँ धीमी या बाधित हो जाती हैं, जिससे उनकी वृद्धि एवं उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिसके तत्व निम्न प्रकार है :-

1. एंजाइम क्रियाओं पर प्रभाव

तापमान का सीधा प्रभाव पौधों के एंजाइमों पर पड़ता है। अनुकूल तापमान पर एंजाइम सक्रिय रहते हैं और पौधों की जैविक क्रियाएँ सही तरीके से होती हैं। अत्यधिक तापमान एंजाइम को नष्ट कर सकता है, जबकि बहुत कम तापमान उनकी क्रिया को धीमा कर देता है।

2. प्रकाश संश्लेषण पर प्रभाव

तापमान प्रकाश संश्लेषण की दर को नियंत्रित करता है। अनुकूल तापमान पर यह प्रक्रिया तेज होती है, जिससे पौधों को पर्याप्त भोजन मिलता है। बहुत अधिक तापमान होने पर यह प्रक्रिया प्रभावित होती है और पौधों की वृद्धि धीमी हो जाती है।

3.श्वसन क्रिया

तापमान बढ़ने पर पौधों की श्वसन दर भी बढ़ जाती है। यदि श्वसन बहुत अधिक हो जाए, तो पौधे द्वारा निर्मित ऊर्जा का अधिक उपयोग हो जाता है, जिससे वृद्धि प्रभावित होती है। कम तापमान पर श्वसन धीमा हो जाता है, जिससे विकास रुक सकता है।

4. बीज अंकुरण

बीज अंकुरण के लिए उपयुक्त तापमान आवश्यक होता है। यदि तापमान बहुत कम या बहुत अधिक हो, तो बीज अंकुरित नहीं हो पाते। उचित तापमान पर बीज तेजी से अंकुरित होते हैं।

5. वाष्पोत्सर्जन पर प्रभाव

उच्च तापमान पर वाष्पोत्सर्जन की दर बढ़ जाती है, जिससे पौधों में जल की कमी हो सकती है। इससे पौधे मुरझा सकते हैं। संतुलित तापमान पर यह प्रक्रिया सामान्य रहती है और पौधे स्वस्थ रहते हैं।

6. फूल एवं फल निर्माण

तापमान का प्रभाव पौधों में फूल आने और फल बनने की प्रक्रिया पर भी पड़ता है। अनुकूल तापमान पर फूल और फल अच्छे बनते हैं, जबकि प्रतिकूल तापमान पर यह प्रक्रिया बाधित हो जाती है।

7. उत्पादन पर प्रभाव

तापमान का सीधा प्रभाव फसल उत्पादन पर पड़ता है। अत्यधिक गर्मी या ठंड के कारण उत्पादन में कमी आ सकती है। संतुलित तापमान होने पर उत्पादन बेहतर होता है।

संयुक्त प्रभाव

मृदा नमी एवं तापमान दोनों पौधों की वृद्धि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण कारक हैं, जो एक-दूसरे के साथ मिलकर कार्य करते हैं। जब तापमान बढ़ता है तो मृदा की नमी तेजी से वाष्पित हो जाती है, जिससे पौधों को आवश्यक जल की कमी हो जाती है और उनकी वृद्धि प्रभावित होती है। वहीं यदि मृदा में पर्याप्त नमी उपलब्ध हो, तो यह उच्च तापमान के प्रभाव को कुछ हद तक कम कर देती है और पौधों की जैविक क्रियाएँ सामान्य रूप से चलती रहती हैं। इन दोनों कारकों का संतुलन प्रकाश संश्लेषण, श्वसन एवं जल संतुलन जैसी प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है। यदि मृदा नमी और तापमान में असंतुलन हो जाए, तो

पौधों की वृद्धि, जड़ों का विकास एवं फसल उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन के कारण इन दोनों कारकों में अस्थिरता बढ़ रही है, जिससे कृषि उत्पादन प्रभावित हो रहा है। अतः पौधों के स्वस्थ विकास एवं अधिक उत्पादन के लिए मृदा नमी और तापमान का संतुलित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है।

द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण

1. मृदा नमी एवं उत्पादन संबंध

Food and Agriculture Organization के अनुसार जिन क्षेत्रों में मृदा नमी संतुलित रहती है, वहाँ फसल उत्पादन में 20-30% तक वृद्धि देखी गई है। इसका मुख्य कारण यह है कि पर्याप्त नमी होने पर पौधों को आवश्यक जल एवं पोषक तत्व आसानी से मिल जाते हैं। नमी के कारण मिट्टी में पोषक तत्व घुलनशील रूप में उपलब्ध होते हैं, जिससे जड़ें उन्हें आसानी से अवशोषित कर पाती हैं। इससे पौधों की वृद्धि तेज होती है और उनकी गुणवत्ता भी बेहतर होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि संतुलित मृदा नमी उच्च उत्पादन के लिए अत्यंत आवश्यक है।

2. नमी की कमी का प्रभाव

Indian Council of Agricultural Research के शोध के अनुसार, मृदा में नमी की कमी होने पर पौधों की वृद्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। पानी की कमी के कारण पौधों की कोशिकाएँ सिकुड़ने लगती हैं और पौधे मुरझा जाते हैं। इससे प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया प्रभावित होती है और भोजन निर्माण कम हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप पौधों की ऊँचाई, पत्तियों का विकास एवं उत्पादन सभी घट जाते हैं। सूखे की स्थिति में यह प्रभाव और अधिक गंभीर हो जाता है।

3. तापमान में वृद्धि का प्रभाव

उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार तापमान में वृद्धि पौधों की जैविक क्रियाओं को प्रभावित करती है। अधिक तापमान होने पर वाष्पोत्सर्जन की दर बढ़ जाती है, जिससे पौधों में जल की कमी हो जाती है। इसके कारण पौधे जल्दी सूख सकते हैं और उनकी वृद्धि रुक जाती है। साथ ही, अत्यधिक तापमान एंजाइम क्रियाओं को भी प्रभावित करता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण की दर घट जाती है। इस प्रकार उच्च तापमान पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन दोनों को प्रभावित करता है।

4. जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

World Bank के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि और वर्षा के पैटर्न में असंतुलन देखा जा रहा है। इससे मृदा नमी पर सीधा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वर्षा की अनियमितता के कारण कभी अधिक नमी और कभी अत्यधिक सूखा देखने को मिलता है। यह स्थिति पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल नहीं होती और कृषि उत्पादन में गिरावट आती है। इसलिए जलवायु परिवर्तन कृषि के लिए एक बड़ी चुनौती बन गया है।

परिकल्पना परीक्षण

इस अध्ययन में मृदा नमी एवं तापमान का पौधों की वृद्धि पर प्रभाव का परीक्षण करने के लिए परिकल्पना निर्धारित की गई है। मुख्य परिकल्पना (H_1) यह है कि मृदा नमी एवं तापमान पौधों की वृद्धि को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं, जबकि शून्य परिकल्पना (H_0) के अनुसार इनका कोई विशेष प्रभाव नहीं होता। द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण से यह पाया गया कि जिन क्षेत्रों में मृदा नमी संतुलित होती है तथा तापमान अनुकूल होता है, वहाँ पौधों की वृद्धि एवं फसल उत्पादन बेहतर होता है। इसके विपरीत, नमी की कमी एवं अत्यधिक तापमान की स्थिति में पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है और उत्पादन में कमी आती है।

विभिन्न संस्थाओं जैसे Food and Agriculture Organization ,oa Indian Council of Agricultural Research के आँकड़े भी इस तथ्य का समर्थन करते हैं कि मृदा नमी और तापमान का संतुलन पौधों के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार प्राप्त परिणामों के आधार पर शून्य परिकल्पना (H_0) को अस्वीकार किया जाता है तथा वैकल्पिक परिकल्पना (H_1) को स्वीकार किया जाता है।

चुनौतियाँ

1. जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि और वर्षा के पैटर्न में बदलाव हो रहा है। इससे मृदा नमी असंतुलित हो रही है।

2. कई क्षेत्रों में सूखा और बाढ़ जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं, जिससे कृषि उत्पादन प्रभावित हो रहा है। किसानों के पास आधुनिक तकनीकों की कमी भी एक बड़ी समस्या है।

इस प्रकार इन दोनों कारकों का प्रबंधन एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन गया है।

सुझाव

1. आधुनिक सिंचाई तकनीकों का उपयोग बढ़ाना चाहिए।

2. किसानों को प्रशिक्षण देना चाहिए।

3. तापमान नियंत्रित कृषि को बढ़ावा देना चाहिए।

4. जल संरक्षण पर ध्यान देना चाहिए।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि मृदा नमी एवं तापमान दोनों ही पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण कारक हैं। मृदा नमी पौधों को आवश्यक जल एवं पोषक तत्व प्रदान करती है, जबकि तापमान पौधों की जैविक क्रियाओं जैसे प्रकाश संश्लेषण, श्वसन एवं एंजाइम गतिविधियों को नियंत्रित करता है। अध्ययन में प्राप्त द्वितीयक आँकड़ों से यह पाया गया कि संतुलित मृदा नमी एवं अनुकूल तापमान की स्थिति में पौधों की वृद्धि एवं फसल उत्पादन में वृद्धि होती है, जबकि इन दोनों कारकों में असंतुलन होने पर उत्पादन में गिरावट आती है। इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि एवं वर्षा के असंतुलन से मृदा नमी प्रभावित हो रही है, जो कृषि क्षेत्र के लिए एक गंभीर चुनौती बनती जा रही है। इस स्थिति में यह आवश्यक है कि मृदा नमी एवं तापमान के संतुलन को बनाए रखने के लिए उचित प्रबंधन तकनीकों को अपनाया जाए।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पौधों के स्वस्थ विकास एवं अधिक उत्पादन के लिए मृदा नमी और तापमान का संतुलित होना अनिवार्य है और इनके प्रभावी प्रबंधन से कृषि क्षेत्र में सकारात्मक सुधार संभव है।

संदर्भ

1. UNO (FAO). (2023). *The state of food and agriculture: Revealing new data on agricultural soil management*. रोम: Food and Agriculture Organization of the United Nations. Retrieved from https://www.fao.org/documents/card/en/c/cc7724en

2. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR). (2022). *Annual report: Agricultural research and crop pr oduction*. नई दिल्ली: Indian Council of Agricultural Research. Retrieved from https://icar.org.in/sites/default/files/ICAR-Annual-Report-2021-22-English.pdf

3. WordBank. (2021). *Climate change and agricultural development: A World Bank report*. W ashingtonDC: World Bank Group. Retrieved from https://www.worldbank.org/en/topic/climatechange/publication/climate-change-and-agriculture

4. भारत सरकार, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय. (2023). *Agricultural statistics at a glance*. New Delhi: Ministry of Agriculture and Farmers Welfare. Retrieved from https://agricoop.nic.in/sites/default/files/Agricultural%20Statistics%20at%20a%20Glance%202023%20%28English%29.pdf

Received: 11.01.2026 | Accepted: 15.01.2026 | Published: 28.02.2026

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संघठनात्मक (शाखा रूपी) तंत्र का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ चंदन कुमार* **आलोक निरंजन शर्मा†**

drkumarbhu@gmail.com **alokniranjansharma@gmail.com**

सार

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) एक सांस्कृतिक और राष्ट्रवादी संगठन है, जिसकी स्थापना २७ सितंबर १९२५ को डॉ. केशवराव बलीराम हेडगेवार ने की थी। यह शोध पत्र संघ के शाखा तंत्र की संगठनात्मक संरचना का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जो संगठन की आधारशिला और रीढ़ के रूप में कार्य करता है। शाखा, एक घंटे की व्यवस्थित कार्यपद्धति, स्वयंसेवकों के शारीरिक, बौद्धिक, और मानसिक विकास पर केंद्रित है, जिसका उद्देश्य हिंदू समाज का संगठन और राष्ट्र जागरण है। यह अध्ययन शाखा की संरचना, टोली प्रणाली, कार्यकर्मों का समय-विभाजन, और सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव का मूल्यांकन करता है। १३ मार्च २०२५ के अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के आँकड़ों के अनुसार, संघ की ५१७१० स्थानों पर ८३१२९ शाखाएँ, ३२१४७ मिलन, और १२०९१ मंडलियाँ कार्यरत हैं, जो इसके व्यापक विस्तार को दर्शाती हैं। शोध आत्मसम्मान, समर्पण, समरसता, और राष्ट्रभक्ति के विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण करता है, साथ ही शताब्दी वर्ष (२०२५) तक शहरी (३ %) और ग्रामीण (१ %) क्षेत्रों में स्वयंसेवकों की संख्या बढ़ाने की चुनौतियों पर प्रकाश डालता है। शोध विधि के रूप में गुणात्मक विश्लेषण और द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। शाखा तंत्र ने सामाजिक एकता और राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा दिया है, परंतु शहरीकरण, डिजिटल युग, और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के कारण इसे नवीन रणनीतियों की आवश्यकता है।

कुंजी शब्द:

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, शाखा तंत्र, शारीरिक विकास, बौद्धिक विकास, समरसता, भगवा ध्वज, स्वयंसेवक, शाखा टोली, हिंदू समाज, संगठनात्मक संरचना, राष्ट्र जागरण, सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव

परिचय

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) की स्थापना २७ सितंबर १९२५ को विजयदशमी के दिन डॉ. केशवराव बलीराम हेडगेवार ने नागपुर में की थी। हिंदू हितों की रक्षा और हिंदू समाज के संगठन के उद्देश्य से शुरू हुआ यह संगठन स्वयं को सांस्कृतिक संगठन के रूप में परिभाषित करता है। प्रारंभ में पाँच-छह विद्यार्थियों के साथ नागपुर के मोहिते वाड़ा में शुरू हुई शाखा आज भारत के लगभग हर कोने में फैल चुकी है। १९२६ में संगठन का नाम "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ" औपचारिक रूप से अपनाया गया, और १९२८ में गुरु पूर्णिमा के दिन भगवा ध्वज को संगठन का "गुरु" घोषित किया गया। भगवा ध्वज भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीयता, और स्वजागरण का प्रतीक है, और इसका चयन संगठन को व्यक्ति-केंद्रित न होकर तत्त्व-निष्ठ बनाने के लिए किया गया। १३ मार्च २०२५ के अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के आँकड़ों के अनुसार, संघ की ५१७१० स्थानों पर ८३१२९ शाखाएँ, ३२१४७ मिलन, और १२०९१ मंडलियाँ कार्यरत हैं। यह आँकड़ा संगठन के व्यापक नेटवर्क और सामाजिक प्रभाव को दर्शाता है। फिर भी, अपने शताब्दी वर्ष (२०२५) तक प्रथम सरसंघचालक के ३% शहरी और१% ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयंसेवकों के लक्ष्य को पूर्ण न कर पाना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। यह शोध पत्र शाखा तंत्र की संगठनात्मक

* **असिस्टेंट प्रोफेसर, सीएमपी डिग्री कॉलेज, प्रयागराज**

† **शोधछात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, सीएमपी डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

संरचना, कार्यपद्धति, और सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव का विश्लेषण करता है। राजनीति विज्ञान के दृष्टिकोण से, यह अध्ययन संघ की कार्यप्रणाली को सामाजिक एकता, राष्ट्रवाद, और संगठनात्मक गतिशीलता के संदर्भ में समझने का प्रयास करता है।

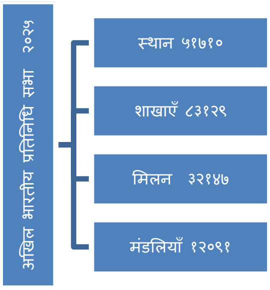

१.१ संघ का वर्तमान में कार्य विस्तार

चित्र २.१ – २०२४ और २०२५ के कार्य विस्तार का तुलनात्मक समीक्षा

उद्देश्य

- शाखा तंत्र की संगठनात्मक संरचना और कार्यपद्धति का विश्लेषण करना।
- शाखा तंत्र के माध्यम से हिंदू समाज के संगठन और राष्ट्र जागरण के प्रयासों का मूल्यांकन करना।
- शाखा तंत्र के सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव का अध्ययन करना।
- शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयंसेवकों की संख्या बढ़ाने की चुनौतियों और अवसरों की पहचान करना।

शोध विधि

इस शोध में गुणात्मक अनुसंधान पद्धति का उपयोग किया गया है, जो शाखा तंत्र की संरचना और प्रभाव को समझने के लिए उपयुक्त है। निम्नलिखित विधियाँ अपनाई गई हैं:

1. **द्वितीयक स्रोत विश्लेषण**: संघ के आधिकारिक दस्तावेज़, जैसे अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा वृत्त (२०२५), और अन्य प्रामाणिक साहित्य, जैसे सावरकर की *हिंदुत्व* और अंदेर्सन व दामले की द *ब्रदरहुड इन सैफरन*, का विश्लेषण किया गया है।
2. **साहित्य समीक्षा**: संघ के इतिहास, विचारधारा, और संगठनात्मक ढांचे पर उपलब्ध शैक्षिक साहित्य का अध्ययन किया गया है।
3. **वैचारिक विश्लेषण**: शाखा तंत्र के गीत, शुभाषित, और खेलों का विश्लेषण कर उनके सामाजिक-राजनीतिक महत्व को समझा गया है।
4. **सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ विश्लेषण**: शाखा तंत्र के प्रभाव को समकालीन सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिवेश (शहरीकरण, डिजिटल युग, वैश्वीकरण) के संदर्भ में अध्ययन किया गया है।

शोध में प्राथमिक डेटा संग्रहण की सीमाओं के कारण द्वितीयक स्रोतों पर अधिक निर्भरता रही है।

➢ **संघ निर्माण का उद्देश्य**

भारत पर ८००-९०० वर्षों तक उसके अलग – अलग हिस्सों पर विभिन्न विदेशी शक्तियों— मुस्लिम, पुर्तगालियों, डचों, और अंग्रेजों—का शासन रहा। इस लंबी गुलामी ने भारतीय समाज में आत्मसम्मान और राष्ट्रीय गौरव को कमजोर किया। स्वतंत्रता के पश्चात्, एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गई जो समाज को पुनर्जागृत करे और इसे विदेशी आधिपत्य से मुक्त रखे। स्वामी विवेकानंद, अरविंद घोष, और दयानंद सरस्वती जैसे विचारकों ने हिंदू समाज के पुनर्जनन और सांस्कृतिक गौरव की पुनर्स्थापना पर बल दिया। डॉ. हेडगेवार ने इस विचार को मूर्त रूप देने के लिए शाखा तंत्र की स्थापना की, जो प्रतिदिन एक निश्चित समय और स्थान पर स्वयंसेवकों को एकत्रित कर शारीरिक, बौद्धिक, और मानसिक विकास के माध्यम से समाज को संगठित करता है।

संघ ने विनायक दामोदर सावरकर की पुस्तक *हिंदुत्व: हू इज़ अ हिंदू?* (१९२३) को वैचारिक आधार बनाया। इस पुस्तक में हिंदू को केवल धार्मिक समुदाय के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय पहचान के रूप में परिभाषित किया गया है। संघ भारत को हिंदू राष्ट्र मानता है और हिंदू समाज के संगठन को राष्ट्रीय एकता का आधार मानता है। शाखा तंत्र इस विचारधारा को समाज के हर स्तर पर प्रसारित करने का प्रमुख साधन है, जो स्थानीय स्तर पर स्वयंसेवकों को प्रशिक्षित कर सामाजिक और राष्ट्रीय जागरण को बढ़ावा देता है।

➢ **शाखा तंत्र की संरचना**

शाखा, संघ की आधारभूत इकाई है, जो एक निश्चित स्थान (संघ स्थान) पर प्रतिदिन एक घंटे की व्यवस्थित कार्यपद्धति के रूप में संचालित होती है। यह शारीरिक, बौद्धिक, और मानसिक विकास के लिए डिज़ाइन की गई है। संघ का मानना है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन और स्वस्थ मन में स्वस्थ मस्तिष्क विकसित होता है, जो राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक है। शाखा में स्वयंसेवक स्वेच्छा से भाग लेते हैं। एक बार भगवा ध्वज के समक्ष प्रणाम करने के बाद व्यक्ति स्वयंसेवक बन जाता है, और यह पहचान जीवनभर बनी रहती है। संघ में औपचारिक सदस्यता की कोई व्यवस्था नहीं है, जो इसे अन्य संगठनों से अलग बनाता है।

- **शाखा टोली**

शाखा टोली शाखा के संचालन की आधारभूत इकाई है, जिसमें निम्नलिखित दायित्व शामिल हैं:

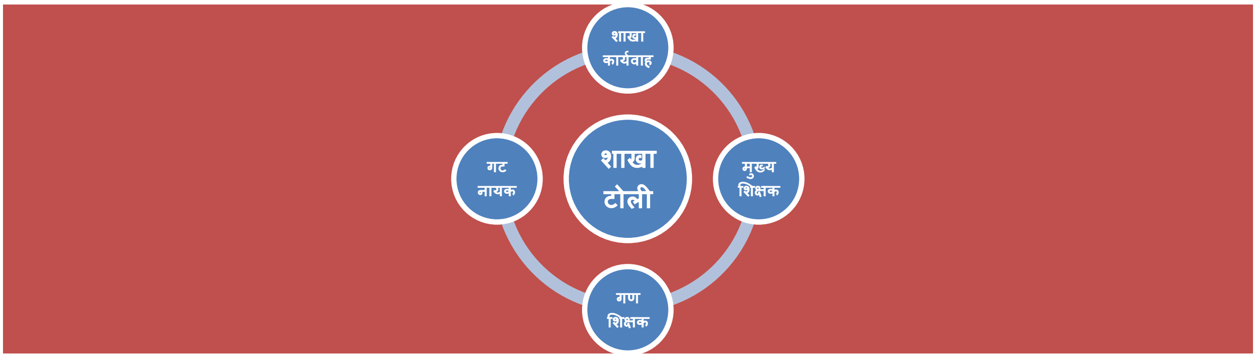

१.२ शाखा टोली की सरंचना

१ शाखा कार्यवाह: शाखा का प्रमुख, जो शाखा क्षेत्र के सभी स्वयंसेवकों की जिम्मेदारी लेता है। कार्यवाह शाखा रजिस्टर तैयार करता है, जिसमें स्वयंसेवकों की सूची (सक्रिय और निष्क्रिय), प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की जानकारी, और शाखा की वार्षिक कार्ययोजना शामिल होती है। यह नगर बैठकों में भाग लेता है, शाखा का साप्ताहिक वृत्त प्रस्तुत करता है, और गुरु दक्षिणा जैसे कार्यक्रमों के लिए स्वयंसेवकों से संपर्क करता है। कार्यवाह शाखा क्षेत्र में होने वाले सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का समन्वय भी करता है।

२ मुख्य शिक्षक: शाखा के संचालन का प्रभारी, जो ६० मिनट के कार्यकर्मों का समय-विभाजन और संचालन करता है। यह सैन्य अनुशासन के आधार पर कार्य करता है और गण शिक्षकों को प्रशिक्षित करता है। मुख्य शिक्षक की आज्ञा का पालन सभी स्वयंसेवक करते हैं, चाहे वे कितने ही वरिष्ठ हों। यह सीटी के संकेतों (एक लंबी और एक छोटी) के माध्यम से बेला परिवर्तन का निर्देश देता है।

३ गण शिक्षक: शारीरिक कार्यकर्मों (सूर्य नमस्कार, संचलन, दंड, नियुद्ध, यष्टि आदि) का संचालन करते हैं। ये स्वयंसेवकों में आत्मरक्षा, शारीरिक स्वास्थ्य, और सामूहिक अनुशासन के गुण विकसित करते हैं। प्रत्येक शाखा में कम से कम दो गण शिक्षक होते हैं, जिनकी संख्या स्वयंसेवकों की संख्या के आधार पर बढ़ाई जा सकती है।

४. **गट नायक**: सबसे छोटी इकाई, जो स्वयंसेवकों को शाखा तक लाने और उनके साथ नियमित संपर्क बनाए रखने का कार्य करता है। गट नायक स्वयंसेवकों के घरों तक संपर्क करता है, उनकी अनुपस्थिति के कारणों का पता लगाता है, और शाखा की संख्या बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह विशेष रूप से गुरु दक्षिणा और विजयदशमी जैसे बड़े कार्यक्रमों में सक्रिय होता है।

एक आदर्श शाखा

शाखा कारवा	-	१
मुख्य शिक्षक	-	१
गण शिक्षक	-	२
गट नायक	-	४
एक गट नायक पर ७ स्वयं सेवक	-	७ x ४ = २८
योग	-	३६

तालिका ३.१ - ३६ संख्या वाली शाखा एक आदर्श शाखा कहलाती है

संगठनात्मक ढांचा (टोली व्यवस्था)

संघ का संगठनात्मक ढांचा एक श्रेणीबद्ध और व्यवस्थित प्रणाली पर आधारित है, जो स्थानीय से राष्ट्रीय स्तर तक फैला है। निम्नलिखित तालिका इसका अवलोकन प्रस्तुत करती है:

टोली	प्रमुख कार्यकर्ता
अखिल भारतीय	सरसंघचालक, सरकार्यवाह, सह-सरकार्यवाह
क्षेत्रीय	क्षेत्रीय संघचालक, क्षेत्र कार्यवाह, क्षेत्र प्रचारक
प्रांतीय	प्रांत संघचालक, प्रांत कार्यवाह, प्रांत प्रचारक
विभागीय	विभाग संघचालक, विभाग कार्यवाह, विभाग प्रचा शारीरिक, बोद्धिक,और व्यवस्था विभाग रक शारीरिक, बोद्धिक,और व्यवस्था विभाग
जिला/भाग	जिला/भाग संघचालक, जिला/भाग कार्यवाह, जिला/भाग प्रचारक
नगर/खंड	नगर/खंड संघचालक, नगर/खंड कार्यवाह, नगर/खंड प्रचारक
शाखा (बस्ती)	शाखा कार्यवाह, मुख्य शिक्षक, गण शिक्षक, गट नायक

३.२ समस्त टोलियों की सूचि

इस ढांचे में प्रत्येक स्तर पर **सह-संघचालक, सह-कार्यवाह, और सह-प्रचारक** जैसे सहायक कार्यकर्ता भी शामिल होते हैं वो भी टोली का हिसा होते हैं। टोली के आलावा **संघठन श्रेणी** (शारीरिक, बोद्धिक,और व्यवस्था विभाग) **जागरण श्रेणी** (सेवा, संपर्क, और प्रचार विभाग) तथा **गतिविधि** (कुटुम्ब प्रबोधन, पर्यावरण,गो सेवा,धर्मजागरण, घुमंतू,

समाजिक समरसता, मुख्य मार्ग आदि) भी संघ के संघठनआत्मक ढाचे का हिस्सा होते हैं, ये सभी कार्य विभाग नगर से अखिल भारतीय स्तर तक में रचना में है, इन सभी कार्य विभाग में एक प्रमुख और उसके सहियोग के लिए उसकी अपनी कार्यविभाग की भी एक टोली होती है।

१.३ संघ का संगठनात्मक ढांचा

सरसंघचालक संगठन का सर्वोच्च अधिकारी होता है, जो नीति निर्माण और दिशा-निर्देश प्रदान करता है, जबकि गट नायक सबसे निचले स्तर का कार्यकर्ता है, जो स्थानीय स्तर पर स्वयंसेवकों से सीधा संपर्क रखता है। यह श्रेणीबद्ध संरचना संगठन को प्रभावी और अनुशासित बनाती है।

शाखा की कार्यपद्धति

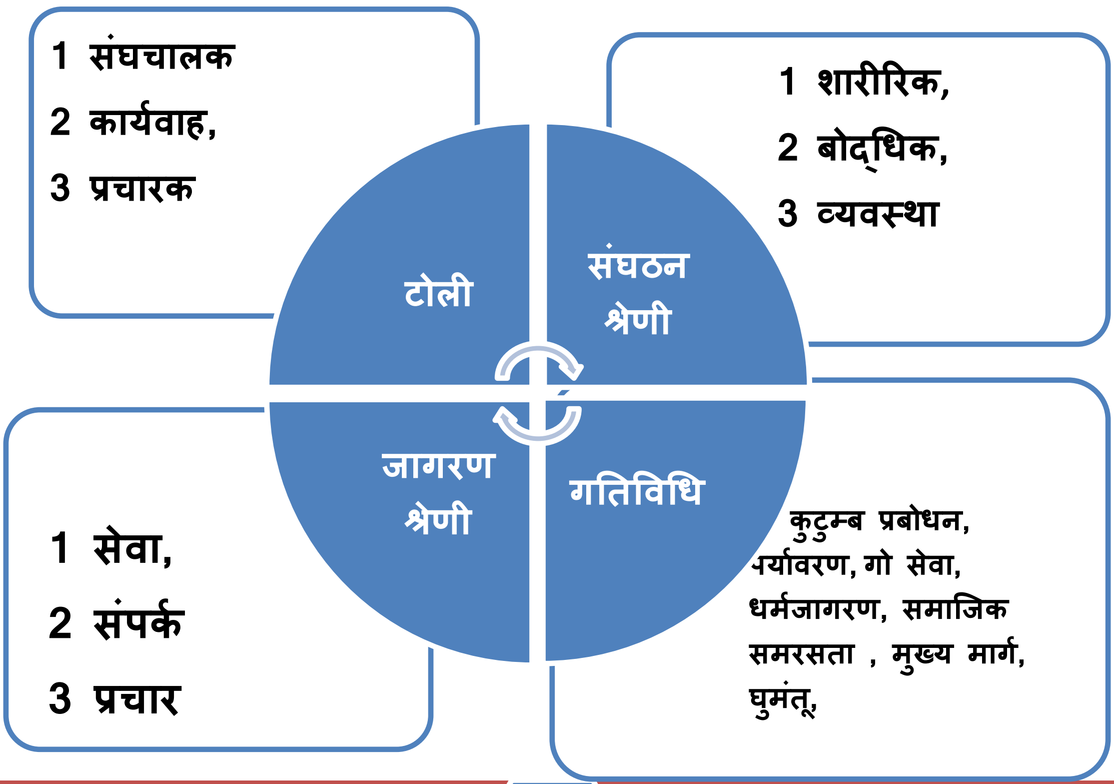

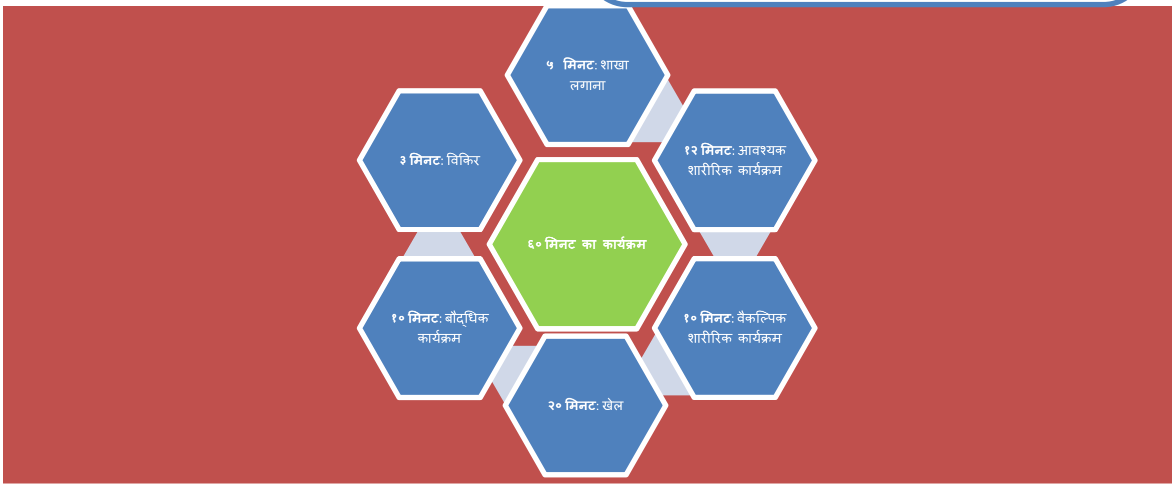

१.४ शाखा का ६० मिनट का कार्यक्रम

शाखा का६० मिनट का कार्यक्रम निम्नलिखित हिस्सों में बँटा है:

- **५ मिनट**: शाखा लगाना
- **१२ मिनट**: आवश्यक शारीरिक कार्यक्रम {सूर्य नमस्कार: ५ मिनट, संचलन:५ मिनट, दंड प्रहार: २ मिनट (स्थिति १ + प्रहार १)}
- **१० मिनट**: वैकल्पिक शारीरिक कार्यक्रम (दंड, नियुद्ध, यष्टि, समता)
- **२० मिनट**: खेल (कबड्डी, टैंक युद्ध, चील झपटा, लाहौर हमारा है, उत्तरकाशी का भूकंप आदि)
- **१० मिनट**: बौद्धिक कार्यक्रम (गीत, शुभाषित, अमृतवचन)
- **३ मिनट**: विकिर (प्रार्थना, ध्वज प्रणाम, समापन)

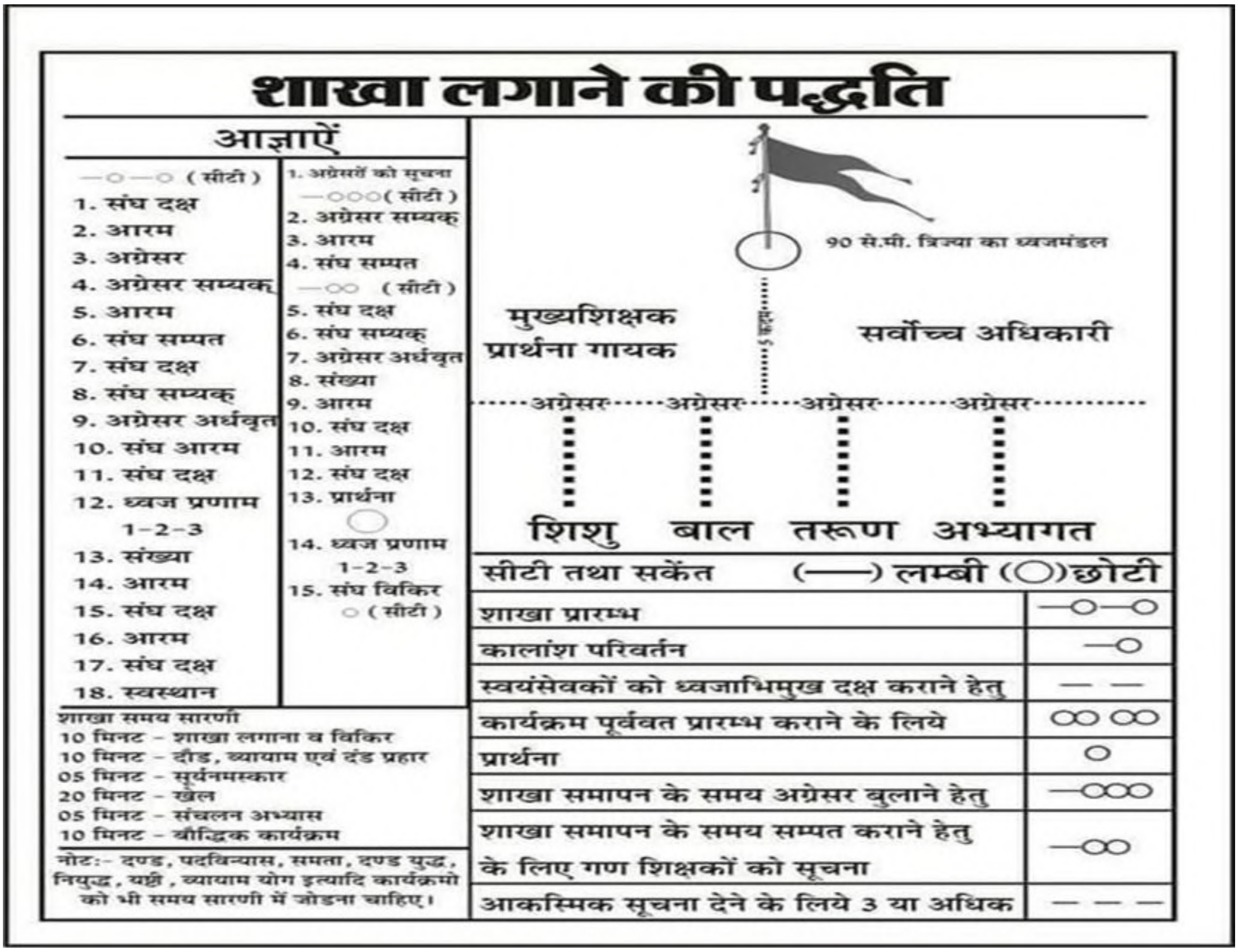

२.२ शाखा की सम्पूर्ण रुपरेखा आज्ञाओ के साथ

शारीरिक कार्यक्रम

शारीरिक कार्यक्रम स्वयंसेवकों में शारीरिक स्वास्थ्य, आत्मरक्षा, और सामूहिक अनुशासन विकसित करते हैं। **सूर्य नमस्कार** और **संचलन** और **व्यायाम** जैसे कार्यकर्म शारीरिक क्षमता और लचीलापन बढ़ाते हैं, जबकि **दंड** और **नियुद्ध,** और **यष्टि** आत्मरक्षा के कौशल सिखाते हैं। ये कार्यक्रम सैन्य प्रशिक्षण से प्रेरित हैं, जो स्वयंसेवकों में अनुशासन, एकता, और नेतृत्व के गुण पैदा करते हैं।

खेल- खेल शाखा का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जो सामाजिक समरसता, आत्मबल, और राष्ट्रभक्ति के भाव विकसित करते हैं। कुछ प्रमुख खेल और उनके उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

- **कबड्डी, टैंक युद्ध, चील झपटा**: आत्मबल, शारीरिक दक्षता, और सामूहिक समन्वय का विकास।
- **लाहौर हमारा है**: ऐतिहासिक गौरव और राष्ट्रवाद का भाव।
- **उत्तरकाशी का भूकंप**: सेवा भाव और सामाजिक उत्तरदायित्व।
- **पैर छू**: सामाजिक समरसता और भाईचारा।
- **महापुरुषों की चेन, डाक भेजना**: बौद्धिक दक्षता और स्मृति विकास।

संघ के पास १००० से अधिक खेलों की सूची है, जो विभिन्न श्रेणियों (स्पर्श के खेल, मंडल के खेल, दो दलों के खेल आदि) में विभाजित हैं। ये खेल मनोरंजन के साथ-साथ वैचारिक प्रशिक्षण का माध्यम हैं।

- **बौद्धिक कार्यक्रम**

संघ में बौद्धिक के अष्ट बिंदु होते हैं (शुभाषित, अमृतवचन,गीत,बोधकथा,छोटी कहानी,बड़ी कहानी समाचार समीक्षा और जिज्ञासा समाधान)परन्तु ३ (शुभाषित, अमृतवचन,गीत) शाखा के आवश्यक कार्यक्रमों में है बाकि सप्ताह में निर्धारित एक बौद्धिक दिवस के दिन किये जाते हैं, ये बौद्धिक कार्यक्रम स्वयंसेवकों में राष्ट्रीय चेतना, समरसता, और समर्पण के भाव विकसित करते हैं।

- **गीत-** गीतों को गण गीत, एकल गीत, और संचलन गीत में वर्गीकृत किया गया है।: " **भारत हमारी माँ है माता का रूप प्यारा करना इसी की रक्षा कर्तव्य है हमारा"** ....(राष्ट्रभक्ति)
- **"देश हमें देता है सब कुछ, हम भी तो कुछ देना सीखें...(**समर्पण)
- **"भरत भूमि की दसों दिशा में समरसता का गान हो। एक ही मंदिर एक जलाशय सबका एक श्मशान हो।।"** (समरसता)
- **"संस्कृती सबकी एक चिरंतन खून रगों मे हिंदु हैं विराट सागर समाज अपना हम सब इसके बिंदू**..." (हिंदू जागरण)

शुभाषित –

ये संक्षिप्त कथन स्वयंसेवकों को नैतिक और राष्ट्रीय मूल्यों से प्रेरित करते हैं। उदाहरण:

- **"हिन्दव: सोदरा: सर्वे, न हिन्दू: पतितो भवेत्। मम दीक्षा हिन्दू रक्षा, मम मंत्र: समानता।"** (सामाजिक समरसता)
- **"अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"** (मातृभूमि प्रेम)
- **"उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।"** (भारत का चित्रण)
- **हिमालयं समारभ्य यावत् इंदु सरोवरम् तं देवनिर्मितं देशं हिंदुस्थानं प्रचक्षते** हिमालय से लेकर हिन्द महासागर तक ये पूरी देवभूमि हमारा अपना भारत देश है।

न त्वहं कामये राज्यम् न स्वर्गम नापुनर्भवम्, कामये दुःख तप्तानाम् प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्।

- मैं न तो राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग, न मोक्ष; मैं केवल दुखियों के दुख नष्ट करने की कामना करता हूँ।

अमृत वचन

"हिंदू जाति का सुख ही मेरा और मेरे कुटुंब का सुख है। हिंदू जाति पर आने वाली विपत्ति हम सभी के लिए महासंकट है और हिंदू जाति का अपमान हम सभी का अपमान है। ऐसी आत्मीयता की वृत्ति हिंदू समाज के रोम-रोम में व्याप्त होनी चाहिए, यही राष्ट्र धर्म का मूल मंत्र है।" - डॉ. केशवराव बलीराम हेडगेवार (डॉ. साहब)

यह वचन सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता के महत्व को दर्शाता है, जो शाखा के माध्यम से स्वयंसेवकों में विकसित किया जाता है।

"शक्ति केवल सेना या शस्त्रों में नहीं होती, बल्कि सेना का निर्माण जिस समाज से होता है, वह समाज जितना राष्ट्रप्रेमी, नीतिमान और चरित्रवान संपन्न होगा, उतनी मात्रा में वह शक्तिमान होगा।" - (डॉ. साहब)

यह वचन समाज की नैतिक और वैचारिक शक्ति पर जोर देता है, जो शाखा के शारीरिक और बौद्धिक कार्यक्रमों के माध्यम से विकसित की जाती है।

"यह राष्ट्र हजारों वर्षों से हिंदू राष्ट्र है, हिंदू बनाना नहीं है, स्थापित नहीं करना है, इसकी घोषणा भी नहीं करनी है, अपितु हिंदू राष्ट्र का सर्वांगीण विकास करना है।" – माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर (गुरुजी)

यह वचन संघ की हिंदू राष्ट्र की अवधारणा को स्पष्ट करता है, जो शाखा के माध्यम से समाज में प्रचारित की जाती है।

"जब तक समाज में एकता और संगठन की भावना नहीं होगी, तब तक कोई भी राष्ट्र अपनी पूर्ण शक्ति का प्रदर्शन नहीं कर सकता।" - गुरुजी

यह कथन शाखा तंत्र के संगठनात्मक महत्व को दर्शाता है, जो सामाजिक एकता को बढ़ावा देता है।

"उठो, जागो और तब तक मत रुको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए।" यह स्वामी विवेकानंद का सबसे प्रसिद्ध कथन है, जो शाखा में स्वयंसेवकों को प्रेरित करता है कि वे अपने लक्ष्यों के प्रति दृढ़ संकल्पित रहें।

"जैसा तुम सोचते हो, वैसे ही बन जाओगे। खुद को निर्बल मानोगे तो निर्बल और सबल मानोगे तो सबल ही बन जाओगे।" यह वचन स्वयंसेवकों को सकारात्मक सोच और आत्मबल विकसित करने के लिए प्रेरित करता है, जो शाखा के शारीरिक और बौद्धिक कार्यक्रमों का आधार है।

"कलयुग में शक्ति का एकमात्र साधन 'संघ' है। अर्थात जो लोग एकजुट होकर संघ रूप में रहते हैं, संगठित रहते हैं, उनमें ही शक्ति है।" - बालासाहब देवरस

यह वचन संगठन की शक्ति और एकता के महत्व को रेखांकित करता है, जो शाखा तंत्र का मूल आधार है।

प्रार्थना: शाखा की प्रार्थना, जिसमें ३ श्लोक और १३ पंक्तियाँ (बोलते समय २१) शामिल हैं, संघ का मंत्र मानी जाती है। यह स्वयंसेवकों में एकता, समर्पण, और राष्ट्रीय गौरव का भाव जगाती है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखाओं में नैतिक कार्यक्रम

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखाएँ सामाजिक समरसता, एकता, और स्वयंसेवकों की संख्या वृद्धि के लिए विभिन्न नैतिक कार्यक्रम आयोजित करती हैं। ये कार्यक्रम स्वयंसेवकों में अनुशासन, सहयोग, और राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहित करते हैं। निम्नलिखित प्रमुख कार्यक्रम हैं:

वन विहार- शाखा अकेले या नगर की अन्य शाखाओं के साथ मिलकर नगर से बाहर ५-६घंटे का कार्यक्रम आयोजित करती है। स्वयंसेवक स्वयं भोजन तैयार करते हैं और उसी स्थान पर शाखा गतिविधियाँ (जैसे बौद्धिक सत्र, खेल, और प्रार्थना) आयोजित की जाती हैं।

उद्देश्य: प्रकृति के साथ जुड़ाव, सामूहिक कार्य, और स्वावलंबन की भावना को बढ़ावा देना।

चंदन कार्यक्रम- स्वयंसेवक आपस में चंदा (धन) एकत्र करते हैं, उससे खाद्य सामग्री मँगवाते हैं, और सभी मिलकर भोजन बनाते और बाँटकर खाते हैं।

उद्देश्य: सहयोग, सामूहिकता, और आर्थिक समानता की भावना को प्रोत्साहित करना।

सहभोज कार्यक्रम-

प्रत्येक स्वयंसेवक अपने घर से भोजन लाता है, जिसे एक स्थान पर एकत्र किया जाता है। इसके बाद भोजन को सभी के बीच बाँट दिया जाता है, बिना यह जाने कि कौन सा भोजन किसने लाया।

- **उद्देश्य:** सामाजिक समरसता और भेदभाव रहित एकता को बढ़ावा देना, जिससे स्वयंसेवकों में आपसी भाईचारा और समानता का भाव विकसित हो।

साहसिक यात्रा-

स्वयंसेवक ३०-४० किलोमीटर की साइकिल यात्रा करते हैं, जिसमें एक दिन का विश्राम और अगले दिन वापसी शामिल होती है।

- **उद्देश्य:** शारीरिक और मानसिक साहस, सहनशीलता, और सामूहिक अनुशासन को विकसित करना।

देव दर्शन- स्वयंसेवक मंदिरों, तीर्थ स्थलों, या महापुरुषों से संबंधित स्थानों (जैसे उनके स्मारक) का भ्रमण करते हैं।

- **उद्देश्य:** भारतीय संस्कृति, धर्म, और इतिहास के प्रति श्रद्धा और गौरव की भावना को प्रोत्साहित करना।

सरहद प्रणाम- स्वयंसेवक सीमावर्ती क्षेत्रों में जाकर देश की सीमाओं को प्रणाम करते हैं और वहाँ के निवासियों से जुड़ते हैं।

- **उद्देश्य:** राष्ट्रीय एकता, सीमावर्ती क्षेत्रों के प्रति जागरूकता, और देशभक्ति की भावना को सुदृढ़ करना ।

शाखा तंत्र का समाज पर प्रभाव

शाखा तंत्र संघ की सबसे प्रभावी इकाई है, जो स्थानीय स्तर पर समाज को संगठित करने और वैचारिक प्रसार का कार्य करता है। राजनीति विज्ञान के दृष्टिकोण से, शाखा तंत्र को निम्नलिखित संदर्भों में विश्लेषित किया जा सकता है:

सामाजिक समरसता : शाखा तंत्र ने सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गीत, शुभाषित, और खेल जैसे "पैर छू" और "भरत भूमि की दसों दिशा में समरसता का गान हो" सामाजिक एकता और भाईचारे को प्रोत्साहित करते हैं। शाखा में सभी स्वयंसेवक, चाहे उनकी सामाजिक, आर्थिक, या जातिगत पृष्ठभूमि कुछ भी हो, एक समान रूप से भाग लेते हैं। यह प्रक्रिया जातिगत और वर्गीय विभेदों को कम करने में सहायक रही है। उदाहरण के लिए, शाखा के सामूहिक खेल और भोजन कार्यक्रम विभिन्न समुदायों के बीच सामाजिक बंधन को मजबूत करते हैं।

राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय चेतना : शाखा तंत्र के माध्यम से संघ ने राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय चेतना को मजबूत किया है। "लाहौर हमारा है" जैसे खेल और "भारत हमारी माँ है" जैसे गीत स्वयंसेवकों में ऐतिहासिक गौरव और राष्ट्रीय एकता का भाव जगाते हैं। संघ की प्रार्थना और भगवा ध्वज का सम्मान राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रति श्रद्धा को बढ़ाता है। यह प्रक्रिया भारत को एक सांस्कृतिक और राष्ट्रीय इकाई के रूप में प्रस्तुत करती है, जो संघ की हिंदू राष्ट्र की अवधारणा से जुड़ी है। यह राष्ट्रवाद का मॉडल समकालीन वैश्वीकरण के दौर में भी प्रभावी रहा है, क्योंकि यह स्थानीय और सांस्कृतिक पहचान को प्राथमिकता देता है।

शारीरिक और मानसिक विकास –

शाखा के शारीरिक कार्यक्रम, जैसे सूर्य नमस्कार, दंड, और नियुद्ध, स्वयंसेवकों को शारीरिक रूप से सशक्त बनाते हैं, जबकि बौद्धिक कार्यक्रम उनके मानसिक और नैतिक विकास को बढ़ावा देते हैं। यह संतुलित दृष्टिकोण स्वयंसेवकों को न केवल व्यक्तिगत रूप से सक्षम बनाता है, बल्कि उन्हें सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों के लिए तैयार करता है। उदाहरण के लिए, सैन्य-प्रेरित संचलन और नियुद्ध स्वयंसेवकों में नेतृत्व, अनुशासन, और आत्मविश्वास विकसित करते हैं।

संगठनात्मक गतिशीलता

शाखा तंत्र की श्रेणीबद्ध संरचना और अनुशासित कार्यपद्धति इसे एक प्रभावी संगठनात्मक मॉडल बनाती है। शाखा कार्यवाह से लेकर सरसंघचालक तक की स्पष्ट कमान श्रृंखला और नियमित बैठकों की व्यवस्था संगठन को गतिशील और उत्तरदायी बनाती है। शाखा का वृत्त स्थानीय स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक जाता है, जो नीति निर्माण और कार्यान्वयन में पारदर्शिता और समन्वय सुनिश्चित करता है। यह संरचना संघ को बड़े पैमाने पर सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम, जैसे सेवा सप्ताह **(संघ ने आपने इसी शाखा की कार्यपदति से पुरे भारत में एक साथ ३१ प्रान्तों के ७२३ जिलो की ८४२६ शाखाओ में एकसाथ सेवा सप्ताह का आयोजन करने में सफलता हासिल की थी)** आयोजित करने में सक्षम बनाती है।

सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव

राजनीति विज्ञान के दृष्टिकोण से, शाखा तंत्र का सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव उल्लेखनीय है। शाखा ने न केवल सामाजिक संगठन को बढ़ावा दिया है, बल्कि भारतीय राजनीति में भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाला है। संघ से जुड़े संगठन, जैसे भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी), विश्व हिंदू परिषद (वीएचपी), और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (एबीवीपी), शाखा से प्रशिक्षित स्वयंसेवकों के माध्यम से सक्रिय हैं। ये संगठन संघ की विचारधारा को राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में प्रसारित करते हैं। उदाहरण के लिए, बीजेपी के कई नेता, जैसे नरेंद्र मोदी और अमित शाह, शाखा प्रशिक्षण से प्रभावित रहे हैं, जो उनकी नेतृत्व शैली और नीति निर्माण में दिखाई देता है।

शाखा तंत्र ने सामाजिक सेवा के क्षेत्र में भी योगदान दिया है। संघ द्वारा संचालित सेवा प्रकल्प, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, और आपदा राहत, स्थानीय स्तर पर शाखा के माध्यम से समन्वित किए जाते हैं। ये प्रकल्प समाज में संघ की स्वीकार्यता और प्रभाव को बढ़ाते हैं। हालांकि, हिंदू राष्ट्र की अवधारणा और इसके राजनीतिक संगठनों से संबंध कुछ वर्गों में विवाद का विषय है, जो शाखा की स्वीकार्यता को प्रभावित कर सकता है।

चुनौतियाँ और अवसर

शाखा तंत्र ने संघ को एक मजबूत संगठन बनाया है, परंतु इसे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है:

1. **शहरीकरण और आधुनिक जीवनशैली**: शहरी क्षेत्रों में समय की कमी, व्यस्त जीवनशैली, और डिजिटल व्याकुलता के कारण युवा शाखा में नियमित भागीदारी नहीं कर पा रहे हैं। शहरी क्षेत्रों में ३% स्वयंसेवकों का लक्ष्य अभी भी अधूरा है। उदाहरण के लिए, शहरी युवा सोशल मीडिया और डिजिटल मनोरंजन की ओर अधिक आकर्षित हैं, जिससे शाखा की पारंपरिक कार्यपद्धति कम प्रभावी हो रही है।
2. **ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता की कमी**: ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, संसाधनों, और जागरूकता की कमी के कारण १% स्वयंसेवकों का लक्ष्य प्राप्त करना कठिन है। बुनियादी ढांचे और संचार की कमी भी बाधा है। कई ग्रामीण क्षेत्रों में शाखा स्थापित करने के लिए उपयुक्त स्थान और प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की कमी है।
3. **सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन**: भारत में बढ़ता वैश्वीकरण और पश्चिमीकरण संघ की परंपरागत विचारधारा के लिए चुनौती है। युवा पीढ़ी को हिंदू राष्ट्र और समरसता की अवधारणा से जोड़ना एक जटिल कार्य है, क्योंकि वे वैश्विक संस्कृति और व्यक्तिवाद की ओर अधिक झुकाव रखते हैं।
4. **राजनीतिक ध्रुवीकरण**: संघ की हिंदू राष्ट्र की अवधारणा और इसके राजनीतिक संगठनों से संबंध कुछ वर्गों में विवाद का विषय है। यह ध्रुवीकरण शाखा की सामाजिक स्वीकार्यता को प्रभावित कर सकता है, विशेष रूप से अल्पसंख्यक समुदायों और उदारवादी समूहों में।

इन चुनौतियों के बावजूद, शाखा तंत्र के लिए कई अवसर भी हैं:

1. **डिजिटल तकनीक का उपयोग**: शाखा एप, ऑनलाइन बेठेक , सोशल मीडिया, और डिजिटल प्रशिक्षण मॉड्यूल शहरी युवाओं को जोड़ने में सहायक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, वर्चुअल बैठक और ऑनलाइन बौद्धिक सत्र युवाओं को शाखा की विचारधारा से जोड़ सकते हैं।
2. **युवा-केंद्रित कार्यक्रम**: खेल, सांस्कृतिक उत्सव, और स्टार्टअप जैसे आधुनिक क्षेत्रों में कार्यक्रम युवा पीढ़ी को आकर्षित कर सकते हैं। संघ ने हाल के वर्षों में युवा नेतृत्व प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन शुरू किया है, जो इस दिशा में एक कदम है।
3. **ग्रामीण जागरूकता अभियान**: ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, और सेवा प्रकल्पों के माध्यम से स्वयंसेवकों की संख्या बढ़ाई जा सकती है। शाखाएँ और स्थानीय नेताओं का प्रशिक्षण ग्रामीण क्षेत्रों में शाखा की पहुँच को बढ़ा सकता है।
4. **वैश्विक प्रसार**: प्रवासी भारतीय समुदाय के बीच शाखा तंत्र का विस्तार संघ की वैश्विक उपस्थिति को मजबूत कर सकता है। विश्व हिंदू परिषद और हिंदू स्वयंसेवक संघ जैसे संगठन पहले से ही इस दिशा में कार्य कर रहे हैं।

निष्कर्ष

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का शाखा तंत्र एक अनुशासित और व्यवस्थित कार्यपद्धति के माध्यम से हिंदू समाज के संगठन और राष्ट्र जागरण के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रभावी साधन सिद्ध हुआ है। शाखा की संरचना, टोली प्रणाली, और कार्यकर्मों ने स्वयंसेवकों में आत्मबल, समरसता, और राष्ट्रभक्ति को बढ़ाया है। ५१७१० स्थानों पर फैली ८३१२९ शाखाएँ, ३२१४७ मिलन, और १२०९१मंडलियाँ संगठन की व्यापक पहुँच को दर्शाती हैं। फिर भी, शताब्दी वर्ष में ३% शहरी और १% ग्रामीण लक्ष्य की प्राप्ति न होना एक महत्वपूर्ण चुनौती है।

राजनीति विज्ञान के दृष्टिकोण से, शाखा तंत्र न केवल सामाजिक संगठन का मॉडल है, बल्कि राष्ट्रीय और राजनीतिक चेतना को आकार देने का साधन भी है। इसकी श्रेणीबद्ध संरचना और अनुशासित कार्य पद्धति इसे एक प्रभावी संगठनात्मक मॉडल बनाती है, जो सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में व्यापक प्रभाव डालता है। हालांकि, शहरीकरण, डिजिटल युग, और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के संदर्भ में, संघ को अपनी रणनीतियों में नवाचार करना होगा जो वो करते ही भी दिखता हे संघ ज्वाइन आरएसएस, शाखा एप के द्वारा भी कार्य कर रहा है। डिजिटल तकनीकों का उपयोग, युवा-केंद्रित कार्यक्रम, और ग्रामीण जागरूकता अभियान इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हो सकते हैं। भविष्य में, शाखा तंत्र को और अधिक समावेशी और आधुनिक बनाकर संघ अपने वैचारिक और संगठनात्मक लक्ष्यों को पूर्ण कर सकता है।

संदर्भ

1. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ. (2025). *अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा वृत्त*, 13 मार्च 2025. नागपुर: संघ प्रकाशन.
2. सावरकर, वी. डी. (1923). *हिंदुत्व: हू इज़ अ हिंदू?*. पुणे: सावरकर प्रकाशन.
3. अंबेकर, सुनील. *राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ: स्वर्णिम भारत के दिशा-सूत्र*. प्रभात प्रकाशन.
4. चितकारा, एम. जी. (2004). *राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ: राष्ट्रीय उत्साह*. ए.पी.एच. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन.
5. इस्लाम, शम्सुल. (2015). *राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को जानिए: संघ के दस्तावेजों के आधार पर*. फारोस मीडिया एंड पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड.
6. इस्लाम, शम्सुल. (2017). *हिंदू राष्ट्रवाद और आरएसएस*. फारोस मीडिया एंड पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड.
7. कुमार, विजय. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ: क्या, क्यों, कैसे?. प्रभात प्रकाशन.
8. मेहता, रमेश. (2020). *राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ – विश्व में अप्रतिम संगठन*. प्रभात प्रकाशन.
9. शारदा, रतन. (2018). *आरएसएस 360°: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का रहस्योद्घाटन*. ब्लूम्सबरी इंडिया.
10. वैद्य, एम. जी. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का परिचय (चार पुस्तकों का सेट). प्रभात प्रकाशन.
11. https://www.reuters.com
12. https://www.rss.org/

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 11.01.2026 | Accepted: 15.01.2026 | Published: 28.02.2026

वैदिक दर्शन, नैतिकता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता: मानवता के लिए नई दिशा

डॉ. शालिनी सिंह*

singhshalini0306@gmail.com

वैदिक दर्शन भारतीय ज्ञान परंपरा की प्राचीन और आधारभूत दार्शनिक विचारधारा है। वैदिक दर्शन का आधारभूत ग्रंथ अपौरुषेय वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद,सामवेद, अथर्ववेद) और उससे संबंधित ग्रंथ है। वैदिक ग्रंथों में महज धार्मिकता ही नहीं अपितु मनुष्य जीवन को समग्रता से विचार किया गया है।वेद आर्यावर्त में निवासित मानवमात्र के प्राण हैं। यह मानवजाति के लिए प्रकाश स्तम्भ है। विश्व मानवता को संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद ही विश्व बन्धुत्व, विश्व-कल्याण और विश्व-शान्ति के प्रथम उद्घोषक हैं। वेदों से ही आर्य संस्कृति का विकास हुआ है, जो विश्व को धर्म, ज्ञान, विज्ञान, आचार-विचार और सुख-शान्ति की शिक्षा देकर उसकी समुन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है। वेद, वेदांग में व्यक्त भाव, व्यक्ति जीवन, समाज जीवन, राष्ट्र जीवन को देखने की जो दृष्टि प्रदान करते हैं वही वैदिक दर्शन है।

वैदिक दर्शन भारतीय चिंतन परंपरा की आधारशिला है। यह दर्शन केवल दार्शनिक सिद्धांतों का संग्रह नहीं, बल्कि जीवन को समझने, जीने और ऊँचा उठाने की समग्र पद्धति है। वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—मानव सभ्यता के प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं। इन्हीं से उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक और आगे चलकर वेदांत का विकास हुआ। वैदिक दर्शन का मूल उद्देश्य है—सत्य की खोज, आत्मबोध और लोककल्याण।

वैदिक दर्शन का केंद्रीय तत्व ब्रह्म है। ब्रह्म को परम सत्य, परम चेतना और सृष्टि का मूल कारण माना गया है। उपनिषदों में कहा गया है— "सर्वं खल्विदं ब्रह्म", अर्थात यह संपूर्ण जगत ब्रह्म ही है। इसी के साथ आत्मा और ब्रह्म की एकता का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया— "अहं ब्रह्मास्मि"। इसका तात्पर्य है कि मानव आत्मा और परमात्मा में मूलतः कोई भेद नहीं है। अज्ञान के कारण यह भेद प्रतीत होता है।

कर्म सिद्धांत वैदिक दर्शन का एक प्रमुख स्तंभ है। इसके अनुसार प्रत्येक कर्म का फल अवश्य मिलता है—"यथा कर्म तथा फल"। यह सिद्धांत मनुष्य को उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है। साथ ही पुनर्जन्म और मोक्ष की अवधारणाएँ मानव जीवन को एक व्यापक आध्यात्मिक संदर्भ प्रदान करती हैं। मोक्ष का अर्थ है—अज्ञान, बंधन और दुःख से मुक्ति।

"यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्" [1]

वैदिक दर्शन ऐसे मानवमात्र की बात करता है जो संपूर्ण विश्व को अपना ही परिवार, अपना ही घर मानने लगता है, वही उच्चतम मानवीय और आध्यात्मिक अवस्था है। इसमें भेदभाव, संकीर्णता और स्वार्थ का अभाव होता है तथा समभाव, करुणा और एकत्व-बोध की भावना प्रबल होती है।

यह विचार "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना से गहराई से जुड़ा हुआ है। जहाँ व्यक्ति 'मैं' और 'मेरा' की सीमाओं से ऊपर उठकर संपूर्ण सृष्टि को एक साझा आश्रय के रूप में देखता है। "वसुधैव कुटुंबकम्" का नैतिक आधार करुणा, अहिंसा और सहिष्णुता है। जब मनुष्य दूसरे को अपना ही समझता है, तब शोषण, हिंसा और वैमनस्य के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। यह विचार सामाजिक समरसता और वैश्विक शांति की नींव रखता है।

आज के वैश्विक युग में, जहाँ युद्ध, असहिष्णुता और पर्यावरण संकट बढ़ रहे हैं, यह सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक हो गया है। यह हमें सहयोग, सहअस्तित्व और प्रकृति-संरक्षण का मार्ग दिखाता है।

"सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा" [2]

---

* **असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिरसागंज, फिरोजाबाद**

यह सूक्ति भारतीय संस्कृति की प्राचीनता, गरिमा और विश्वव्यापक प्रभाव को रेखांकित करती है। इसका भावार्थ है—वह संस्कृति सबसे पहली है और सम्पूर्ण विश्व के लिए वंदनीय है। यह कथन भारतीय संस्कृति की उस विशिष्टता को प्रकट करता है, जिसने मानव सभ्यता को आध्यात्मिक, नैतिक और दार्शनिक दृष्टि से दिशा प्रदान की है।

भारतीय संस्कृति का मूल वैदिक परंपरा में निहित है। वेद संसार के प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं। इनमें जीवन, प्रकृति, समाज और ब्रह्मांड के गहन रहस्यों पर विचार किया गया है। वैदिक चिंतन केवल भौतिक उन्नति तक सीमित नहीं है, बल्कि आत्मा और परमात्मा के संबंध को समझने का प्रयास करता है। इसी कारण भारतीय संस्कृति को आध्यात्मिक संस्कृति कहा जाता है।

भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी सहिष्णुता और समन्वयशीलता है। यहाँ विविध मत, पंथ और विचारधाराएँ विकसित हुईं—वैदिक, बौद्ध, जैन, भक्ति और सूफी परंपराएँ—और सभी ने एक-दूसरे को स्वीकार किया। यह विविधता में एकता का श्रेष्ठ उदाहरण है, जिसने भारतीय संस्कृति को जीवंत और सशक्त बनाए रखा।

वैदिक दर्शन में ऋत एक अत्यंत महत्वपूर्ण और मूलभूत अवधारणा है। ऋत का अर्थ है—ब्रह्मांडीय नियम, सत्य, नैतिक व्यवस्था और प्राकृतिक संतुलन। यह वह सार्वभौमिक सिद्धांत है जिसके अनुसार संपूर्ण सृष्टि संचालित होती है। ऋत केवल प्राकृतिक नियम नहीं, बल्कि मानव आचरण को दिशा देने वाला नैतिक आदर्श भी है।

"ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।"[3]
"ऋतेन ऋतमापिहितं ध्रुवं वाम्।"[4]

ऋत केवल ब्रह्मांडीय व्यवस्था नहीं, बल्कि मानव नैतिकता का मूल स्रोत है। वैदिक दृष्टि में नैतिकता मनुष्य द्वारा निर्मित नहीं, बल्कि सृष्टि के स्वभाव में निहित है। जब मनुष्य अपने आचरण को ऋत के अनुरूप रखता है, तब समाज में संतुलन और शांति बनी रहती है।

ऋत से ही आगे चलकर धर्म की अवधारणा विकसित हुई। धर्म का अर्थ है—जो धारण करे, जो समाज और जीवन को स्थिर रखे। सत्य, अहिंसा, करुणा, कर्तव्यपालन और न्याय—ये सभी ऋत आधारित नैतिक मूल्य हैं। ऋत यह सिखाता है कि—

सत्य का पालन करना नैतिक कर्तव्य है।
अन्याय और असत्य सृष्टि के नियमों के विरुद्ध हैं।प्रकृति का शोषण ऋत का उल्लंघन है।
इस प्रकार ऋत व्यक्ति को केवल सामाजिक नहीं, बल्कि पर्यावरणीय नैतिकता भी सिखाता है।

वैदिक काल में राजा, समाज और व्यक्ति—सभी से अपेक्षा की जाती थी कि वे ऋत का पालन करें। राजा का कर्तव्य था न्यायपूर्ण शासन, समाज का कर्तव्य था मर्यादित आचरण और व्यक्ति का कर्तव्य था आत्मसंयम। ऋत का उल्लंघन करने पर प्राकृतिक और सामाजिक असंतुलन उत्पन्न होता है।

आज के संदर्भ में देखें तो युद्ध, पर्यावरण संकट, भ्रष्टाचार और नैतिक पतन को ऋत से विमुखता का परिणाम माना जा सकता है। आधुनिक मानव ने भौतिक प्रगति तो की, पर ऋत आधारित नैतिकता को उपेक्षित कर देता है।

आज जब विश्व नैतिक और पर्यावरणीय संकट से गुजर रहा है, ऋत का सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक हो गया है। यह हमें सिखाता है कि विकास तभी सार्थक है जब वह संतुलन, सत्य और नैतिकता पर आधारित हो। विज्ञान और तकनीक को भी ऋत के अनुरूप मानवीय कल्याण का साधन बनना चाहिए।

ऋत वैदिक दर्शन की आत्मा है। यह न केवल सृष्टि की व्यवस्था को समझाता है, बल्कि मानव जीवन को नैतिक दिशा प्रदान करता है। ऋत के बिना न तो समाज में न्याय संभव है, न जीवन में शांति। अतः कहा जा सकता है कि ऋत ही नैतिकता का शाश्वत आधार है, जो मानवता को अराजकता से व्यवस्था की ओर ले जाता है।

वैदिक दर्शन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता : नैतिक चेतना की अनिवार्यता

आधुनिक युग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) मानव सभ्यता की सबसे प्रभावशाली तकनीकी उपलब्धियों में से एक है। यह तकनीक सोचने, सीखने और निर्णय लेने की मानवीय क्षमता का अनुकरण करती है। किंतु जैसे-

जैसे AI का प्रभाव बढ़ रहा है, वैसे-वैसे नैतिकता, उत्तरदायित्व और मानवीय मूल्यों से जुड़े गंभीर प्रश्न भी सामने आ रहे हैं। ऐसे समय में वैदिक दर्शन एक गहन दार्शनिक और नैतिक दृष्टि प्रदान करता है, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता को मानवता के कल्याण की दिशा में मार्गदर्शित कर सकता है।

वैदिक दर्शन का मूल आधार ब्रह्म, ऋत और धर्म की अवधारणा है। ब्रह्म को परम चेतना माना गया है, जिससे समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई है। इसके विपरीत कृत्रिम बुद्धिमत्ता चेतना नहीं, बल्कि मानव द्वारा निर्मित एक गणनात्मक प्रणाली है। वैदिक दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि बुद्धि और चेतना में अंतर है। AI में बुद्धि का विकास संभव है, किंतु आत्मा या चेतना का नहीं। यह भेद समझना आवश्यक है, ताकि मानव स्वयं को मशीन के अधीन न कर दे।

''ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।''[5]

वैदिक दर्शन में ऋत अर्थात् ब्रह्मांडीय और नैतिक व्यवस्था का सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऋत के अनुसार सृष्टि नियम, संतुलन और मर्यादा से संचालित होती है। यदि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास ऋत-विरुद्ध होगा—जैसे मानव गरिमा की उपेक्षा, प्रकृति का शोषण या अन्यायपूर्ण निर्णय—तो यह समाज में असंतुलन और संकट उत्पन्न करेगा। अतः AI को केवल तकनीकी दक्षता नहीं, बल्कि ऋत-आधारित नैतिक अनुशासन से जोड़ा जाना चाहिए।

वैदिक दर्शन का एक केंद्रीय सूत्र है—''वसुधैव कुटुम्बकम्'', अर्थात संपूर्ण विश्व एक परिवार है। इस दृष्टि से कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उद्देश्य केवल आर्थिक लाभ या सत्ता-वृद्धि नहीं, बल्कि सार्वभौमिक कल्याण होना चाहिए। यदि AI का प्रयोग युद्ध, निगरानी, भेदभाव या शोषण के लिए किया गया, तो यह वैदिक मानवतावादी दृष्टि के प्रतिकूल होगा। इसके विपरीत स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक न्याय में इसका उपयोग वैदिक आदर्शों के अनुरूप माना जा सकता है।

वैदिक दर्शन में कर्म सिद्धांत भी अत्यंत प्रासंगिक है। प्रत्येक कर्म का फल अनिवार्य है। AI के संदर्भ में यह सिद्धांत हमें यह चेतावनी देता है कि जो निर्णय हम मशीनों के माध्यम से लागू करते हैं, उनके परिणामों की नैतिक जिम्मेदारी मनुष्य की ही होगी। ''मशीन ने निर्णय लिया'' कहकर मनुष्य अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता।

''वैदिक दर्शन जहाँ चेतना को ब्रह्म का स्वरूप मानता है, वहीं कृत्रिम बुद्धिमत्ता केवल गणनात्मक क्षमता है; अतः AI को मानवता का साधन बनाना है, स्वामी नहीं।''

निष्कर्ष

अंततः कहा जा सकता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता को दिशा देने के लिए वैदिक दर्शन एक नैतिक कम्पास प्रदान करता है। तकनीक शक्ति है, किंतु दिशा दर्शन देता है। यदि AI का विकास वैदिक मूल्यों—सत्य, करुणा, धर्म और ऋत—के अनुरूप किया जाए, तो यह मानवता के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है; अन्यथा यह गंभीर संकट का कारण बन सकता है।

वैदिक दर्शन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का संवाद आधुनिक सभ्यता के लिए अनिवार्य है, क्योंकि बिना नैतिक चेतना के बुद्धिमत्ता विनाश का कारण बन सकती है, और बिना तकनीक के दर्शन निष्क्रिय। दोनों का संतुलन ही मानव भविष्य की कुंजी है।

संदर्भ -

१. यजुर्वेद. (१२०० ई.पू.). अध्याय ३२, मन्त्र ८. (अनु: ग्रिफिथ, आर. टी.; तैत्तिरीय संहिता). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास

२. यजुर्वेद. (१२०० ई.पू.). अध्याय ७, मन्त्र १४. (अनुवाद: ग्रिफिथ, आर. टी.; तैत्तिरीय संहिता). दिल्ली: मोतीलाल बनारसी दास.

३. ऋग्वेद. (१५०० ई.पू.). मण्डल १०, सूक्त १९०, मन्त्र १. (अनुवाद: ग्रिफिथ, आर. टी.). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.

४. ऋग्वेद. (१५०० ई.पू.). मण्डल १, सूक्त २३, मन्त्र ६. (अनुवाद: ग्रिफिथ, आर. टी.). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.

५. ऋग्वेद. (१५०० ई.पू.). मण्डल १०, सूक्त १९०, मन्त्र १. (अनुवाद: ग्रिफिथ, आर. टी.). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.

Received: 12.01.2026 | Accepted: 15.01.2026 | Published: 28.02.2026

Effects of Surya Namaskar on Psychomotor Ability Depth Perception Between Kabaddi and Judo Players

DIGVIJAY NATH YADAV

digvijay86singh@gmail.com

Abstract

Statement of Problem- *Effects of Surya Namaskar on Psychomotor Ability Depth Perception Between Kabaddi and Judo Players.* ***Objective of the Study -*** *To assess the effect of Surya Namaskar on psychomotor Depth Perception Ability between Kabaddi and Judo players.* ***Hypothesis-*** *There shall not be any significant effect of Surya Namaskar on selected Psychomotor Depth Perception Ability Variables between Kabaddi and Judo players.* ***Research Method -*** *The present study is experimental-control prospective research that is strictly adheres to a scientific research design.* ***Results*** *Therefore, a significant effect of Surya Namaskar on Depth Perception Ability was found on the experimental Kabaddi and judo player group, whereas it was not found in the control group. The mean difference was not found significantly at pre-test ($p>0.05$) and post-test after Surya Namaskar was not found significantly at ($p>0.05$).*

Keys - *Surya Namaskar, Psychomotor Ability, Depth Perception, Kabaddi, Judo.*

Introduction

Physical education is an integral part of the educational process, which enhances and harmonizes the physical, intellectual, social and emotional aspects of our lives. As an integral part of sustainable, entertaining, yogic action education, it has a lot to offer. It is essentially a personal and direct form of educational experience and through its skills, joys, satisfactions, discoveries and achievements, much can be done to enrich and enliven the life of man. Thus, it is a powerful medium for the all-round development of human personality.

Sports are essential components of physical activities. Words like sports and sportsmanship connote fairness, honesty and gentleness. This is because sports promote cooperation, team spirit, discipline and some basic human values. They help in imbibing human qualities which are essential qualities of a good gentleman. Furthermore, sports contribute not only to physical fitness but also to healthy physical recreation.

Review of Literature

Simran K Dawoodani et. al. (2020)[1], Vibration affects on human body in many different ways. Majority of the population in India depends on motorcycle for their transportation. Vibration in motorcycle comes from handles, engine, inertial imbalance or any other external factors. One

such effect of vibration is seen on hand steadiness which is the ability to hold ones arm and hand in specific position for relatively short period of time without any undesirable movements. 9 hole steadiness test kit is used to check hand steadiness of the subjects. Objective: To compare hand steadiness in normal individual and delivery boys riding geared bikes using 9 hole steadiness test kit. Method: 100 subjects were selected as per inclusion and exclusion criteria, 50 were delivery boys riding geared bikes and 50 were normal individuals. Hand steadiness assessment was done using 9 hole steadiness test kit. Scores were noted, statistically analyzed and compared. Result: Statistical analysis showed there was significant difference in hand steadiness in delivery boys riding geared bikes as compared to normal individuals. Conclusion: Our present study concluded that hand steadiness is more affected in delivery boys riding geared bikes as compared to normal individuals.

Krzysztof Przednowek et. al. (2019) [2], The main purpose of the paper was to evaluate selected psychomotor abilities of handball players depending on the competition class (league), position on the court, training seniority and the dominant hand. The study covered a group of 40 handball players (age: 24.02 ± 3.99), while 50 non-training men (age: 22.90 ± 1.13) formed the control group. Studies were performed using Test2Drive computer tests. The following four tests were used for measuring psychomotor fitness: simple reaction time test, choice reaction time test, hand-eye coordination test and spatial anticipation test. An analysis revealed that handball players had better reaction times and movement times than the control group. The league, position on the court, training seniority and the dominant upper limb were analysed for their impact on the reaction time and movement time in handball players. An analysis of psychomotor abilities of handball players with regard to the league revealed that in the majority of tests the Superliga players had a shorter reaction time than players in lower leagues.

Sisodia, A. S. (2017) [3] reported a study on the topic **"Effect of Surynamaskar on flexibility of school girls".** The objectives of the study were to determine the effect of Surynamaskar on flexibility and to compare effect of different pace of Suryanamaskar on flexibility. Pretest-post-test group design was used for this study. Three groups were created, two experimental group and one control group. 15 girls were in each group in the age range of 16-18 years, out of 45 girls only 30 girls were able to complete total six weeks practices. First experimental group preformed Suryanamaskar with 2 minutes pace, second experimental group performed with 4 minute pace and third served as a control group. Total treatment duration was six weeks. Flexibility was measured by sit and reach test before (pretest) and after (post-test) the treatment pried of all three groups. To determine the effect of Suryanamaskar on flexibility of school girls analysis of covariance was used and level of significance was set at 0.05. In relation of flexibility, a significant improvement ($P < 0.05$) was found in both pace 2 and pace 4 at the end of six weeks of practice.

Dileep, N. S., & Razeena, K.I. (2014) [4] of the studied topic **'Effect of Asanas and Pranayama on Resting Pulse Rate among Engineering College Students.'** The aim of the study was to assess the impact of asana and pranayama on the resting pulse rate among engineering college students. Practice of asana and pranayama were considered as the independent variable and resting pulse rate was considered as the dependent variable. A total of sixty male students, aged 24 to 28 years were selected from engineering colleges in Rajahmundry, Andhra Pradesh. They were randomly divided into three groups of twenty each. The first experimental group practiced Asanas,

the second one was following pranayama practice and third group was kept as the control group. It was concluded that asana and pranayama treatment moderates the resting pulse rate and showed improvement among the engineering college students.

The survey of studies, it is known that no study related to the research topic has been done. This has been fulfilled in the present study.

Statement of Problem

Effects of Surya Namaskar on Psychomotor Ability Depth Perception Between Kabaddi and Judo Players

Objective of the Study

To assess the effect of Surya Namaskar on psychomotor Depth Perception Ability between Kabaddi and Judo players.

Hypothesis

There shall not be any significant effect of Surya Namaskar on selected Psychomotor Depth Perception Ability Variables between Kabaddi and Judo players.

Definition and Explanation of Terms

Surya Namaskar

In India, Sun-worship has been popular from prehistoric times. The Hindu scriptures are full of hymns of praise of the Sun-God, extolling His qualities as a life- giver, protector and destroyer of evil and darkness.

Surya is one of the important deities in the Vedas and personifies the Sun. The Sun is referred to as the 'Lord of Creation'. This heavenly body each morning wakes the universe and men from sleep. The Sun is also extolled as the guardian and preserver of cattle and the companion of travellers. Surya Namaskar or Sun Salutation is a set of 12 powerful yoga asanas (postures) which provide a great cardiovascular workout. It's also a great way to stay fit, and retain the peace of your mind and soul. Twelve poses of Surya Namaskar - 1. Pranama Asana, 2 Hastoutthan Asana, 3. Padhastha Asana, 4. Aswasanchalan Asana, 5. Parvata Asana, 6. Ashtanga Namaskar, 7. Bhujang Asana, 8. Parvata Asana, 9. Aswasanchalana Asana, 10. Padhastha Asana, 11. Hastoutthan Asana, 12. Pranam Asana.

Psychomotor Ability

Physical education and sports are mainly based on motor skills; the psychomotor components are of great concern to physical activities, verities of muscular activities responsible for psychomotor development. The movements of the upper and lower limbs or other body parts are necessary for systematic actions. Increasingly complex coordination of eyes, hands, and mind is the psychomotor ability of an individual.[5] (Singer, R. N., 1975)

Depth perception

Depth perception refers to the ability to distinguish the distance of objects or to make judgments about relative distance. It depends on the spatial awareness and relationship between an

object and a person. This capacity also called distance perception, adds a third dimension to height and width. Binocular vision (simultaneous vision with both eyes) is the primary basis for depth perception. The two eyes focus on an object from depth in one's perception. Monocular vision (seeing with one eye) tends to flatten things in the distance.

Depth perception is generally assumed to be an inherited physiological trait, which cannot be appreciably improved by practice. However, the ability to identify distances in terms of absolute measures can be improved to some extent. [6] (Titarmare, D. R., February, 21-23, 2013)

Kabaddi

Kabaddi is a combat sport in which two teams take turns chasing and trying to touch the players of the opposite team. Important facts about Kabaddi: Kabaddi is considered to be a sport native to the Indian subcontinent. The sport is popular in India as well as in Nepal, Bangladesh, Sri Lanka, and Pakistan. Kabaddi is known by many names, such as Chedugudu, Hu-Tu-Tu, Ha-Do-Do, Baibala, Kaudi, Kapardi, Sadugudu, Chakgudu. A Kabaddi match usually lasts for 40 minutes. The match begins with a coin toss. Each team is allowed two time-outs in each half. The Kabaddi court is as large as that of a dodge ball game. A line is drawn down the middle of the court, dividing it into two halves. According to the Kabaddi Federation, the size of the court is 13 meters × 10 meters. In Kabaddi, each team has seven players and five substitutes.

Judo

Judo is a martial art and sport that involves throwing, pinning, or subduing an opponent using leverage and quick movements: Origin: Judo originated in Japan in the late 19th century as an evolution of the martial art jujitsu(Meaning: The word "judo" means "gentle way"; Techniques: Judo techniques aim to use an opponent's strength against them, rather than directly opposing it; Objective: The goal in judo is to throw, pin, or master an opponent.; Competition: Judo competitions and free practice, called randori, do not allow strikes or thrusts with the hands or feet. However, these techniques are permitted in pre-arranged forms called kata; Olympic sport: Judo became an Olympic sport for men in 1964 and for women in 1992; Gender equity: Judo is one of the few sports where both boys and girls can compete together; Belts and ranking: Belts and ranking can help children track their progress and build confidence; Theory of ju yoku go o seisu: This theory states that a weaker opponent can defeat a stronger opponent by adjusting to and evading their opponent's attack.

Research Method

The present study is experimental-control prospective research that is strictly adheres to a scientific research design.

In the present Research-project the research design used is: - Pre-Post Double Group. Pre-Post Double Group: In experimental hypothesis-testing research when a group is exposed to usual conditions, it is termed a ‘control group’, but when the group is exposed to some novel or special condition, it is termed an ‘experimental group’. In the above illustration, the Group A can be called an experimental group Kabaddi Players, Group B experimental group Judo Players and the Group C Control group. Treatment impact is assessed by subtracting the value of the dependent variable in the experimental group area from its Pre and post value.

Selection of the Subjects (Sample):

The study will conduct on a sample of District level Kabaddi and Judo players from Uttar Pradesh State of India. The study is an experimental one, where pre-& post-test experimental design was followed. Three groups of students were selected and given Kabaddi Players to one group, Judo Players to second group and third one was controlled group. **Experimental group** – A total 30 (15 Kabaddi & 15 Judo) players kept in experimental group and categorized into two groups viz. Kabaddi group also called as a **group A**, and Judo players group also called as a **group B**, each carrying 30 subjects. **Control group (c)** - remaining 60 volunteers kept in control group. Each the groups were pre-tested and post-tested for selected Psychomotor Abilities components. The change in the dependent components credited to the particular exercises Surya Namaskar given to the groups. The present study is restricted to 60.

Depth Perception

Purpose: To measure the depth perception of the subject.

Equipment: Depth Perception Box, the Biological Concern, Calcutta.

Fig. 1 Depth Perception box (Depth Perception)

Procedure: Before collecting the data on depth perception all the subjects were explained the test clearly and the necessary amount of practice trial was given to all till, they became familiar with procedure of the test. The subject sat on a stool of adjustable height in such a position that the observation slit of the box was in level with his eyes and at such a distance from where he could see the steel rods only against the illuminated white background and no other part inside the box. The research scholar stood on one side of the box (Figure 2) and moved the middle rod towards inner side of the box (slit side) and slowly towards the fixed rods (inner to middle) and asked the subject to indicate when he (subject) felt that the middle rod had come in line with the fixed rods. The research scholar noted the actual distance from the zero mark. Similarly, outer to middle (from illuminated white background side to middle) the rod was moved and reading noted.

Scoring: Three trials each from inner to middle and from outer to middle were given to each subject and the least distance for both sides out of the three trials were taken as the depth perception score. This score was further rounded off to nearest centimetres as per the prescribed procedure.

Statistical Procedure

The data were examined using descriptive statistics and a paired t-test & ANOVA. A significance level of 0.05 was chosen

Analysis of Data And Results of the Study

Table 1

Effect of Surya Namaskar on Depth Perception Ability among Study Groups

Groups	Pretest		Post-test		Difference Mean	d.f.	't'
	mean	SD	mean	SD			
Kabaddi Experimental Group (N=15)	1.83	0.58	1.39	0.38	0.44	14	2.473*
Judo Experimental Group (N=15)	2.30	1.01	1.69	0.61	0.61	14	1.992*
Control Group (N=30)	1.94	0.82	1.92	0.75	0.03	29	0.131**
ANOVA'F'	1.396**		3.421*			2,57	

*Significant at 0.05 levels of significance. **Not Significant at 0.05 levels of significance.

Graph – 1 Mean value of Depth Perception Ability at pre & Post test in experimental and control groups

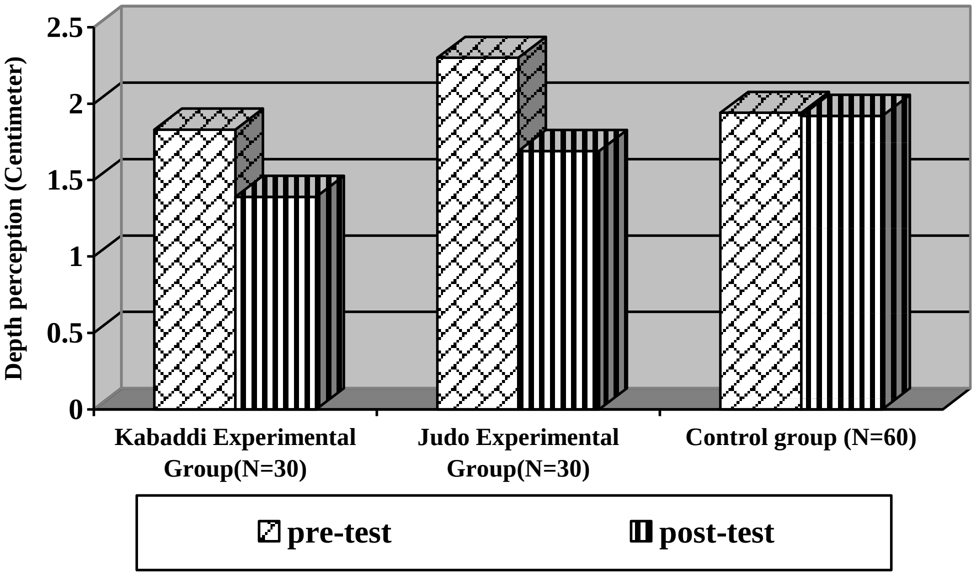

Table-Graph 1 indicates the mean difference of Depth perception between pre and post-test experimental groups Kabaddi & Judo and control.

The mean values of pre and post-test of Kabaddi experiment group in Depth perception were cited as 1.83 cm and 1.39 cm respectively. Whereas the S.D. of pre and post-test of Kabaddi experiment group in Depth perception were cited as 0.58 and 0.38 respectively and mean difference was 0.44. The 't' was calculated as 2.473 which was significant at the level of significance at $p<0.05$. Statistically significant mean difference shows the effect of Surya Namaskar on Psychomotor abilities (Depth perception) of Kabaddi players was found effective.

The mean values of pre and post-test of Judo experiment group in Depth perception were cited as 2.30 cm and 1.69 cm respectively. Whereas the S.D. of pre and post-test of Judo experiment group in Depth perception were cited as 1.01 and 0.61 respectively and mean difference was 0.61.

The 't' was calculated as 1.992 which was significant at the level of significance at $p<0.05$. Statistically significant mean difference shows the effect of Surya Namaskar on Psychomotor abilities (Depth perception) of Judo players was found effective.

The mean values of pre and post-test of control group in Depth perception were cited as 1.94 cm and 1.91 cm respectively. Whereas the S.D. of pre and post-test of control group in Depth perception were cited as 0.86 and 0.75 respectively and mean difference was .0267. The 't' was calculated as 0.131, which was not significant at the level of significance at $p>0.05$. Statistically not significant mean difference shows no effect of Surya Namaskar on Psychomotor abilities (Depth perception) of control.

The mean values of Depth perception ability at pre-test and post-test are described in the table according study groups. In the mean values of Depth perception ability at pre-test were 1.83 cm, 2.30 cm, 1.94 cm and post-test 1.39 cm, 1.69 cm, 1.92 cm in the Kabaddi, Judo and Control groups respectively.

Results

Therefore, a significant effect of Surya Namaskar on Depth perception was found on the experimental Kabaddi & judo player group, whereas it was not found in the control group.

The mean difference was not found significantly at pre-test ($p>0.05$) and post-test after Surya Namaskar was found significantly at ($p<0.05$).

References:

1. Simran K Dawoodani, Shruti Patil, Ajay Kumar (2020), Effect of Vibration on Hand Steadiness in Delivery Boys Riding Geared Bikes International Journal of Health Sciences and Research Vol.10, Issue: 9, September.
2. Przednowek, Krzysztof, Śliż, Maciej, Lenik, Justyna, Dziadek, Bartosz, Cieszkowski, Stanisław, Lenik, Paweł, Kopeć, Dorota, Wardak, Katarzyna, H. Przednowek, Karolina, (2019), Psychomotor Abilities of Professional Handball Players, Int J Environ Res Public Health. Jun, 16(11).
3. Sisodia, A. S. (2017), Effect of Surynamaskar on flexibility of school girls, International Journal of Physical Education, Sports and Health, 4(2), pp 154-156.
4. Dileep, N. S., & Razeena, K.I. (2014), Effect of Asanas and Pranayama on Resting Pulse Rate among Engineering College Students, Jnternational Journal of Physical Education Sports Management & Health Sciences, 1(1), pp 43-49.
5. Singer, R. N. (1975), Motor learning and human performance, (Second edition), MacMillan Publication, New York.
6. Titarmare, D. R. (February 21-23, 2013), A comparative study on depth perception among different ball games players, Preceedings of International conference on sports & exercise psychology, Dr. Ambedkar college, Nagpur.

Received: 13.01.2026 | Accepted: 20.01.2026 | Published: 28.02.2026

किसान की कर्ज समस्या संदर्भ : अकाल में उत्सव

डॉ. अनिता देवी*

anitasalaria86@gmail.com

सारांश (Abstract)

यह शोध पत्र भारतीय किसान की कर्ज समस्या का विश्लेषण करता है, विशेष रूप से अकाल में उत्सव के संदर्भ में। इसमें ग्रामीण जीवन की वास्तविकताओं, आर्थिक अभाव, सामाजिक दबाव और प्रशासनिक भ्रष्टाचार के कारण किसान के कर्ज जाल में फँसने की प्रक्रिया को रेखांकित किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि परंपरागत सामाजिक दायित्व, असफल कृषि व्यवस्था, प्राकृतिक आपदाएँ तथा सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में व्याप्त भ्रष्टाचार किसान की स्थिति को और दयनीय बनाते हैं। उपन्यास के पात्र रामप्रसाद के माध्यम से यह दिखाया गया है कि कर्ज केवल आर्थिक बोझ नहीं, बल्कि मानसिक और सामाजिक विघटन का भी कारण बनता है, जो अंततः आत्महत्या जैसी त्रासदी तक ले जाता है।

मुख्य शब्द (Keywords)

किसान, कर्ज समस्या, ग्रामीण जीवन, आर्थिक शोषण, भ्रष्टाचार, आत्महत्या, कृषि संकट, सामाजिक परंपरा

भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण इसकी मूल प्रकृति कृषि से संबंधित है। भारतीय जीवन की वास्तविक झलक गांव में पाई जाती है तथा गांव का भारतीय संस्कृति से घनिष्ठ संबंध है। भारत की सभ्यता और संस्कृति के मुख्य केंद्र गांव होने के कारण देश की आत्मा गांव में निवास करती है। भारत की व्यवस्था में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात परिवर्तन हुआ तथा ग्रामीण जीवन की उन्नति के लिए कई प्रयास हुए हैं। कृषि से संबंधित कई योजनाएं आई जैसे ग्रामीण विकास योजना, ग्रामीण क्रेडिट कार्ड योजना। महानगर और नगरों की भौतिक सुविधाएं गांव-गांव तक पहुंच रही हैं परंतु इन योजनाओं और सुविधाओं के बावजूद भी गांव उजड़ रहे हैं। देश का किसान आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण भीषण अभाव में जीने के लिए विवश हो गया है। यह अभाव जब हद से ज्यादा बढ़ जाते हैं तो विवशता पूर्वक उसके पास आत्महत्या के अलावा कोई रास्ता शेष नहीं रह जाता है। किसान की इस विवशता पूर्ण स्थिति का दर्शन पंकज सुबीर कृत उपन्यास "अकाल में उत्सव" में रामप्रसाद नामक किसान के माध्यम से होता है। किसानों में कर्ज की प्रथा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है। पिता की मृत्यु के पश्चात बेटा तथा फिर उसका बेटा कर्ज की परंपरा संभालता है जिसके कारण कर्ज और ब्याज के बोझ में दबे किसान की स्थिति बिगड़ती जाती है, लेखक के शब्दों में "राम प्रसाद का पिता मरा तो जमीन के साथ बैंक का, सोसाइटी का, सूदखोरों का कर्ज़ भी छोड़ गया था।"[1] इस तरह पिता के कर्ज को चुकाते-चुकाते किसान की स्थिति इतनी खराब हो जाती है कि उसे अपने बच्चों के लिए भविष्य में पेट पालने हेतु कर्ज का मोहताज होना पड़ता है। कर्ज़ गरीब किसानों के शोषण का भारी आयाम है। अर्थ हीनता के परिणाम स्वरुप गरीबों को अपने रिश्ते नातों में समारोह तथा शादी विवाह या नुक्ता आदि मामलों में वह अपने पास बची एकमात्र पूंजी जिसकी परंपरा पुरखो से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संभालने की जिम्मेदारी की तरह चली आ रही होती है को भी गिरवी रखना पड़ता है क्योंकि उन्हें अपनी इज्जत मान की रक्षा करनी होती है। राम प्रसाद की बहन की सास की मृत्यु पर वह और उसकी पत्नी कमला तीन दिन का पूरा खर्च करके अपने पास बचे पैसों को भी खर्च देते हैं। अपनी जरूरतों को नजरअंदाज करते हुए कमला का कहना है कि "बेन-बेटी को विपदा में भाई नी काम आएगा तो कौन आएगा। कपड़ा-लत्ता तो अभी सिलाओ ने कल फटी जाएगा, रिश्तेदारी फटी गी तो सिलाए भी नी।"[2]

परंपराओं को निभाते-निभाते बेचारा किसान तथा उसका परिवार अपनी आवश्यकताओं को पीछे छोड़ देता है। किसान की परेशानियों का कभी अंत नहीं होता। एक परेशानी जाती है तो दूसरी पहले ही दस्तक दे देती है। राम प्रसाद की बहन की सास के नुकते पर पहले तीन दिनों का खर्च करने के बाद अगले मृत्युभोज की चिंता उसे सताने लगी है कि पैसे कहां

*** सहायक आचार्य, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू**

से आएगें। कमला के शब्दों में "अभी तो एक परेसानी ने छूटया था ने दूसरी अइ गी। राम जी कई करो हो रे। किसान की जिंदगी जीना भी दोगा की नी होगा।"[3] किसान अपने दस खर्चे काटकर रिश्तेदारों में सम्मानपूर्ण जीवन का इच्छुक होता है। ऐसी मानसिकता से भी किसान कर्ज में डूबता है।

किसानों की स्थिति में सुधार लाने के लिए सरकार द्वारा कई योजनाओं का निर्माण किया गया है परंतु ये योजनाएं किसानों तक पहुंच ही नहीं पातीं। इनका मुख्य कारण यह है कि यहां से ये योजनाएं निकाली जाती हैं वहाँ के कर्मचारियों दूारा इन योजनाओं को खुद ही ठिकाने लगा दिया जाता है। लेखक का कहना है कि "जो गरीब हैं, जिनके लिए योजना आई है उनके पास नहीं पहुंच पा रहा है तो इनका मतलब यह भी मांसाहार ही हुआ ना।"[4]

किसानों के लिए "किसान क्रेडिट कार्ड योजना" में किसानों को साल में छः-छः महीनों में दो बार ब्याज पर पैसा मिलता है खाद्य अन्य खर्च करके अच्छी फसल होने पर कर्ज नियत समय के अनुसार चुका भी दिया जाता है। कर्ज समय पर ना चुकाने से जिस जमीन को आधार बनाकर कर्ज लिया जाता है उसे बैंक द्वारा जब्त कर लिया जाता है।इस विषय पर बैंक मैनेजर का कहना है कि "किसान क्रेडिट कार्ड सबसे आसान तरीका है बैंक से छह महीने के लिए नॉमिनल ब्याज पर पैसा लेने का। बिचौलिए और हमारे ही बैंक के लोग मिलकर सारा खेल करते हैं।... किसान तक को पता नहीं चलता कि उसके नाम से कोई किसान क्रेडिट कार्ड बना है।"[5] बेचारा किसान एक तो पहले से ही कर्ज के बोझ को सहकर घुटन भरा जीवन व्यतीत कर रहा है, दूसरा उसके नाम पर बने झूठे क्रेडिट कार्ड पर लिए गए पैसे को चुकाने में असमर्थ होकर वह टूट जाता है। राम प्रसाद इस बात की पुष्टि करता है कि "मैंने अंगूठो नी लगायो, कँइ भी नी कियो अने फिर यो कारड म्हारे नाम से कैसे बनी गयो, कौन बनवी लियो।"[6] इस बात से पता चलता है कि प्रशासन में किस हद तक भ्रष्टाचार फैला हुआ है तथा सरकार को इसके खिलाफ ठोस निर्णय लेने होंगे ताकि किसान को इन योजनाओं का पूरा लाभ प्राप्त हो और उनकी स्थिति में सुधार आए।

किसान का नुकसान फसल अच्छी आने की उम्मीद से होता है तथा वह कर्ज लेता जाता है। जब फसल आएगी तो उससे वसूल पैसे से कर्ज चुका दिया जाएगा। राम प्रसाद फसल अच्छी आने की उम्मीद से एक के बाद एक घर का जेवर भेजता जाता है कि वह जेवर वापस ले लेगा पर ऐसा नहीं होता। कर्ज से मुक्ति उसे नहीं मिलती। बिजली का पैसा भरने के लिए उसे पत्नी की तोड़ी (जो कि पैरों में पायल की जगह पहनी जाती है) को पहले गिरवी रखने के पश्चात बेचना पड़ता है जिससे भावनात्मक रूप से वह जुड़ा होता है। सुनार द्वारा तोड़ी को पिघलाने पर उसकी प्रतिक्रिया ऐसी होती है "कारीगर के लिए एक पुराना जेवर टूट रहा है और राम प्रसाद के लिए यह एक पुरानी परंपरा टूट रही है।"[7] किसान अपनी विवशता में भावनाओं को बेच कर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता है। कर्ज हमेशा ही किसान का शत्रु रहा है। वह उनकी जिंदगी हर तरह से बर्बाद कर देता है। कर्ज ब्याज ही नहीं वसूलता बल्कि व्यक्ति का स्वाभिमान भी चूस लेता है।

ग्रामीणों का शोषण करने वालों में प्रशासनिक कर्मचारी भी शामिल हैं, जिनमें ग्राम सेवक, चकबंदी अधिकारी, पटवारी, गिरदावर, चौकीदार तथा वी. डी. ओ. हैं। यह लोग विकास योजनाओं का गरीबों की अपेक्षा अमीरों को लाभ पहुंचाते हैं क्योंकि वहां से इनको पैसा मिलता है। गरीब किसान को मुआवजा भी यही लोग दिलाते हैं परंतु उसमें भी यह लोग अपना हक मांगने से पीछे नहीं हटते। राम प्रसाद एक और तो उसके नाम पर झूठा किसान क्रेडिट कार्ड बनाने के लिए परेशान है तो दूसरी तरफ फसल नष्ट होने पर मुआवजे की रिपोर्ट लेने के लिए पटवारी द्वारा पैसे मांगने से वह और भी परेशान हो जाता है। पटवारी का कहना है कि "कहने से कुछ नहीं होता। देने से होता है। भेंट पूजा करनी पड़ती है रिपोर्ट लिखवाने के लिए। कुछ लाया है क्या।"[8] इस प्रकार प्रशासन ही जब किसान से भेंट की मांग करें तो किसान बेचारा सदमे में नहीं जाएगा तो क्या होगा। भ्रष्ट शासन तंत्र से ही आम जनता का सरकार पर से विश्वास उठ जाता है। राम प्रसाद के पास दो एकड़ जमीन है उसका मुआवजा लेने के लिए एक एकड़ के एक हज़ार रुपए देने के लिए कहा जाता है। पटवारी का राम प्रसाद को कहना है कि "देख भाई पैसे का काम पैसे से ही होता है। बात से नहीं।... एक एकड़ के हजार रुपए। वे इसलिए कि तेरे खेत में सचमुच ओले पड़े हैं। जिनके यहां कोई नुकसान नहीं हुआ है, उनके लिए रेट एक एकड़ के ढाई हजार हैं।"[9] यह बात सुनकर राम प्रसाद सदमे में चला जाता है तथा कुएं में रस्सी लटका कर आत्महत्या कर लेता है। यह वाक्य इस बात की पुष्टि करता है कि किसानों का शोषण पटवारी लोगों का रोज का काम है तथा किसान जब रुपये देने की स्थिति में नहीं होता तो आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाता है। सरकारी दफ्तरों में भ्रष्टाचार इतना फैल चुका है कि कोई भी काम बिना पैसों के नहीं हो पाता उपन्यास में रमेश चौरसिया जो कि एक किसान भी है वह राकेश पांडे (एस डी एम) से किसानों के साथ होने वाले अन्याय तथा भ्रष्ट शासन की पोल खोलता है राकेश पांडे स्वयं कहता है कि "तो भ्रष्ट कौन नहीं है? किस विभाग में भ्रष्टाचार नहीं है? एक विभाग का नाम

बता दीजिए जिसमें भ्रष्टाचार नहीं हो। हमारे सिस्टम में भ्रष्टाचार एक टूल हो चुका है, जिसके बिना मशीन काम नहीं करती। जो भी सरकारी नौकरी में आ रहा है, वह तनख्वाह लेने नहीं आ रहा है, तनख्वाह तो प्राइवेट सेक्टर में भी मिलती है। अगर कोई आ रहा है तो वह इस भ्रष्टाचार की गंगा में डुबकी लगाने आ रहा है।"[10] राकेश पांडे का यह संवाद सरकारी संस्थानों में फैले भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करता है।भारत में ज्यादातर छोटे किसान कर्ज लेकर खेती करते हैं। कर्ज वापस करने के लिए जरूरी है कि फसल अच्छी हो। हमारे देश में सिंचाई की सुविधा बहुत कम किसानों को उपलब्ध है। ज्यादातर किसान खेती के लिए वर्षा पर निर्भर रहते हैं। अब ऐसे में यदि वर्षा ना हो तो भी फसल नहीं हो पाती या फिर फसल पकने से पहले ही ओलों या अधिक वर्षा से सारी फसल बर्बाद हो जाए तो किसान की सारी मेहनत और अच्छी फसल होने की उम्मीद नष्ट हो जाती है। उसके पास वर्ष भर खाने के लिए कुछ नहीं बचता, साथ ही कर्ज चुकाने का भय उसे लगातार सताता है। ऐसी स्थिति में बैंकों, महाजनों के चक्कर लगाने में वह विवश हो जाता है तथा कर्ज ना चुकाने पर उसे आत्महत्या के लिए मजबूर होना पड़ता है। ऐसे किसानों की समस्याओं को सरकार द्वारा हल किया जाना चाहिए तथा उचित से उचित योजनाएं बनाकर इन्हें लाभ पहुंचाना चाहिए। ताकि आत्महत्या जैसे कदम यह लोग न उठाएं और एक सुखी जीवन व्यतीत कर सकें।

निष्कर्ष (Conclusion)

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय किसान की कर्ज समस्या बहुआयामी है, जिसमें आर्थिक, सामाजिक और प्रशासनिक कारक समान रूप से जिम्मेदार हैं। अकाल में उत्सव में चित्रित घटनाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि कर्ज केवल आर्थिक संसाधनों की कमी का परिणाम नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने की बाध्यता, प्राकृतिक अस्थिरता और भ्रष्ट प्रशासनिक तंत्र का संयुक्त प्रभाव है। सरकारी योजनाओं का लाभ वास्तविक किसानों तक न पहुँच पाना तथा बिचौलियों और अधिकारियों द्वारा उनका दुरुपयोग इस समस्या को और गंभीर बनाता है। परिणामस्वरूप किसान मानसिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से टूट जाता है और कई बार आत्महत्या जैसे कदम उठाने को विवश हो जाता है।

अतः आवश्यक है कि पारदर्शी प्रशासन, प्रभावी कृषि नीतियाँ, ऋण प्रबंधन की सुदृढ़ व्यवस्था तथा सामाजिक जागरूकता के माध्यम से इस समस्या का समाधान किया जाए, ताकि किसान सम्मानजनक और सुरक्षित जीवन जी सके।

संदर्भ :-

1. सुबीर, पंकज. (2016). *अकाल में उत्सव*. मध्य प्रदेश : शिवाना प्रकाशन. पृ. 8

2. सुबीर, पंकज. (2016). *अकाल में उत्सव*. मध्य प्रदेश : शिवाना प्रकाशन. पृ. 41

3. सुबीर, पंकज. (2016). *अकाल में उत्सव*. मध्य प्रदेश : शिवाना प्रकाशन. पृ. 41

4. सुबीर, पंकज. (2016). *अकाल में उत्सव*. मध्य प्रदेश : शिवाना प्रकाशन. पृ. 16

5. सुबीर, पंकज. (2016). *अकाल में उत्सव*. मध्य प्रदेश : शिवाना प्रकाशन. पृ. 139

6. सुबीर, पंकज. (2016). *अकाल में उत्सव*. मध्य प्रदेश : शिवाना प्रकाशन. पृ. 136

7. सुबीर, पंकज. (2016). *अकाल में उत्सव*. मध्य प्रदेश : शिवाना प्रकाशन. पृ. 110

8. सुबीर, पंकज. (2016). *अकाल में उत्सव*. मध्य प्रदेश : शिवाना प्रकाशन. पृ. 203

9. सुबीर, पंकज. (2016). *अकाल में उत्सव*. मध्य प्रदेश : शिवाना प्रकाशन. पृ. 204

10. सुबीर, पंकज. (2016). *अकाल में उत्सव*. मध्य प्रदेश : शिवाना प्रकाशन. पृ. 172

अन्य संदर्भ :-

1. पाटिल, डॉ कृष्णा. (2011). *हिन्दी की ग्रामीण कहानियों में समाज*. कानपुर : विद्या प्रकाशन.

2. सुभाष, डॉ. कुट्टे धनाजी. (2018). *हिन्दी उपन्यासों में चित्रित कृषक जीवन*. कानपुर : विकास प्रकाशन.

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 13.01.2026 | Accepted: 20.01.2026 | Published: 28.02.2026

स्वामी विवेकानन्द जी के नारी विषयक विचार

समीक्षा सिंह* **sameekshasingh538@gmail.com**

डॉ. अभिलाष सिंह यादव† **शोध निर्देशक**

सारांश

स्वामी विवेकानन्द भारत देश की महान आत्मा थे, जिनके प्रति वर्तमान पीढ़ी ऋणी है और भावी पीढ़ी सदैव ऋणी रहेगी। स्वामी विवेकानन्द ने अपने कर्मठ और तेजीमय जीवन तथा गहन आध्यात्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विचारों की छाप विदेशों तक छोड़ी। सामाजिक जड़ता और धार्मिक विषमता को दूर करने का उन्होंने वैसा ही प्रयास किया है जैसा किसी तालाब के सड़े हुए पानी को साफ करने के लिए किया जाता है। स्वामी विवेकानन्द जी एक ऐसे युग पुरुष हैं जिन्होंने केवल समाज एवं धर्म के सुधार के लिए ही नहीं अपितु नारी के विकास एवं उत्थान पर एक प्रखर विचार को प्रस्तुत किया। उन्होंने स्त्री और पुरुष को समाज के दो पंख से परिभाषित किया है, विवेकानन्द जी का कहना था कि पक्षी कभी एक पंख से उड़ान नहीं भर सकते, अर्थात् दोनों (स्त्री व पुरुष) का सबल सक्षम एवं सारथी होना अति आवश्यक है। विवेकानन्द जी का मानना था कि स्त्री शक्ति विकास से ही समाज को जगाया जा सकता है तथा भारत की संस्कृति का पुनः निर्माण स्त्री और पुरुष के समान अवसर एवं अधिकार से ही सम्भव है।

इस शोध पत्र में स्वामी विवेकानन्द जी के नारी विषयक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। जिसके अन्तर्गत महिलाओं के शिक्षा, समानता, आर्थिक स्वावलम्बन एवं धार्मिक दृष्टिकोण में समानता जैसे विशिष्ट पहलुओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। स्वामी विवेकानन्द जी का नारी सम्बन्धित विचार वर्तमान समाज के लिए दिशा-दर्शक सिद्ध हो सकता है।

इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों न केवल ऐतिहासिक बल्कि आधुनिक नारी विमर्श के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना है तथा वास्तविक रूप में किस प्रकार उनके विचारों कि उपयोगिता उन्नीसवीं शताब्दी के लिए ही नहीं बल्कि इक्कीसवीं सदी के लिए किस प्रकार की प्रेरणा प्रस्तुत करती है। इसे दर्शाना है।

मुख्य शब्द-

नारी सशक्तिकरण, शिक्षा, समानता, सामाजिक सुधार, भारतीय संस्कृति, वास्तविक उन्नति, सामाजिक चुनौतियाँ, दिशा-दर्शक, स्वामी विवेकानन्द।

प्रस्तावना-

स्वामी विवेकानन्द जी ने हर एक क्षेत्र में अपने विचारों को स्पष्टता एवं मुखरता के साथ रखा है। उनके नारी विषयक विचार आज भी प्रासंगिक है। विवेकानन्द के उपदेशों की छाप भारत में नारी की स्थिति पर भी पड़ी है। वह उन्हें सताने और पुरुषों से हीन मानने के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने बार-बार इसकी ओर ध्यान केन्द्रित किया है कि प्राचीन भारत में बौद्धिक क्षेत्र में स्त्रियों को प्रमुख स्थान प्राप्त था। वह बाल विवाह, के कट्टर विरोधी थे तथा झांसी की नारी के प्रखर देशभक्ति और निर्भयता के प्रशंसक भी थे। स्त्रियों को सन्यास लेने पर उन्होंने प्रारम्भिक हिन्दू प्रतिबन्धों को तोड़कर सन्यासियों के लिए एक मठ की

* **शोध छात्र, महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर हण्डिया, प्रयागराज**
सम्बद्ध- प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

† **प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान विभाग), महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर हण्डिया, प्रयागराज**
सम्बद्ध- प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

स्थापना की और स्त्रियों के धार्मिक तथा अन्य विषयों की शिक्षा, सुविधाओं की डटकर वकालत की। वह इसके पक्ष में नहीं थे कि पुरुष सुधारक स्त्रियों को इस बारे में आदेश दें कि वे सदियों पुरानी हीनता से मुक्त होने के बाद भी किस प्रकार कार्य करें। उनका कहना था, "तुम अपनी स्त्रियों को शिक्षित करो और फिर उन्हें उनके हाल पर छोड़ दो। तब वे तुम्हें बताएंगी की क्या सुधार उनके लिए आवश्यक है, उनके मामले में दखल देने वाले तुम कौन होते हो।"

स्वामी विवेकानन्द जी ने स्त्री जाति पर विचार करते हुए खासकर भारतीय स्त्रियों की महिमा को प्रतिष्ठित किया है, विवेकानन्द जी के विचारानुसार "ईश्वर की प्रथम अभिव्यक्ति वह हाथ है जो पालना झुलाता है।" नारी का परम उत्कर्ष उसके ममत्व में है, और माँ ईश्वर का स्वरूप है।

श्वेताम्बर उपनिषद में उल्लेखित है-

"स्त्री त्वं पुमान्, त्वं कुमार उत वा कुमारी"

(तुम ही स्त्री हो, तुम ही पुरुष, तुम ही कुमार हो, तुम ही कुमारी कन्या हो)

स्वामी विवेकानन्द जी का मानना था कि एक नारी में ही स्त्री, पुरुष, कुमार और कुमारी सभी विद्यमान होते हैं। उन्होंने इस श्लोक को अपने विचारों में वर्णित करते हुए कहा था कि भारतीय नारी ईश्वर की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। स्त्री जीवन पूर्णतः इस विचार से ओतप्रोत है कि वह माँ बनने के लिए पूर्णतः पतिव्रता रहती है। विवेकानन्द जी ने कहा कि भारत में किसी भी मां ने अपने पुत्र/पुत्री संतान का त्याग नहीं किया। विवेकानन्द जी ने इस बात को सिद्ध करने की चुनौती दी है कि यदि किसी भारतीय स्त्री को अमेरिकन स्त्रियों की भाँति अपने शरीर को युवकों की कुदृष्टि के लिए खुला करने के लिए बाध्य किया जाए तो वह मरना पसंद करेंगी।

विवेकानन्द जी के विचारों में अनेकों सूत्र विद्यमान है जो आज के समय में सम्पूर्ण स्त्री जाति के विकास एवं उत्थान के लिए बहुत ही उपयोगी है। विवेकानन्द जी के विचार नारी गरिमा के प्रति उनके सम्मान एवं समर्थन के महत्व को समझाने में मदद करती है और आज हम उनके इन विचारों को बुनियाद बनाकर महिलाओं के समर्थन, प्रोत्साहन एवं उनके समूहों के विकास को बढ़ावा दे सकते हैं।

शोध पद्धति-

प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है जिसमें प्रमुख स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें हैं। साथ ही साथ उनके विचारों के प्रचार करने वाली पत्रिकाएं समाचार पत्रों तथा कुछ वेबसाइट का भी प्रयोग किया गया है। इस शोध पत्र की पद्धति विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक है।

स्वामी विवेकानन्द के नारी उत्थान पर विचार-

स्वामी विवेकानन्द की मान्यता थी कि किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर यह है कि वह स्त्रियों के साथ कैसा व्यवहार करता है। उन्होंने इस बात पर समर्थन किया कि हिन्दू धर्म में स्त्रियों की शिक्षा पर कोई पाबंदी नहीं है। उन्होंने विश्वासपूर्वक कहा था कि एक बार स्त्रियों को शिक्षा मिल जाये तो वह फिर अपने भविष्य की रूपरेखा स्वयं तैयार कर लेगी उनके भविष्य की रूपरेखा तैयार करना पुरुषों का काम नहीं है। उनका मानना था। कि ''भारत की स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाये जिससे वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्यों को भली-भांति निभा सके और संघमित्रा, लीला बाई, अहिल्या बाई और मीरा बाई आदि भारत की महान देवियों द्वारा चलाई गई महान परम्परा को आगे बढ़ा सके एवं वीर बन सके।"

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि वेदान्त की घोषणा है कि जब सभी प्राणियों में वही एक आत्मा विराजमान है तब भारत की स्त्रियों और पुरुषों के बीच इतना भेद क्यों रखा गया है? उन्होंने कहा कि स्मृतियाँ आदि लिखकर एवं स्त्रियों पर कठोर नियम का बंधन डाल कर स्त्रियों को केवल संतान उत्पादक यंत्र बना दिया गया। स्वामी जी का कथन है कि देश की अवनति के जितने भी कारण है उनमें एक कारण शक्ति रूपिणी नारी का निरादर भी है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जिस राष्ट्र में स्त्रियों का समुचित सम्मान नहीं होता वहाँ कभी भी उन्नति तथा भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता है। उनका कहना था कि "यथार्थ शक्ति पूजा तो वह है जो यह जानता है कि ईश्वर विश्व में सर्वव्यापी शक्ति है और जो स्त्रियों में उस शक्ति का प्रकाश देखता है। इसी क्रम में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि हमारे देश में इसी दिशा में पतन का मुख्य कारण यह है कि हमने शक्ति की इस सजीव प्रतिमाओं के प्रति आदर भाव नहीं रखा। उन्हीं के शब्दों में, "जहाँ यह स्त्रियाँ दुःखी और उदासीन जीवन व्यतीत करती है उस

कुटुम्ब या देश की प्रगति और उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। स्त्रियों की बहुत सारी समस्याएँ होती हैं। उनकी सारी समस्याओं का निदान उनकी शिक्षा में ही निहित है।"

"हमारी भारतीय स्त्रियाँ किसी भी कार्य में संसार की अन्य स्त्रियों के समान ही दक्ष हैं।" ऐसा स्वामी जी का दृढ़ मत था। उनके अनुसार, स्त्रियों के लिए भी धार्मिक शिक्षा चरित्र निर्माण तथा ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। हिन्दू नारियाँ संयम व पवित्रता को जानती हैं। अन्ततः आवश्यकता इस बात की है कि उनके हृदय में आदर्श की भावना को तीव्र किया जाए ताकि आदर्श के अनुसार वे अपना चरित्र निर्माण कर सकें। स्वामी विवेकानन्द ने सीता को भारतीय नारी के सतीत्व एवं आदर्शों का उच्चतम प्रतीक माना है। स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध में स्वामी जी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं, "भारत की स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाए जिससे वह निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्यों को अच्छी तरह से निभा सके।" स्वामी जी के अनुसार भारत की स्त्रियां पवित्रता और त्याग की मूर्ति हैं।

स्वामी विवेकानन्द का कहना था कि आज की पुकार है कि माताएँ पवित्र एवं निर्भय बनें। यदि नारियाँ पवित्र, विदुषी एवं वीरांगना होंगी तो उनके द्वारा उत्पन्न पुत्र अपनी सेवा तथा कर्मों द्वारा देश का कल्याण करेंगे और देश में सम्मान, संस्कृति, ज्ञान, शान्ति और भक्ति की धारा प्रवाहित करेंगे। स्त्रियों को उपनिषद काल एवं वैदिक काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त थे। वे पुरुषों की भांति वेदों का अध्ययन करती थी। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने ऋषियों के स्थान को भी ग्रहण कर लिया। सैकड़ों ब्राह्मणों की भरी सभा में गार्गी ने याज्ञवल्क्य को ब्रह्म के बारे में शास्त्रार्थ करने की चुनौती दी थी। स्त्रियों के लिए इतिहास, भूगोल, गृहविज्ञान, कला पारिवारिक जीवन, सिलाई, पाक कला, पारिवारिक कार्यों के नियम तथा शिशु पालन की शिक्षा दी जानी चाहिए। इन सभी विषयों के बारे में उनकी आंखें खोल देनी चाहिए। पठन-पाठन सामग्री में ऐसा प्रबन्ध हो जिससे वे वीरता एवं शौर्य के भाव ग्रहण कर सके। स्त्रियों की वीरता एवं शौर्य के भाव का विकास करने के साथ ही उनके लिए आत्मरक्षा की कला सीखना भी अत्यन्त आवश्यक है। इस संबंध में स्वामी जी ने झांसी की रानी की बहुत प्रशंसा की हैं आज के युग की पुकार है कि भारतीय स्त्रियां पवित्र और निर्भय बने जिसे वे अपनी तथा अपने देश की रक्षा कर सकें। स्वामी जी का विचार है कि जिस प्रकार पुरुष के लिए शिक्षा का केन्द्र बनेगा उसी प्रकार स्त्रियों के लिए भी शिक्षा का केन्द्र बनाया जाए, इसमें सच्चरित्रता एवं ब्रह्मचारिणी बनने की शिक्षा दी जानी चाहिए। उनको ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए कि वे धर्मपरायणता, नीति परायणता, सुग्रहणी बन सके। जिनकी माता धर्मपरायण एवं नीतिपरायण होती हैं उन्हीं के घर महापुरुष का जन्म होता है। जहां स्त्रियों का सम्मान नहीं किया जा सकता वहां स्त्रियां दुःखी रहती हैं। अन्ततः ऐसी स्थिति में देश की उन्नति नहीं हो सकती। देश को उठाने से पहले स्त्रियों को उठाना पड़ेगा।

स्वामी विवेकानन्द जी का कहना है कि धर्म परायणता, त्याग एवं संयत छात्राओं के लिए अलंकार होना चाहिए तथा दूसरों की सेवा उनके जीवन का व्रत होना चाहिए। यदि स्त्रियों का चरित्र इस आदर्श पर गठित हो जाए तो भारत में फिर से सीता, सावित्री, गार्गी का पदार्पण हो सकता है। अन्ततः देश की स्त्रियों को फिर से जागृत करने का काम शिक्षा का है। शिक्षा प्राप्त करने के बाद स्त्रियाँ समस्याओं को अपने आप सुलझा लेंगी। "स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुए बिना संसार के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं।"

निष्कर्ष-

नारी जाति की महानता को प्रकट करने के पश्चात् उनके वैचारिक स्तर पर पोषण प्रदान करने वाले विवेकानन्द जी ने स्त्री शिक्षा एवं स्त्रियों के लिए मठ की उपयोगिता के द्वारा उन्होंने अपने कार्य की योजना को प्रकट किया जो स्त्रियों के विकास की सम्पूर्ण योजना थी। उनके द्वारा प्रदत्त योजना पूरी तरह से क्रियान्वित होने से पूर्व ही उनका समय नजदीक आ गया जिसके कारण उनकी व्याग्रता उनके विचारों में झलकती दिखी, जो है-"स्त्रियों की दुर्दशा के लिए तुम ही लोग जिम्मेदार हो। देश की स्त्रियों को जागृत करने का भार भी तुम्हीं पर है। इसलिए तो मैं कहता हूँ कि बस काम में लग जाओ, क्या होगा व्यर्थ में केवल कुल वेद-वेदान्त को रट कर।"

स्वामी विवेकानन्द जी के विचार जितने मूल्यवान एवं उपयोगी तब थे उससे कहीं ज्यादा उपयोगी एवं प्रेरणादायक आज भी हैं। स्वामी जी ने नारी को समाज की शक्ति तथा उत्थान का मूल स्त्रोत माना है। उनके अनुसार किसी भी देश एवं राष्ट्र का विकास तभी सम्भव है जब उनकी महिलाएं सशक्त, शिक्षित, जागरूक एवं आत्मनिर्भर होंगी।

संदर्भ :-

1. विवेकानन्द, स्वामी. (1947–2017). *भारतीय नारी*. नागपुर: रामकृष्ण मठ.
2. विवेकानन्द, स्वामी. (1958–2022). *शिक्षा*. नागपुर: रामकृष्ण मठ.
3. Vivekananda, Swami. (2025). *Power of the Mind*. Ajay Pustak Books.
4. विवेकानन्द, स्वामी. *रोमाओ रोलाः*. Original Black Classic: An imprint of Sahitya Sarowar.
5. विवेकानन्द, स्वामी. *विवेकानन्द की आत्मकथा*. Original Black Classic: An imprint of Sahitya Saro war.
6. विवेकानन्द, स्वामी. *स्वामी विवेकानन्दः जीवन परिचय* (संपादक: मत्य कुमार). Ajay Pocket Books.
7. Vashishth, Alka. *Swami Vivekananda ki Jeevani*. Original Black Classic: An imprint of Sah itya Sarowar.
8. Vashishth, Alka. *Swami Vivekananda ki Jeevani*. Original Black Classic: An imprint of Sah itya Sarowar.
9. Vivekananda, Swami. (1998). *The Complete Works of Swami Vivekananda* (5 vols.). Kolkat a: Advaita Ashrama.
10. विवेकानन्द, स्वामी. (1989). *विवेकानन्द साहित्य, भाग-6*. कोलकाता: अद्वैत आश्रम.
11. चाँद, एस.एम. (1999). *स्वामी विवेकानन्दः जीवन और विचार*. जयपुर: श्याम प्रकाशन.
12. गुप्ता, शिवकुमार. (1999). *भारतीय चिन्तन का इतिहास*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
13. विजयेंद्र, शोभा माथुर. (2015). *राष्ट्र नायक विवेकानन्दः एक जीवनी*. दिल्ली: साकी प्रकाशन.
14. प्रधान, अवधेश. (2023). *स्वामी विवेकानन्द*. नोएडा (उ.प्र.): सेतु प्रकाशन.
15. Vivekananda, Swami. (1909). *East and West*. Vedanta Publications.

Received: 14.01.2026 | Accepted: 20.01.2026 | Published: 28.02.2026

Importance of Menstrual Hygiene Management for Girls with Disabilities: An Exploratory Study

ARSHI[*]
arshiahamedkhan@gmail.com

DR. R. JAMUNA[†]
rjamuna@jmi.ac.in

Abstract

Menstrual hygiene management (MHM) is an important aspect of health and dignity for adolescent girls, but girls with disabilities face additional challenges and barriers that are overlooked in research. This exploratory study explores the challenges and needs related to MHM among girls with disabilities, The purpose of the study was to identify challenges and needs during MHM training of adolescent girls with disabilities. A qualitative approach was used, involving informal interviews and observations with girls with disabilities, along with caregivers and educators. The findings reveal limited access to accessible sanitation facilities, lack of tailored information, and inadequate special educators/caregiver's training and support. Girls with disabilities experience unique difficulties that require inclusive and need specific interventions. The study highlights the importance of MHM training, addressing these challenges and barriers is essential to promote health, independence, and dignity for girls with disabilities, and to ensure their full participation in education and society.

Key: *Menstruation, Menstrual Hygiene Management, Adolescent Girls with Disabilities, special educators, caregiver.*

Introduction

Menstrual hygiene management (MHM) refers to management of hygiene associated with the menstrual process. WHO and UNICEF Joint Monitoring Programme (JMP) for drinking water, sanitation, and hygiene has used the following definition of MHM: Women and adolescent girls are maintain their menstrual period and use clean material during menstruation to absorb or collect menstrual blood, they maintain their required hygiene during menstruation like washing hands and dispose of used material during menstrual. They understand about the menstrual cycle.

The provision of adequate MHH among girls and women is reported to contribute to the attainment of Sustainable Development Goals (SDGs) for good health (SDG 3), education (SDG 4), gender equality (SDG 5), and clean water and sanitation (SDG 6). It is an important part of basic hygiene, sanitation and reproductive health services to which every woman and girl has a right (Water Supply and Sanitation Collaborative Council, 2015). From adolescence until menopause, reproductive health and menstrual hygiene management become important aspects in the life of a female. If attention is paid to these needs of adolescent girls, it will lay a good foundation for their physical

[*] **Research Scholar, Faculty of Education, Jamia Millia Islamia, Delhi**

[†] **Assistant Professor, Faculty of Education, Jamia Millia Islamia, Delhi**

and mental well-being and their ability to cope with the heavy demand of reproductive health later in life **(Muntunda, 2013**). An adolescent female with disability will have the same menstrual hygiene needs as other adolescent girls, but will need more knowledge and information since she may face additional challenges. Physical challenges, communication challenges, sensory challenges and caregiver challenges are notable challenges with respect to practicing hygienic menstruation among female adolescents with disabilities **(Beckeljauw, 2004).**

Menstruation being a very important part of life, most girls have to face lots of challenges in their life during menstruation. Menstruation is a very challenging biological process and life changing process and happens every month for whole life.

Importance of Menstrual Hygiene Management training for Girls with Disability:

1. Promotes Health and Prevents Infections: Proper menstrual hygiene helps prevent urinary tract infections, reproductive tract infections, and skin irritation. Girls with disabilities are at higher risk of health problems if they cannot manage menstruation safely and hygienically.

2. Supports Dignity and Self-Esteem: Managing menstruation with privacy and comfort helps girls feel confident and respected. When girls with disabilities receive appropriate support and resources, it reduces shame and promotes self-worth.

3. Encourages School Attendance and Participation: Lack of menstrual hygiene support can cause girls to miss school or activities. Accessible MHM enables girls with disabilities to attend school regularly and participate fully in learning and social life.

4. Promotes Independence: With proper education, adaptive menstrual products, and supportive training, girls with disabilities can learn to manage menstruation independently or with minimal assistance, increasing their autonomy.

5. Ensures Inclusion and Equality: Menstrual hygiene management is a basic human right. Providing inclusive MHM ensures that girls with disabilities are not excluded from health services, education, or community life.

Role of Caregivers, Schools, and Communities

- **Caregivers** should receive training on menstrual hygiene and disability-sensitive care
- **Schools** should provide accessible toilets, water, disposal facilities, and menstrual products
- **Communities** should promote awareness to reduce stigma and discrimination
- **Policies and programs** should include the menstrual needs of girls with disabilities

Understanding Menstrual Hygiene Management

Menstrual hygiene management refers to the use of clean menstrual products, access to water and sanitation facilities, proper disposal of used materials, and knowledge about menstruation. For girls with disabilities, MHM also includes the availability of assistance, adaptive products, and supportive environments that respect privacy and dignity.

Objectives

1. To explore the experiences of special educators in managing menstruation among girls with disabilities.

2. To explore the challenges for girls with disability during menstrual hygiene management training.

Challenges Faced by Girls with Disabilities

Girls with disabilities may experience several barriers during menstruation,

- If girls with Intellectual disability and Autism can maintain their personal/ functional skills and hygiene like eating, dressing, grooming, toileting skills ect. Independently or with the required assistance, they can also learn about their menstruation and can maintain menstruation at home and in school also with the required assistance.
- *UNICEF (2019)* reports that lack of MHM knowledge increases infection risk among adolescents. Girls with Disabilities face difficulties during Menstruation due to lack of proper training such as
- Limited understanding of menstruation
- Poor Hygiene and Health Problems
- Mental issues (Fear, Stress, and Anxiety)
- Inadequate menstrual support leads to **absenteeism**, discomfort.
- Dependence on others for menstrual care

A study by **Chou et al. (2017)** examined menstrual experiences among girls with intellectual disabilities in Taiwan. The study found that many girls had limited understanding of menstruation, leading to difficulties in managing their periods and increased dependence on caregivers. The researchers emphasized the need for accessible menstrual education tailored to the cognitive levels of these girls. Effective **menstrual education programs** for girls with cognitive disabilities should use clear, simple language, visual aids, and hands-on demonstrations. Regular reinforcement and practice are essential for helping these girls learn and retain information about menstrual hygiene management.

Bhosale M. M et al. (October 6, 2025) conducted a qualitative study title "A qualitative study on the experiences of caregivers on menstrual management of adolescent girls with developmental disabilities in selected special schools of Karveer Taluka, Maharashtra". The objective of the study to explore the experiences and perspectives of the informal and formal caregivers on the menstruation management of adolescent girls with developmental disabilities in selected special schools in Karveer Taluka, Maharashtra. A qualitative study was conducted among informal caregivers (family members) and formal caregivers (special school staff) of those AGDD, who were aged 10–19 years, had attained menarche, and were attending three selected special schools of Karveer Taluka, Maharashtra, India. In-depth interviews (IDI), in the local language, Marathi, using an IDI guide developed based on a conceptual framework, were conducted among 14 informal and 13 formal caregivers. They found Adolescent Girls with Developmental Disabilities (AGDD) face unique challenges in menstruation management, requiring care and support from both informal and formal caregivers. Limited research has explored the experiences of these caregivers in managing AGDD's menstrual health, particularly in this study setting. The study underscores the critical role of informal and formal caregivers and their challenges in managing AGDD's menstrual health, highlighting the need for targeted training and support programs.

Jones G., Helsley S. et al. (Sep 18, 2025) conducted a qualitative, phenomenological study on "Parent Perspectives: Menstruation and Menstrual Hygiene Management for Autistic Daughters". The objective of the study is to investigate the perspectives of parents of autistic daughters and their firsthand experiences of menstruation and menstrual hygiene management. The **snowball sampling** and an inductive thematic analysis of transcripts of virtual semi structured interviews. **Parents of autistic daughters (*N* = 8): seven biological mothers and one adoptive** father are the participants. The result of the indicate Seven themes emerged from the interviews: (1) inadequate expertise in women's health for autistic individuals among medical professionals, (2) parental dependency, (3) intensified sensory experiences before and during menstruation, (4) limited menstrual awareness and understanding in individuals with ASD, (5) menstrual product preferences, (6) parental feelings about managing menstruation, and (7) strategies that worked for managing menstruation. The findings suggest that parents face significant challenges when caring for autistic daughters during their menstrual cycles. Occupational therapy practitioners may support autistic individuals as well as their parents and caregivers in this process by having a deeper understanding of their experiences.

- Difficulty using standard menstrual products due to physical or motor limitations
- Lack of accessible toilets and washing facilities
- Limited understanding of menstruation, especially for girls with intellectual or developmental disabilities
- Dependence on caregivers who may lack proper knowledge or training
- Social stigma, discrimination, and embarrassment

These challenges can lead to poor hygiene, infections, school absenteeism, and emotional distress.

Methodology

This exploratory study used a qualitative approach. Data were collected through informal interviews and observations involving girls with disabilities, caregivers, and questionnaires for Special educators. A small sample was selected to gain in-depth insights. Ethical considerations such as informed consent, privacy, and confidentiality were strictly maintained

Findings of the Study

1. Do the girls with Intellectual Disability in your class have knowledge about menstruation?

6 responses

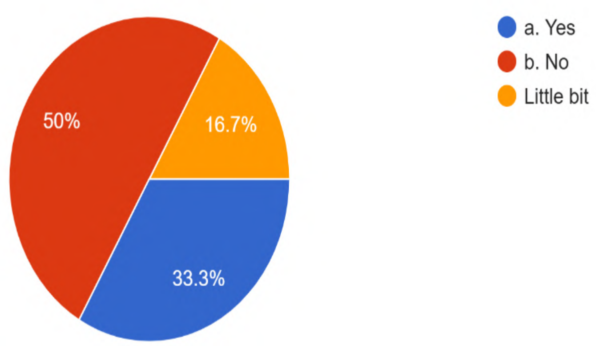

3. Are the girls with ID in your class aware of menstrual hygiene? (write the numbers other option)
7 responses

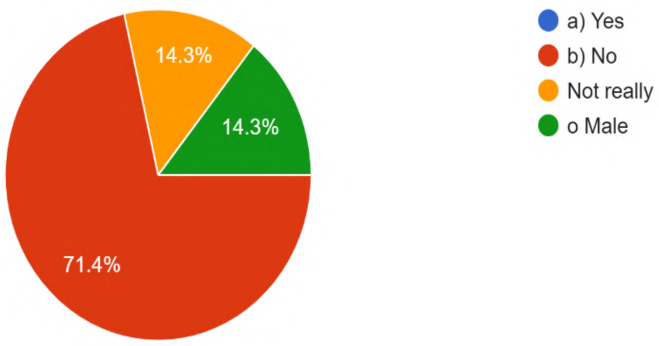

19. What challenges have you faced in implementing the MHM program? (Check all that if apply)
6 responses

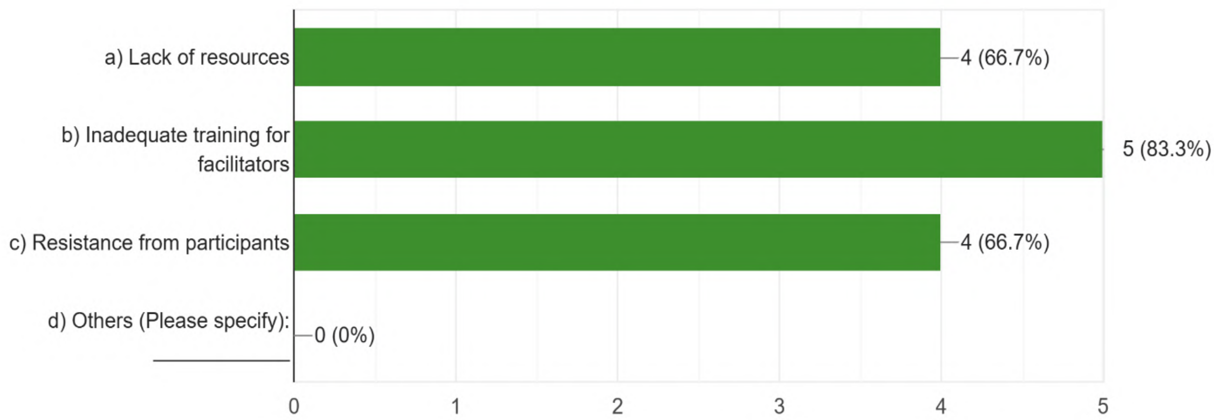

1. Do you feel there is a need for additional support or resources to teach MHM more effectively?
6 responses

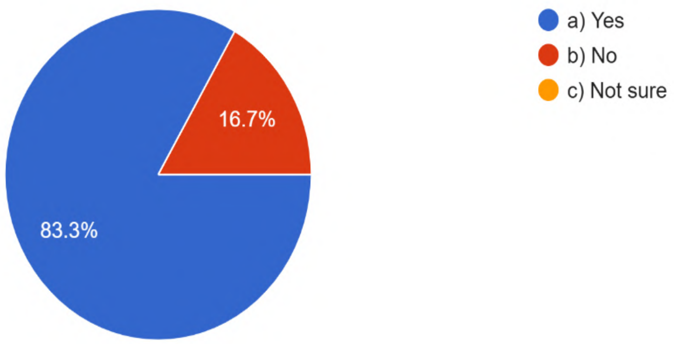

Conclusion

Menstrual hygiene management is crucial for the health, dignity, and empowerment of girls with disabilities. Addressing their unique needs through education, accessible facilities, supportive caregivers, and inclusive policies can significantly improve their quality of life. Ensuring proper menstrual hygiene management is not only a health issue but also a matter of human rights and social inclusion. Menstrual Hygiene Management (MHM) is essential for the physical and emotional well-being of girls and women. For **girls with disabilities**, menstrual management can be more complex due to physical, cognitive, sensory, or communication challenges. Therefore, **targeted training and support** are crucial to ensure their dignity, confidence, and independence.

References

UNICEF. (2019). *Guidance on Menstrual Hygiene Management for Girls and Women with Disabilities*.

UNFPA. (2021). *Disability-Inclusive Menstrual Health Management*. United Nations Population Fund.

WHO & UNESCO. (2014). *Puberty Education and Menstrual Hygiene Management*.

Advocates for Youth (2016). Sexual health education for young people with disabilities: Research and resources for educators. https://www.advocatesforyouth.org/wpcontent/uploads/2016/02/SHE-Young-Pe.

Aktaş, G., & Öncü, E. (2022). Comparison of menstrual care skills training programs provided to girls with intellectual disabilities by a healthcare professional and caregivers: A randomized control trial. Journal of Intellectual Disabilities, 27, 746–761. https://doi.org/10.1177/17446295221101759

Altundağ, S., & Çalbayram, N. Ç. (2016). Teaching menstrual care skills to intellectually disabled female students. Journal of Clinical Nursing, 25, 1962–1968. https://doi.org/10.1111/jocn.13215

American College of Obstetricians and Gynecologists' Committee on Clinical Consensus–Gynecology. (2022). General approaches to medical management of menstrual suppression: ACOG clinical consensus No. 3. Obstetrics and Gynecology, 140(3), 528–541. https://doi.org/10.1097/AOG.0000000000004899

Received: 15.01.2026 | Accepted: 01.02.2026 | Published: 28.02.2026

एकांत श्रीवास्तव की कविताओं में संवेदनशीलता और यथार्थवाद का चित्रण

रवि शंकर आर्य*
raviarya.ch@gmail.com

शोध सारांश

समकालीन हिंदी कविता में एकांत श्रीवास्तव की काव्य-दृष्टि का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। एकांत श्रीवास्तव ऐसे कवि हैं जो अपनी कविताओं में मानवीय संवेदना, सामाजिक चेतना और यथार्थ के विभिन्न आयामों को संतुलित ढंग से व्यक्त करते हैं। उनकी कविताएँ न तो केवल भावुकता में बहती हैं न ही विचारधारा की कठोरता में उलझती हैं बल्कि वे जीवन के साधारण, उपेक्षित और असंगठित पक्षों को गहराई से छूती हैं। एकांत श्रीवास्तव की संवेदनशीलता उनके काव्य का केंद्रीय तत्व है जो स्त्री, बालक, वृद्ध, श्रमिक, विस्थापित, पर्यावरण और पारिवारिक संबंधों जैसे विषयों के माध्यम से उभरती है। वे पीड़ित मानवता के पक्ष में खड़े होकर कविता को करुणा, सह-अस्तित्व और संवाद का माध्यम बनाते हैं। एकांत श्रीवास्तव की कविता में यथार्थ की सशक्त उपस्थिति भी देखी जा सकती है। वे समाज में व्याप्त विषमता, शोषण, विस्थापन, राजनीतिक विडंबनाओं और उपेक्षित वर्गों की दुर्दशा को चित्रित करते हुए एक सजग सामाजिक दृष्टि प्रस्तुत करते हैं। उनके यथार्थ का आधार दृश्य घटनाएँ ही नहीं उन घटनाओं के पीछे छिपी संवेदनात्मक सच्चाइयाँ भी हैं। एकांत श्रीवास्तव के काव्य में निहित संवेदनशील यथार्थवाद को रेखांकित करता है जो उन्हें समकालीन हिंदी काव्य-संवाद में एक विशिष्ट और प्रभावशाली स्थान प्रदान करता है। उनका काव्य संवेदना और यथार्थ के बीच एक मानवीय पुल का निर्माण करता है जो पाठक को भीतर तक प्रभावित करता है।

बीज शब्द :

समकालीन हिंदी कविता, संवेदनशीलता, यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदना, ग्रामीण जीवन, आत्मबोध, संघर्ष चेतना, काव्य दृष्टि, परिवेश चित्रण, अनुभवधर्मिता, जीवन-संघर्ष, समाज, काव्य-भाषा

मूल आलेख :

हिंदी कविता को ग्रामीण संसक्ति से संपन्न बनाने वाले कवियों में एकांत श्रीवास्तव शीर्षस्त स्थान रखते हैं। जीवनानुभव के ज़मीनी जुटाव उनके यहां सघन है। उनकी कविताओं में ठेठ देहाती लोक संवेदना और लोक जीवन की रंगत पर्याप्त विविधता लेकर उपस्थित है। उनकी कविता का स्थापत्य अन्न, मिट्टी और फूल से बना है। समकालीन हिंदी कविता में एकांत श्रीवास्तव का नाम उन कवियों में अग्रणी है जिनकी कविताएँ मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक यथार्थ और आत्मचिंतन की गहराइयों से गुँथी हुई हैं। उनकी कविताओं में एक ओर जहाँ कोमल भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति होती है तो वहीं दूसरी ओर समाज के विद्रूप और विषम यथार्थ का निर्भीक चित्रण भी मिलता है। एकांत श्रीवास्तव की कविताएँ किसी कलात्मक सौंदर्य-बोध होने के साथ ही मानवीय अनुभवों को गहराई से स्पर्श करने के लिए जानी जाती हैं। उनके काव्य में प्रकृति, प्रेम, पीड़ा, संघर्ष, विस्थापन, शहरीकरण और सामाजिक विघटन के अनेक बिंब एक ऐसे कवि की दृष्टि से उभरते हैं जो जीवन के छोटे-छोटे क्षणों में भी बड़ी सच्चाइयों की तलाश करता है। उनके लिए कविता कल्पना की उड़ान नहीं वह एक ऐसा संवेदनात्मक माध्यम है जिसके द्वारा वे अपने समय की सच्चाइयों को उजागर करते हैं। संवेदनशीलता उनकी कविताओं की आत्मा है। बच्चों, स्त्रियों, मजदूरों और हाशिये पर खड़े व्यक्ति के जीवन में वे जिस आत्मीयता और करुणा के साथ उतरते हैं, वह उन्हें भीड़ से अलग करता है। उनकी भाषा सहज, संप्रेषणीय और मार्मिक होती है जो पाठक के अंतर्मन को स्पर्श करती है। यही संवेदनात्मक दृष्टि उन्हें एक समकालीन जनकवि के रूप में स्थापित करती है।

* **पीएच. डी. (हिंदी साहित्य), हिंदी साहित्य विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

एकांत श्रीवास्तव कविता को **क्रियाशील प्रतिरोध** का औजार मानते हैं और जनता से **एक स्वर, एक कदम** माँगते हैं जो यथास्थितिवाद को तोड़ सके और कविता को **जीवन और संघर्ष की जमीन** पर खड़ा कर सके। समकालीन कविता प्रगतिशील तत्त्वों के उभार की कविता है। एकांत श्रीवास्तव जनता से मांगते हैं;

"मुझे दो कविता लिखने के लिए
हजारों झुके हुए सिरों के बीच
एक उठती चीख
हजारों रुके पांवों के बीच
एक आगे बढ़ता पांव।"

एकांत श्रीवास्तव आवास व्यवस्था की बेहालत पर गंभीर सामाजिक आलोचना प्रस्तुत करते हैं। वे इसे विकास के खोखले दावों, सत्ता की असंवेदनशीलता और सामाजिक विषमता का प्रतीक मानते हैं। ये यह स्पष्ट करते हैं कि हमारी व्यवस्था में आवास की समस्या केवल योजनाओं या नीतियों की विफलता नहीं यह एक नैतिक विफलता भी है जहाँ एक वर्ग के पास कई मकान हैं और एक वर्ग के पास सिर छुपाने की जगह तक नहीं। हमारी आवास व्यवस्था की बेहालत पर आज के कवि चिंतित हैं। वही चिंता व्यक्त करते हुये कवि एकांत श्रीवास्तव लिखते हैं;

"यह दुनिया
एक बुझी हुई आग है
जिसे हम बार बार कुरेदते हैं
कि कहीं कोई चिनगारी बाकी हो"।

एकांत श्रीवास्तव की कविता 'अंधी लड़की का गीत' एक बेहद मार्मिक और संवेदनात्मक रचना है जो दृष्टिहीनता के माध्यम से मनुष्य की आंतरिक दृष्टि, जीवन के संघर्ष और आत्मबल की गहराइयों को छूती है। यह कविता एक अंधी लड़की की कहानी नहीं है यह उस अनदेखे संसार की अनुभूति है जिसे देखने के लिए आँखें नहीं एक संवेदनशील हृदय और अनुभूतिपूर्ण चेतना की आवश्यकता होती है। आगे कविता के माध्यम से कहना चाहते हैं कि;

"उसकी उँगलियाँ हैं पारस पत्थर
जिसे, जहां छू देती है
वह सोना हो जाता है"।

एकांत श्रीवास्तव की कविताएँ तीव्र आलोचना और गहरी चिंता प्रकट करती हैं। वे प्रकृति को संसाधन या उपभोग की वस्तु मानने वाली आधुनिक सोच का सामाजिक, नैतिक और पर्यावरणीय प्रतिरोध करते हैं। कवि के लिए प्रकृति मनुष्य की जीवन-संगिनी, संवेदना की स्रोत और सांस्कृतिक पहचान का अंग है न कि दोहन की वस्तु। उपभोक्तावादी दृष्टि ने प्रकृति और मानव के सह-अस्तित्व सम्बन्ध को मिटाकर प्रकृति को मात्र उपभोग की वस्तु मान लिया है। इससे निश्चय ही जीवन और पर्यावरण में कई विकृतियाँ आई हैं। कवि लिखते हैं;

"ऋतुओं की महक घिर गयी है
केमिकल्स की गन्ध से
कच्चे घरों की खपरैलों से उठता धुआँ
घिर गया है बारूद के धुएं से"

समकालीन कविता की दुनिया में चित्रित मानवीय सम्वन्ध आम आदमी की डायरी प्रस्तुत करते हैं। मां का ममत्व तथा पिता का वात्सल्य घर से दूर रहकर भी खींचता है। इस कविता में मां की ममता, मां का त्याग, मां की भावना ही चित्रित नहीं है मां हर तरह के पारिवारिक-सामाजिक दायित्व का पालन करती हुई दिखती है। मां चाहे जितनी भी परेशान, थकी हुई, दुःखी क्यों न हो, बच्चों के लिए हमेशा तत्पर रहती है। उसकी ममता और उसका त्याग बच्चों को अपने पास खींचता है। कवि महसूस करते हैं कि थके-हारे दिनों में मां की ममता एक बड़ा सम्बल होती है;

"जब हम बेहद थके होंगे

और अकेले
ये आँखें हमें देंगी
अपनी ममता की खुशबू
ये आँखें
हमारे अँधेरों में खुलेंगी
रोशनी की खिड़कियाँ बनकर"।

एकांत श्रीवास्तव 'पिता की घड़ी' को याद करते हुए यह कहते हैं कि पिता का जीवन एक प्रेरणा है और वह घड़ी उस प्रेरणा का सजीव प्रतीक। उसे कलाई से न उतारने का अर्थ है अपने जीवन में पिता की परंपरा, मूल्य और स्मृति को जीवित रखना। यह कविता हर उस व्यक्ति की स्मृति है जिसने अपने पूर्वजों के श्रम और संघर्ष को श्रद्धा और संकल्प के साथ आत्मसात किया है। एकांत श्रीवास्तव 'पिता की घड़ी' को याद करते हुए अपनी कलाई पर से उसे न उतारने का संकल्प ले लेते हुये कहते हैं कि;

"आज उस बात को बरसों बीत गए
सरकारी अस्पताल के रूम नम्बर बारह में
हृदयाघात से गुजर गए पिता के निर्जीव शरीर को
उठाने से पहले उनकी कलाई से निकालकर
जब पहनी थी यह घड़ी
जब जल से भरे बादल-सा हुआ जाता था मन
बरसों बीत गए आज उस बात को
एक संकल्प था कहीं भीतर कि जब तक
चलती रहेगी उतारूंगा नहीं"।

भाई से संवाद के बहाने परिवार का संवेदनात्म संबंध उभारा गया है। समकालीन कविता में बहन की पारंपरिक छवि को आंका गया है। बहन, जो स्नेहमयी है। बहन, जो एक दिन घर छोड़कर पति के घर चली जाती है। तब उसके मन में घर की स्मृति रह जाती है और घर भी बहन की स्मृति को संजोता हुआ घर बना रहता है। कवि लिखते हैं;

"बहनें घर भर में
सुगन्ध की तरह व्याप्त हैं
एक दिन उड़ जाएंगी
जाने किन पवन झकोरों के साथ"।

एकांत श्रीवास्तव की कविताओं में बचपन का घर मात्र एक भौतिक स्थान नहीं यह स्मृति, सुरक्षा, संस्कार और आत्मीयता का स्रोत है। वे बचपन के घर को आस्था, जड़ों और पहचान से जोड़कर देखते हैं। उनके लिए यह घर अतीत का आश्रय नहीं यह वर्तमान की चेतना और भविष्य की दिशा का आधार है। बचपन के इस घर के प्रति आस्थावान हैं। वे लिखते हैं कि;

"यह घर
क्या इतनी आसानी से गिर जाएगा
जिसमें भरी हैं
मेरे बचपन की चौकड़ियाँ"।

आज नयी सदी में यानी भूमण्डलीकरण के युग में आर्थिक और मानसिक रूप से हम पूरी तरह गुलामी की ओर बढ़ रहे हैं। हम अपनी संस्कृति को भूलकर अपनी पहचान खोते जा रहे हैं। स्वतंत्र भारत में गुलामी की तस्वीर साफ देखी जा सकती है। आज व्यक्ति को अपने देश की तुलना में विदेशी चीजें अधिक आकर्षित कर रही हैं। बात चाहे खान-पान की हो, काम-काज, पहरावे या भाषा की हो, इन सब विदेशी आकर्षण में हम कहीं न कहीं अपना ईमान बेचते हैं। कवि की बेचैनी द्रष्टव्य है;

"मैं जमीन नहीं बेचता

बेचता हूँ हृदय
अपनी छाती से काटकर
मैं पेड़ की तरह कटकर गिरता हूँ
दुनिया की हाट में
बेमोल
बेचता हूँ आँखें
जल और स्वप्न से भरी
अपनी दो अदद आँखें"।

प्रकृति, परिवार और लोक संस्कृति के पारस्परिक सम्बन्धों की कविताओं में जहां कवि निसर्ग के सौन्दर्य के प्रति अभिभूत है तो वहीं पर परिवार और लोक के मोह के प्रति छटपटाहट। इसके बीच कवि सूखती हुई मानवीय संवेदनाओं के प्रति चिन्तित भी;

"मूसलाधार बरसता है पानी
सजल हो जाते हैं खेत
तृप्त हो जाती हैं पुरखों की आत्माएं
टूटने से बच जाता है मन का मेरुदण्ड
कहती है मँगतिन
इसी चिड़िया की आवाज से
आते हैं मेघ
सुदूर समुद्रों से उठकर
ओ चिड़िया
तुम बोलो बारम्बार गाँव में
घर में, घाट में, वन में
पत्थर हो चुके आदमी के मन में"।

एकांत श्रीवास्तव उन कवियों में हैं जिनकी रचनाएँ प्रकृति, मानवीय संवेदना और सामाजिक सरोकारों से गहराई से जुड़ी हैं। वे कविता कोजीवन की कलात्मक साधन तथा संवेदनात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाते हैं। उनके काव्य में प्रकृति-चित्रण, सुख-दुःख की अनुभूतियाँ और मानव-प्रेम तीनों विषय गहराई, आत्मीयता और जीवनदृष्टि के साथ उपस्थित होते हैं। एकांत श्रीवास्तव के प्रकृति-चित्रण, सुख-दुःख और मानव प्रेम की कविताओं में पन्त की छाया प्रतिबिम्बित होने लगती है। 'आषाढ़', 'नदी के करीब है मेरा घर', 'शरद् का गीत', 'होली का गीत', 'धरती के दुःख-सुख में' आदि कविताएं द्रष्टव्य हैं;

"जंगल में पेड़
पेड़ में बीज
बीज में जन्म देने की इच्छा धरती की
शामिल है
मेघ-मेघों में जल समुद्र का
शामिल है
मेरे पसीने में तुम्हारी देह का नमक
तुम्हारे लहू में मेरे लहू का रंग
मेरी नींद में तुम्हारे स्वप्न की कौंध
शामिल हैं"।

एकांत श्रीवास्तव की अधिकांश कविताओं को पढ़ने से लगता है कि कवि शहरी संस्कृति की तड़क-भड़क से ऊबकर अपने प्रदेश की काली मिट्टी में कपास की तरह शीत-गर्मी, सुख-दुःख, भूख-प्यास सहकर गले में गमछा डालकर खेत

की मेंड़ों और बाग-बगीचों में मस्त होकर घूमना चाहता है। एकांत श्रीवास्तव अपनी मिट्टी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए लिखते हैं;

"इस मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद
जिसमें बँधी रहीं मेरी जड़ें और मैं वृक्ष रहा छतनार...
उस अग्नि को करूँगा याद
दुनिया के ठण्डे चूल्हे में
जिसने मुझे सिखाया सुलगना।"

एकांत श्रीवास्तव की कविताएं किसी एक विचारधारा या भावबोध पर आधारित न होकर उनकी स्मृतियों, अनुभवों, घटनाओं, प्रकृति के विभिन्न दृश्यों, पारिवारिक संवेदनाओं आदि से जुड़ी हैं। वैसे कवि को पारिवारिक संवेदनाओं का कवि कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनकी रचनाओं में घूम-फिरकर परिवार जरूर आ जाता है। प्रौद्योगिकी के इस युग में दुनिया छोटी हो गई पर बच्चे मां-बाप से इतने दूर हो गये कि एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए तरस रही हैं। यही आशय कवि की कविता में आया है;

"पुरखों के जमाने की चीजें
हमारे पिताओं ने पढ़ी पुस्तकों में
हमारे ज़माने की चीजें
शायद हमारे बच्चे
पुस्तकों में भी नहीं पढ़ पाएंगे।"

कविता चाहे किसी भी भावना की अनुवृत्ति हो, किसी उत्तेजना की अभिव्यक्ति हो, किन्तु सर्वप्रथम वह अपने मूल रूप में शब्दजीवी है। समकालीन कविता में शब्दों की सार्थकता उसकी अर्थछवियों में है। शब्दों में मनुष्य की आत्मा है शब्दों द्वारा ही व्यक्ति के अन्तःकरण की अनुभूति को व्यक्त किया जा सकता है। यदि भाषा में सत्यानुभूति को व्यक्त करने योग्य शब्द नहीं हैं तो मानव जीवन में उसकी कोई उपयोगिता नहीं है। एकांत श्रीवास्तव की कविता का यह अंश उल्लेखनीय है;

"शब्दों में नहीं है
अगर तुम्हारी आत्मा की झिलमिलाहट
तो वे झूठे हैं
तुम्हारे प्यार के रंग
तुम्हारे अंतस के झंझावात
तुम्हारे दुःख की परछाइयाँ
तुम्हारे कमीज की कॉलर पर जमी धूल
अगर शब्दों में नहीं है-
आईने हैं शब्द
इनके सामने खड़े हो और देखो
शब्दों में नहीं है
अगर तुम्हारी आत्मा की झिलमिलाहट"।

निष्कर्ष :

एकांत श्रीवास्तव की कविताओं में संवेदनशीलता और यथार्थवाद का स्वर अत्यंत गहन, व्यापक और बहुआयामी रूप में उभरकर सामने आता है जो समकालीन जीवन के विविध आयामों को गहरी आत्मीयता के साथ अभिव्यक्त करता है। उनकी काव्य-दृष्टि मानवीय अनुभवों की सूक्ष्म परतों तक पहुँचती है जहाँ व्यक्ति का आंतरिक संसार और बाहरी सामाजिक संरचनाएँ एक साथ संवाद करती दिखाई देती हैं। कवि जीवन के साधारण प्रतीत होने वाले क्षणों में भी अर्थपूर्ण अनुभूति खोज लेते हैं जिससे उनकी कविताएँ पाठक के भीतर सहज रूप से भाव-जागरण करती हैं। सामाजिक विसंगतियों, आर्थिक

विषमताओं, पारिवारिक संबंधों की जटिलताओं तथा बदलते मानवीय मूल्यों को उन्होंने अत्यंत सरल, स्पष्ट और मार्मिक भाषा में प्रस्तुत किया है जिससे उनकी रचनाएँ अधिक प्रभावशाली बनती हैं। उनके यहाँ यथार्थ का चित्रण किसी बाहरी अवलोकन भर तक सीमित न होकर वह व्यापक अनुभूति के स्तर पर गहराई से जुड़कर एक जीवंत अनुभव का रूप ले लेता है। यही कारण है कि उनकी कविताएँ पाठक को अपने परिवेश और परिस्थितियों पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित करती हैं। संवेदनशीलता के स्तर पर कवि मनुष्य के दुख, पीड़ा, संघर्ष और आशाओं को गहरी सहानुभूति के साथ उभारता है जिससे मानवीय संबंधों की गरिमा और उनकी आंतरिक शक्ति का बोध होता है। उनकी रचनाओं में प्रकृति, समाज और व्यक्ति के बीच एक गहरा सामंजस्य दिखाई देता है जो जीवन के संतुलन की ओर संकेत करता है। कवि का दृष्टिकोण कहीं भी अति-नाटकीय या कृत्रिम प्रतीत न के बराबर सहज और स्वाभाविक रूप में प्रवाहित होता है। यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण उनकी कविताएं समय के सच्चे दस्तावेज के रूप में सामने आती हैं जो वर्तमान सामाजिक स्थिति का प्रतिबिंब प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार एकांत श्रीवास्तव की कविताएं संवेदना और यथार्थ के संतुलित समन्वय के माध्यम से साहित्य को समृद्ध करती हैं तथा पाठक को गहन मानवीय अनुभवों से जोड़ने का कार्य करती हैं जिससे उनकी काव्य-साधना का महत्व और भी अधिक स्थापित होता है।

संदर्भ :

अरविंदाक्षन, ए. (2001). *समकालीन हिंदी कविता*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड.

कृष्ण, कुमार. (2004). *समकालीन कविता का बीज गणित*. . नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

तिवारी, डॉ. उषा. (2008). *सठोत्तरी काव्य में पारिवारिक जीवन*. नई दिल्ली: पंकज बुक्स.

खरपूसे, डॉ. उर्मिला. (2008). *समकालीन हिंदी कविता प्रकृति और स्वरूप*. इलाहाबाद: शैवाल प्रकाशन.

रवि, पी. (2013). *समकालीन कविता के आयाम*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन.

मिश्र, रवीन्द्रनाथ. (2013). *अंतिम दशक की हिंदी कविता*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन.

सक्सेना, डॉ. शर्मीला. (2013). *समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर*. नई दिल्ली: के. एल. पचौरी प्रकाशन.

श्रीवास्तव, परमानंद. (2014). *समकालीन हिंदी कविता*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

एस. डॉ. महेश. (2020). *उत्तर औपनिवेशिक संदर्भ और समकालीन हिंदी कविता*. कानपुर: विकास प्रकाशन.

रणखांबे, डॉ. संजय. (2020). *समकालीन हिंदी कविता जनवादी आयाम*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.

श्रीवास्तव, परमानंद. (2021). *समकालीन हिंदी कविता*. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी.

झा, मनीषा. (2011). *समय संस्कृति और समकालीन कविता*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.

स्नेही, डॉ. सत्यनारायण. (2017). *समकालीन कविता का लोक*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.

वर्मा, डॉ. राधा. (2010). *समकालीन हिंदी-कविता के बदलते सरोकार*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.

Received: 16.01.2026 | Accepted: 01.02.2026 | Published: 28.02.2026

संस्कृत शिक्षण में श्रवण कौशल के विकास पर सहयोगात्मक अधिगम का प्रभाव

जलि नायक*

jalinayak2018@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में संस्कृत शिक्षण में श्रवण कौशल के विकास पर सहयोगात्मक शिक्षण(Collaborative Learning) की प्रभावशीलता का विश्लेषण किया गया है। ***जॉन डीवी*** *के अनुसार विद्यालय समाज का दर्पण होता है। समाज में यह धारणा है कि शिक्षण का कार्य मुख्य रूप से विद्यालय में ही होता है। विद्यालयों में परंपरागत विधि द्वारा विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है एवं शिक्षण हमेशा शिक्षक केंद्रित होता है। कक्षा में विद्यार्थियों को अंत:क्रिया करने हेतु अवसर नहीं दिया जाता है, इसलिए अक्सर विद्यार्थी निष्क्रिय रहते हैं। जिस वजह से शिक्षण प्रक्रिया सहज एवं रुचिकर नहीं बन पाती। इसीलिए शिक्षण के दौरान शिक्षक को ऐसे विधि का प्रयोग करना चाहिए जैसे अधिगम रोचक, सरल एवं सहज हो। इसके विपरीत सहयोगात्मक अधिगम विधि में विद्यार्थी एक दूसरे को समझने, समूह में वार्तालाप, आमने-सामने की अंतःक्रिया, काम करने की उत्सुकता, प्रश्न पूछने एवं सहपाठियों के मदद से विद्यार्थी नए ज्ञान का सृजन स्वतंत्र रूप से करते हैं। जिससे अधिगम रोचक एवं सरल हो जाता है तथा उनके भाषा कौशल का विकाश होता है। प्रयोगात्मक अध्ययन के माध्यम से यह देखा गया कि समूह वार्तालाप, तर्क-वितर्क, समूह विचार-विमर्श, विभिन्न रणनीतियां, नए-नए विचारों, छात्रों के आलोचनात्मक चिंतन कौशल के विकाश के साथ-साथ छात्रों के श्रवण, वाचन,पठन एवं लेखन कौशल को विकसित करने में सहायक होती है। अध्ययन में भाग लेने वाले छात्रों ने संस्कृत भाषा के उच्चारण, लेखन, पठन एवं संवाद क्षमता में अधिक सुधार किया। उनकी आत्मविश्वास, चिंतन शक्ति, संज्ञानात्मक विकास, सीखने की रुचि में वृद्धि देखी गई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सहयोगात्मक शिक्षण से शैक्षणिक उपलब्धि, विषय वस्तु के संप्रत्यय की समझ, आत्मविश्वास, आलोचनात्मक चिंतन शक्ति, सामाजिक कौशल, इसके साथ-साथ भाषा अधिगम को अधिक रोचक प्रभावी और व्यावहारिक बना सकती है।*

बीज शब्द –

संस्कृत शिक्षण, श्रवण कौशल, सहयोगात्मक अधिगम।

प्रस्तावना

विद्यालय समाज का एक छोटा रूप है। विद्यालय समाज की एक ऐसी संस्था है जिसके कुछ सुनिश्चित एवं सुनिर्धारित लक्ष्य होते हैं। इसीलिए कहते हैं कि कल समाज कैसा होगा हम आज अपने पाठशालाओं में देखते हैं। शिक्षा की प्रक्रिया के द्वारा युवकों में ऐसे गुणों का विकास किया जाना चाहिए जो एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकें। वर्तमान भारत में **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020** को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिसका उद्देश्य शिक्षक को अधिक सुलभ और गुणवत्तापूर्ण बनाना है। **एन.इ.पी 2020** का उद्देश्य छात्रों को 21वीं सदी के लिए तैयार करना है। उन्हें ज्ञान और कौशल प्रदान करना है तथा महत्वपूर्ण सोच, सकारात्मक और समस्या समाधान कौशल का भी विकसित करना है। शिक्षण पद्धति को बेहतर बनाने के लिए नवीन शिक्षण पद्धतियों का विकास निरंतर हो रहा है जिनमें से शिक्षण एक महत्वपूर्ण पद्धति है। इस प्रकार विधि में विद्यार्थी किसी गतिविधि में छोटे-छोटे समूह में नए ज्ञान का सृजन, काम करने की उत्सुकता, दूसरे के राय की अभिव्यक्ति और स्वीकृति पारस्परिक मदद से ज्ञान अर्जन करने की अवसर प्रदान करती है। सहयोगात्मक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाती है जिसमें छात्र अपनी सक्रिय भागीदारी निभाती है। संस्कृत भाषा शिक्षण में सहयोगात्मक शिक्षण की

* **पी-एच. डी. शोधार्थी, शिक्षा शास्त्र, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)**

महत्वपूर्ण भूमिका रही है। क्योंकि संस्कृत भारत की ही नहीं विश्व की प्राचीनतम भाषा है। जिसमें भारतीय धर्म, दर्शन तथा संस्कृति की भाषा के रूप में बौद्धिक, भावात्मक, आध्यात्मिक तथा हितार्थ प्रेरणा के रूप में संस्कृत भाषा के महत्व अवर्णनीय है। यह भाषा अपने कठिन व्याकरण, समृद्ध साहित्य और विशेष उच्चारण के कारण अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक गहन अध्ययन की आवश्यकता है। परंपरागत शिक्षण प्रणाली में छात्र अक्सर निष्क्रिय रहते हैं,जिससे उनकी समग्र कौशल का विकास नहीं हो पाता। परंतु विपरीत में सहयोगात्मक शिक्षण छात्रों को सकारात्मक परस्पर निर्भरशीलता, व्यक्तिक और समूह दायित्व, पारस्परिक प्रोत्साहन, समूह आधारित गतिविधियों के माध्यम से संस्कृत भाषा को व्यावहारिक रूप से समझने और आत्मसात् करने में सहायक सिद्ध होता है।

सहयोगात्मक शिक्षण संस्कृत भाषा में इसीलिए प्रासंगिकता है, क्योंकि इस विषय को समझने के लिए संवादात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। कथन, वाद-विवाद, समूह चर्चा, अभ्यास विधि, व्याख्यान एवं दृष्टांत विधि और समस्या आधारित शिक्षण जैसी विधियां संस्कृत के कठिन विषयों को सरल एवं रोचक बनाने में सहायक होती है।

संस्कृत भाषा कौशल में श्रवण कौशल का विकास

संसार में सबसे प्राचीनतम भाषा संस्कृत भाषा है। समस्त भाषाओं में सर्वोत्तम स्थान संस्कृत भाषा को दी जाती है। संस्कृत भाषा दिव्य और समृद्ध और विकसित भाषा है। इसके साथ-साथ देववाणी व सुरभारती आदि नाम से संस्कृत भाषा को अलंकृत किया जाता है। किसी भी को सीखने के लिए चार कौशलों का स्वाभाविक क्रम है-श्रवण, वाचन, पठन व लेखन।

श्रवण कौशल- भाषा सीखने का प्रथम चरण **श्रवण** है। श्रवण कौशल का अर्थ यह है कि ध्यानपूर्वक, समझदारी और प्रभावी ढंग से ध्वनियों, शब्दों एवं वाक्यों को सुनने की क्षमता से है जिससे व्यक्ति संवाद को बेहतर ढंग से चिंतन, मनन, ग्रहण और विश्लेषण कर सकता है। **ब्राउन (Brown, 2000)** "श्रवण कौशल का तात्पर्य उस मानसिक प्रक्रिया से है जिसमें व्यक्ति विभिन्न ध्वनियों, शब्दों और वाक्यों को समझने और सही संदर्भ में उनकी व्याख्या करने में सक्षम होता है।"

श्रवण कौशल का महत्व- यह कौशल सुनने के साथ सुनी गई बातों को समझने, उनका विश्लेषण करने और उचित प्रतिक्रिया देने में क्षमता भी शामिल होती है।

- सुनने वाले की श्रवणइन्द्रियां सामान्य क्रियाशील होनी चाहिए।
- भाषा की ध्वनियों को पहचाने और उनके माध्यम से शब्दों को समझने की क्षमता विकसित होनी चाहिए।
- सुनने की रूचि एकाग्रता एवं तत्परता होनी चहिए। यदि श्रोता सुनने में रुचि नहीं रखेगा, तो वह प्रभावी रूप से श्रवण नहीं कर पाएगा।
- वक्ता के अभिव्यक्ति एवं हावभाव को समझना।
- वक्ता के हाव-भाव, लहजे और चेहरे के भावों को समझना महत्वपूर्ण होता है।
- वाचन के प्रभावशीलता का आकलन किया जा सकता है। इस कौशल के माध्यम से व्यक्ति वक्ता के विचारों और वाचन की प्रभावशीलता का आकलन कर सकता है। उससे यह पता चलता है कि वक्ता जो कहना चाहता है, श्रोता उसे सही ढंग से समझ पा रहा है या नहीं।

भाषा शिक्षण में श्रवण कौशल की भूमिका

किसी भी भाषा को सीखने के लिए श्रवण कौशल मुख्य आधारशिला होता है। जब कोई बालक भाषा सीखता है,तो वह पहले ध्वनियों को सुनकर उसकी पहचान करता है और फिर उन्हें दोहराने का प्रयास करता है। मुख्य रूप से भाषा का विकास सुनने और अनुकरण पर आधारित होता है।

- सही उच्चारण का विकास
- शब्द भंडार का विस्तार
- संवाद कौशल में सुधार
- समस्या समाधान की क्षमता

- निर्णय लेने की क्षमता
- कल्पनाशीलता और सृजनात्मकता
- साहित्यिक अभिरुचि का विकास- कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि को सुनकर अध्ययन किया जा सकता है।
- एकाग्रता और समझ का विकास- ध्यानपूर्वक सुनने से व्यक्ति की एकाग्रता बढ़ती है और वह सूचनाओं को अधिक गहराई से समझ सकता है।
- धैर्य एवं सहनशीलता का विकास- अच्छा श्रोता सुनने की आदत से उसमें धैर्य और सहनशीलता का विकास होता है।
- चिंता और तनाव कम रहता है- जब व्यक्ति अपनी बात कहने के साथ-साथ दूसरों को भी ध्यान से सुनता है तो उसकी भावनाएं बेहतर तरीके से व्यक्त होती है, जिससे मानसिक तनाव कम होता है।
- स्वयं को सुधारने का अवसर- किसी भी बातों को ध्यानपूर्वक सुनते से व्यक्ति अपनी गलतियों को पहचान कर सकता है और उन्हें सुधारने का प्रयास कर सकता है।

सहयोगात्मक अधिगम का अर्थ

सहयोगात्मक शिक्षण (Collaborative Learning) एक ऐसा शिक्षण पद्धति है जिसमें छात्र छोटे-छोटे समूह में मिलकर समस्याओं को हल करने या किसी संप्रत्यय को समझने के लिए कठिन चुनौतियों को प्राप्त करने में एक दूसरे को प्रोत्साहित करते हैं। सहयोगात्मक अधिगम एक प्रकार समूह संरचित शिक्षण है जिसमें विद्यार्थी अपनी भूमिका और भागीदारी स्वयं निर्धारित करते हैं। इस शिक्षण में विद्यार्थी स्वयं अपनी सोच, विचार, तार्किक चिंतन और आत्मविश्वास को बढ़ावा दे सकता है। **डेविडसन (1990)** के अनुसार सहयोगात्मक अधिगम में कार्य को समूह वार्तालाप के द्वारा पूरा किया जाता है। जिसके अंतर्गत आमने-सामने की अंतःक्रिया, सहयोगात्मक वातावरण पारस्परिक मदद व व्यक्तिगत जवाबदेही सम्मिलित होते हैं।

सहयोगात्मक शिक्षण का महत्व

सहयोगात्मक शिक्षण छात्रों को सिखने, नए विचारों और अच्छी आदतें विकसित करने तथा अपने साथियों से ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम बनाता है, शिक्षक से बेहतर ढंग से एक दूसरे को समझाते हैं और किसी भी समस्याओं का समाधान करने में सक्षम बनाता है।

- **आलोचनात्मक चिंतन शक्ति का विकास**- विद्यार्थी समूह में किसी भी विषय पर विचार विमर्श करते हैं और दूसरों के विचारों और राय को समझते हैं एक दूसरे को प्रतिक्रिया भी देते हैं उसके साथ-साथ उनका मूल्यांकन करने से छात्रों में आलोचनात्मक सोच में सुधार होता है।
- **संचार कौशल का विकास** - किसी भी विषय पर समूह चर्चा विद्यार्थियों के संचार कौशल को बेहतर बनाने में मदद करती है। जिसमें अपने विचारों को सही शब्दों में व्यक्त करने और दूसरों के बातों को समझने में मदद मिलती है।
- **नाटक संचालन**- नाटक को सफल बनाने के लिए मित्रों की विभिन्न भूमिकाएं निभाना और उसको समझाना, विभिन्न जिम्मेदारियों की गहराई को समझना, एक समूह में सभी को काम करने और उपयुक्त निर्णय लेने में मदद करता है।
- सहयोगात्मक शिक्षण छात्रों के बीच संचार और सामाजिक कौशल की विकास को सक्षम बनाता है।
- **सांस्कृतिक जागरूकता में सुधार** - विद्यालय में अलग-अलग संस्कृति के छात्र पढ़ते हैं। उनके सोच-विचार, तार्किक चिंतन और काम करने की तरीके अलग-अलग होती है। इससे छात्रों की जागरूकता बढ़ेगी।

संस्कृत भाषा शिक्षण में सहयोगात्मक अधिगम की भूमिका

सहयोगात्मक अधिगम की प्रक्रिया में यदि हम संस्कृत भाषा की बात करें तो यह भाषाई कौशल के रूप में भी कार्य करती है। इसके अंतर्गत चार कौशलों का शामिल होते हैं। क्रमानुसार श्रवण, वाचन,पठन, लेखन आदि। संस्कृत केवल एक भाषा ही नहीं है इसके अंतर्गत धर्म,दर्शन,भारतीय संस्कृति और प्राचीन परंपरा के ज्ञान छिपी हुई है। संस्कृत भाषा एक विकसित, समृद्ध और संरचनात्मक भाषा है। जिसका व्याकरण एवं उच्चारण प्रणाली कठिन हो सकती है। विशेष उच्चारण के

कारण अन्य भाषाओं की तुलना में इसकी गहन अध्ययन की आवश्यकता है। इन जटिलताओं को सरल बनाने के लिए सहयोगात्मक शिक्षण सहायक सिद्ध हो सकता है। विद्यार्थी किसी एक विषय पर जैसे व्याकरणिक नियमों पर चर्चा करते हैं। एक छात्र अन्य छात्रों को नियमों को समझा सकता है, जिससे सीखने की प्रक्रिया अधिक प्रभावी बनती है। इसके अलावा विद्यार्थी किसी कहानी पर चर्चा कर सकते हैं और उसका व्याख्यात्मक विश्लेषण के दूसरों को भी समझा सकता है। इससे शिक्षण प्रक्रिया अधिकाधिक रुचिकर और प्रभावी बन सकता है।

निष्कर्ष

सहयोगात्मक शिक्षण संस्कृत भाषा अधिगम को अधिक प्रभावी, रोचक और व्यावहारिक बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती है। यह शिक्षण पद्धति विचारों को साझा करना, खुद को अभिव्यक्त करना, रणनीतियों पर चर्चा करना, एक दूसरे के विचारों को समझना, एक दूसरे के प्रतिक्रिया को समर्थन देना और उसका मूल्यांकन करना, नाट्य रूपांतरण और सहपाठी अनुदेशन जैसी विधियां संस्कृत भाषा के सभी 4 कौशलों यथाक्रम श्रवण, वाचन, पठन, लेखन को विकसित करने में प्रभावी है। सहयोगात्मक अधिगम प्रणाली में छात्रों में स्पष्ट उच्चारण, भाषा की समझ, व्याकरणीय दक्षता और श्रवण कौशल में उल्लेखनीय सुधार किया। विद्यार्थियों में संस्कृत वार्तालाप में अधिक आत्मविश्वास बढ़ा है और कठिन पाठों को सरलता से समझने का प्रयास किया। इस शिक्षण पद्धति में छात्रों में आलोचनात्मक चिंतनशक्ति, आत्मविश्वास, सामाजिक कौशल, दायित्व, नेतृत्व और जिम्मेदारियां को भी बढ़ावा दिया। विद्यार्थियों ने इस पद्धति को रुचि, मनोरंजक, ज्ञानवर्धक और प्रभावी बताया और शिक्षकों ने यह पाया कि इससे कक्षा में सक्रिय भागीदारी बढ़ी और छात्रों की सीखने की प्रक्रिया अधिक व्यावहारिक और दीर्घकालिक बन गयी। अतः यह कहा जा सकता है कि यदि संस्कृत भाषा शिक्षण में सहयोगात्मक अधिगम विधि को निरंतर अपनाया जाए तो, यह शिक्षकों की दृष्टि आकर्षित करेगा, छात्रों की भाषा कौशल में सुधार करेगा तथा संस्कृत विषय के प्रति उनकी रुचि और लगाव को भी बढ़ाएगा।

संदर्भ :-

Johnson, M. L. (2020). Effectiveness of collaborative learning in enhancing language skills. *International Journal of Educational Research*.

Smith, J. D. (2019). *The theory and practice of collaborative learning in the classroom*. Educational Publishers Inc.

कुइनेस, जेड. एम. एवं कुइनेस, इ. ए. (2023). डेवलपिंग लिंगविस्टिक कोम्पेटेंस एंड क्रिटिकल थिंकिंग स्किल्स थ्रू कोआपरेटिव लर्निंगः एन अस्सेस्मेंट. *ब्रिटिश जर्नल ऑफ़ एजुकेशन, 11*(2), 13-28.

चौहान, के. आर. (2018). इफेक्टिवनेस ऑफ़ ए लर्निंग पैकेज इन संस्कृत सब्जेक्ट फॉर द सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट्स. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ रिसर्च एंड एनालिटिकल रिव्युस, 5*(2), 300-302.

जेहर, ए. एवं अन्य. (2019). लैंग्वेज स्किल्स, बेहविऔरल प्रोब्लम्स, एंड क्लासरूम इमोशन सपोर्ट अमोंग प्रीस्कूल चिल्ड्रेन फ्रॉम लो-इनकम फैमिलीज़. *अर्ली चाइल्ड देव केयर, 190*(14), 2278-2290.

मिश्रा, डॉ. अनीता. (2021). संस्कृत शिक्षण में सहयोगात्मक अधिगम की प्रभावशीलताः एक अध्ययन. *भारतीय शिक्षा अनुसंधान पत्रिका*.

विजयश्री. (2018). कोलैबोरेटिव लर्निंग इन एंड आउटसाइड द इंग्लिश लैंग्वेज क्लासरूम यूजिंग आईसीटी. *लैंग्वेज इन इंडिया, 18*, 383-389.

शर्मा, डॉ. सुमन. (2020). *शिक्षा में सहयोगात्मक अधिगम*. नई दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT).

सलमा, एन. (2020). कोलैबोरेटिव लर्निंगः एन इफेक्टिव अप्प्रोच टू प्रमोट लैंग्वेज डेवलपमेंट. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ सोशल साइंसेस & एजुकेशनल स्टडीज, 7*(2), 01-05.

Received: 17.01.2026 | Accepted: 02.02.2026 | Published: 28.02.2026

छत्तीसगढ़ में जनजाति विकास: सरकारी योजनाओं के प्रभाव का विश्लेषण

Analysis of Impact of Government Schemes on Tribal Development in Chhattisgarh

दीपक कश्यप*

deepakkasp03@gmail.com

सारांश (Abstract)

छत्तीसगढ़ भारत के उन राज्यों में से एक है जहाँ जनजातीय जनसंख्या का अनुपात सर्वाधिक है। राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग 32 प्रतिशत भाग अनुसूचित जनजातियों से संबंधित है, जो मुख्यतः बस्तर, सरगुजा, कोरिया, जशपुर एवं रायगढ़ जैसे क्षेत्रों में निवास करते हैं। इन जनजातीय समुदायों के समग्र विकास हेतु केंद्र एवं राज्य सरकार ने अनेक योजनाएं प्रारंभ की हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रमुख सरकारी योजनाओं — पीएम जनमन (PM-JANMAN), धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान, छत्तीसगढ़ राज्य वन विकास निगम (CSFDC), मध्य क्षेत्र आदिवासी विकास प्राधिकरण (MZADA) आदि — के क्रियान्वयन एवं प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। शोध में द्वितीयक डेटा, सरकारी रिपोर्टों, एनएसएस सर्वेक्षण एवं प्रकाशित साहित्य का उपयोग किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इन योजनाओं से शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका एवं अधोसंरचना के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, किंतु क्रियान्वयन की खामियाँ, भ्रष्टाचार, भौगोलिक दुर्गमता एवं सामाजिक असमानताएं अभी भी विकास की राह में बाधा बनी हुई हैं। शोध पत्र में सुझाव दिए गए हैं कि जनजातीय विकास को सतत और समावेशी बनाने के लिए नीतिगत सुधार, प्रौद्योगिकी का समुचित उपयोग एवं स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी अनिवार्य है।

मुख्य शब्द: *जनजातीय विकास, छत्तीसगढ़, पीएम जनमन, धरती आबा अभियान, CSFDC, MZADA, सरकारी योजनाएं, आदिवासी कल्याण।*

1. परिचय (Introduction)

भारत में जनजातीय या आदिवासी समुदाय सदियों से अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान, परंपराओं एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता के साथ जीवनयापन करते आए हैं। भारतीय संविधान में इन समुदायों को अनुसूचित जनजाति (Scheduled Tribes) के रूप में मान्यता दी गई है एवं उनके सामाजिक-आर्थिक उत्थान के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। देश के कुल जनजातीय जनसंख्या का एक बड़ा भाग छत्तीसगढ़ में निवास करता है।

छत्तीसगढ़ राज्य का गठन 1 नवंबर 2000 को मध्यप्रदेश से पृथक होकर हुआ था। इस नवगठित राज्य में 42 अनुसूचित जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनमें गोंड, हल्बा, बैगा, अबूझमाड़िया, कमार, पहाड़ी कोरवा एवं बिरहोर प्रमुख हैं। जनगणना 2011 के अनुसार, राज्य की जनसंख्या में जनजातियों का हिस्सा 30.62 प्रतिशत था, जो राष्ट्रीय औसत (8.6%) से कहीं अधिक है। पाँच जनजातीय समूह — बिरहोर, बैगा, पहाड़ी कोरवा, अबूझमाड़िया एवं कमार — को विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (PVTGs) का दर्जा प्राप्त है।

स्वतंत्रता के बाद से ही भारत सरकार ने जनजातीय विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से अनेक कार्यक्रम प्रारंभ किए। 1970 के दशक में जनजातीय उप-योजना (Tribal Sub-Plan) की शुरुआत की गई। 1974 में जनजातीय सहकारी विपणन विकास परिसंघ (TRIFED) की स्थापना हुई। परवर्ती वर्षों में वन अधिकार अधिनियम 2006, पेसा (PESA) अधिनियम 1996, एकलव्य आवासीय विद्यालय, आश्रम छात्रावास जैसे अनेक संस्थागत उपाय किए गए।

* **अतिथि व्याख्याता, समाजशास्त्र, यशवंत राव मेघावाले शासकीय महाविद्यालय मगरलोड, धमतरी (छत्तीसगढ़)**

छत्तीसगढ़ में राज्य स्तर पर भी जनजातीय कल्याण विभाग, आदिवासी विकास प्राधिकरण एवं विभिन्न निगमों के माध्यम से योजनाएं क्रियान्वित की जा रही हैं। हाल के वर्षों में केंद्र सरकार ने पीएम जनमन (PM JANMAN — Pradhan Mantri Janjati Adivasi Nyaya Maha Abhiyan) और धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान जैसी महत्वाकांक्षी योजनाएं प्रारंभ की हैं, जो विशेष रूप से PVTGs एवं सुदूर जनजातीय बस्तियों को लक्षित करती हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य इन योजनाओं की संरचना, क्रियान्वयन एवं वास्तविक प्रभाव का विश्लेषण करना है। साथ ही, उन चुनौतियों की पहचान करना है जो जनजातीय विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती हैं और भविष्य के लिए व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना है। इस शोध में द्वितीयक स्रोतों — सरकारी रिपोर्टें, योजना आयोग के दस्तावेज, एनएसएस सर्वेक्षण, CAG रिपोर्टें एवं शैक्षणिक शोध — का उपयोग किया गया है।

2. साहित्य समीक्षा (Literature Review)

जनजातीय विकास नीतियों एवं उनके प्रभाव पर विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन किए हैं। इस खंड में प्रमुख अध्ययनों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

2.1 नीतिगत ढांचे पर अध्ययन : Xaxa (2001) ने अपने महत्वपूर्ण अध्ययन में तर्क दिया कि भारतीय विकास नीतियाँ प्रायः जनजातीय समुदायों को 'विकास की वस्तु' मानती हैं, न कि विकास के सक्रिय भागीदार। उनके अनुसार, जनजातीय समाज की विशिष्ट संस्कृति एवं परंपराओं को नजरअंदाज करने वाली योजनाएं दीर्घकालिक रूप से सफल नहीं होतीं। Burman (2009) ने पेसा अधिनियम के क्रियान्वयन का विश्लेषण करते हुए बताया कि कानूनी प्रावधानों एवं जमीनी हकीकत में गहरी खाई है। ग्राम सभाओं को वास्तविक शक्ति हस्तांतरित नहीं हो पाई है, जिससे जनजातीय स्वशासन का उद्देश्य अधूरा रह गया है।

2.2 छत्तीसगढ़ विशेष अध्ययन : Sundar (2007) की पुस्तक 'Subalterns and Sovereigns' बस्तर क्षेत्र में जनजातीय समाज एवं राज्य के संबंधों की गहन पड़ताल करती है। उनका मानना है कि विकास के नाम पर जनजातियों का विस्थापन उनकी मूल समस्याओं को और जटिल बनाता है। Singh and Srivastava (2016) ने छत्तीसगढ़ में जनजातीय उप-योजना के व्यय एवं परिणामों का विश्लेषण किया और पाया कि आवंटित धनराशि का समुचित उपयोग नहीं हो पाता। CAG की रिपोर्टों में भी बार-बार इस बात का उल्लेख मिलता है कि योजनाओं की राशि अपेक्षित लाभार्थियों तक नहीं पहुंचती।

Gupta (2018) ने एकलव्य आवासीय विद्यालयों के शैक्षणिक परिणामों का अध्ययन किया और पाया कि इन विद्यालयों से जनजातीय बच्चों की साक्षरता दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, लेकिन गुणवत्ता संबंधी चिंताएं बनी हुई हैं। Pati (2020) ने वन अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन पर छत्तीसगढ़ में किए गए अध्ययन में बताया कि पट्टों का वितरण धीमा है और वास्तविक हकदार अनेक बार वंचित रह जाते हैं।

2.3 स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी अध्ययन : NFHS-5 (2019-21) के आंकड़े बताते हैं कि छत्तीसगढ़ की जनजातीय महिलाओं में एनीमिया की दर राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक है। Bhatia et al. (2017) ने बस्तर जिले में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच का अध्ययन किया और पाया कि दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में स्वास्थ्य केंद्रों की कमी एवं प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों का अभाव गंभीर समस्या है। आयुष्मान भारत योजना के क्रियान्वयन पर हुए अध्ययनों (Rajan et al., 2022) से स्पष्ट होता है कि कार्ड बनाने में तकनीकी एवं साक्षरता बाधाएं हैं।

2.4 आजीविका एवं वन उत्पाद संबंधी अध्ययन : TRIFED और CSFDC पर हुए अध्ययनों (Mishra, 2019; Sharma, 2021) ने बताया है कि लघु वन उपजों (MFP) के समर्थन मूल्य की योजना जनजातीय संग्राहकों की आय में वृद्धि करने में सफल रही है, लेकिन बिचौलियों की भूमिका अभी भी बनी हुई है। आदिवासी हस्तशिल्प एवं वन उत्पाद बाजार तक सीधी पहुंच अभी सीमित है। Dutta (2022) ने मनरेगा के जनजातीय क्षेत्रों में क्रियान्वयन का अध्ययन किया और पाया कि यह योजना सूखे एवं अकाल के समय जनजातीय परिवारों के लिए सामाजिक सुरक्षा का महत्वपूर्ण आधार बनी है।

उपर्युक्त साहित्य से स्पष्ट होता है कि जनजातीय विकास के क्षेत्र में नीतियाँ तो बनाई जा रही हैं, किंतु क्रियान्वयन, निगरानी एवं समुदाय की भागीदारी में सुधार की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध इसी अंतर को पाटने का प्रयास करता है।

3. शोध विधि (Research Methodology)

3.1 शोध प्रकार एवं दृष्टिकोण : यह शोध वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इसमें मुख्यतः द्वितीयक डेटा स्रोतों का उपयोग किया गया है। शोध का दृष्टिकोण मिश्रित (Mixed Approach) है, जिसमें मात्रात्मक (Quantitative) एवं गुणात्मक (Qualitative) दोनों विश्लेषण शामिल हैं।

3.2 डेटा स्रोत :

शोध में निम्नलिखित द्वितीयक स्रोतों से डेटा एकत्रित किया गया है:

- भारतीय जनगणना 2011 एवं 2021 के प्रारंभिक आंकड़े
- NFHS-5 (National Family Health Survey 2019-21) की छत्तीसगढ़ रिपोर्ट
- छत्तीसगढ़ राज्य सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण 2022-23 एवं 2023-24
- जनजातीय कार्य मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्टें (2020-24)
- CAG (नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक) की ऑडिट रिपोर्टें
- CSFDC, MZADA एवं आदिम जाति कल्याण विभाग के आधिकारिक दस्तावेज
- TRIFED एवं PM-JANMAN पोर्टल के प्रकाशित आंकड़े
- शैक्षणिक पत्रिकाओं एवं पुस्तकों में प्रकाशित शोध

3.3 विश्लेषण पद्धति : एकत्रित डेटा का विश्लेषण तुलनात्मक पद्धति से किया गया है, जिसमें योजना-पूर्व एवं योजना-पश्चात की स्थिति की तुलना, राज्य एवं राष्ट्रीय औसत से तुलना, एवं विभिन्न जिलों के बीच तुलनात्मक विश्लेषण शामिल है। योजनाओं के प्रभाव को मापने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका, आवास एवं अधोसंरचना जैसे प्रमुख सूचकांकों का उपयोग किया गया है।

3.4 शोध की सीमाएं : प्रस्तुत शोध की कुछ सीमाएं हैं: प्राथमिक डेटा का अभाव, सरकारी आंकड़ों पर निर्भरता जो कभी-कभी पूर्ण रूप से विश्वसनीय नहीं होते, तथा सभी 5 PVTGs एवं 42 जनजातियों का व्यापक विश्लेषण इस अध्ययन में संभव नहीं था।

4. प्रमुख जनजातीय विकास योजनाएं (Major Schemes)

4.1 पीएम जनमन (PM-JANMAN) : पीएम जनमन — प्रधानमंत्री जनजाति आदिवासी न्याय महा अभियान — की घोषणा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 15 नवंबर 2023 को जनजातीय गौरव दिवस के अवसर पर की। यह योजना विशेष रूप से देश के 75 विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (PVTGs) के लिए बनाई गई है। छत्तीसगढ़ में 5 PVTGs — बिरहोर, बैगा, पहाड़ी कोरवा, अबूझमाड़िया एवं कमार — इस योजना के प्रमुख लाभार्थी हैं। योजना के मुख्य घटक:

- प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY-G) के तहत पक्के मकान
- हर घर जल योजना के तहत पेयजल कनेक्शन
- विद्युतीकरण — हर घर को बिजली कनेक्शन
- आयुष्मान भारत — स्वास्थ्य कार्ड एवं स्वास्थ्य केंद्र
- सड़क संपर्क — दुर्गम बस्तियों को सड़क से जोड़ना
- मोबाइल कनेक्टिविटी — 4G टावर
- आजीविका सहायता — वन धन विकास केंद्र (VDVK)
- एकलव्य आवासीय विद्यालय एवं छात्रवृत्ति

PM-JANMAN के लिए 24,104 करोड़ रुपये का बजट आवंटित किया गया है। छत्तीसगढ़ में इसके तहत 4,000 से अधिक बस्तियों की पहचान की गई है। 2024 तक राज्य में 1.2 लाख से अधिक PVTG परिवारों को विभिन्न सेवाओं से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया है।

4.2 धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान : 'धरती आबा' — जो बिरसा मुंडा का सम्मानजनक नाम है — यह योजना 2024 में प्रारंभ की गई। इसका उद्देश्य जनजातीय ग्रामों का समग्र उत्कर्ष (संपूर्ण विकास) करना है। यह एक अभिसरण (Convergence) आधारित योजना है, जिसमें 25 से अधिक मंत्रालयों की योजनाओं को एकीकृत करके जनजातीय गांवों में एक साथ क्रियान्वित किया जाता है। इस अभियान की प्रमुख विशेषताएं:

- 63,000 से अधिक जनजातीय गांवों को सीधे लक्षित करना
- सभी केंद्रीय योजनाओं की 100% सैचुरेशन सुनिश्चित करना
- गांव-स्तरीय 'विकास योजना' तैयार करना
- स्थानीय जनजातीय नेताओं को प्रशिक्षण एवं नेतृत्व विकास
- संस्कृति संरक्षण — जनजातीय भाषा, कला एवं परंपराओं का दस्तावेजीकरण

छत्तीसगढ़ में इस अभियान के तहत 2,000 से अधिक जनजातीय गांवों की प्राथमिकता तय की गई है। राज्य में 'आकांक्षी जिलों' — बस्तर, कांकेर, नारायणपुर, बीजापुर, सुकमा, दंतेवाड़ा — में विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

4.3 छत्तीसगढ़ राज्य वन विकास निगम (CSFDC) : छत्तीसगढ़ राज्य वन विकास निगम (Chhattisgarh State Forest Development Corporation — CSFDC) एक राज्य सरकार का उपक्रम है, जो वन संपदा के प्रबंधन एवं जनजातीय आजीविका संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह निगम इमारती लकड़ी एवं गैर-लकड़ी वन उत्पादों (NTFPs) के व्यापार, वनीकरण, एवं जनजातीय संग्राहकों को उचित मूल्य दिलाने का कार्य करता है।

CSFDC के प्रमुख कार्यक्षेत्र:

- लघु वन उपज (MFP) संग्रह एवं प्रसंस्करण — महुआ, तेंदूपत्ता, चिरौंजी, हर्र, बहेड़ा आदि
- वन धन विकास केंद्र (VDVK) का संचालन
- तेंदूपत्ता संग्राहकों को बोनस एवं कल्याण योजनाएं
- वन आधारित उद्योगों में प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन
- जनजातीय महिला स्व-सहायता समूहों को आजीविका सहायता

CSFDC के तहत छत्तीसगढ़ में 85 से अधिक वन धन विकास केंद्र स्थापित हैं, जो लगभग 50,000 से अधिक जनजातीय परिवारों को आजीविका प्रदान करते हैं। तेंदूपत्ता संग्रह से राज्य में प्रति वर्ष 13 लाख से अधिक परिवार लाभान्वित होते हैं।

4.4 मध्य क्षेत्र आदिवासी विकास प्राधिकरण (MZADA) : मध्य क्षेत्र आदिवासी विकास प्राधिकरण (Mid-Zonal Adivasi Development Authority — MZADA) छत्तीसगढ़ में जनजातीय क्षेत्रों के समन्वित विकास के लिए स्थापित एक क्षेत्रीय संस्था है। यह प्राधिकरण विशेष रूप से उन क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करता है जो राज्य के मध्य भाग में स्थित हैं एवं जहाँ जनजातीय जनसंख्या की सघनता अधिक है। MZADA के कार्यक्षेत्र में शामिल हैं:

- जनजातीय उप-योजना (TSP) का प्रभावी क्रियान्वयन
- सूक्ष्म परियोजना प्रबंधन एवं क्रियान्वयन
- जनजातीय किसानों को कृषि तकनीक एवं ऋण सुविधा
- जनजातीय युवाओं के लिए कौशल विकास प्रशिक्षण
- सांस्कृतिक संरक्षण एवं प्रलेखन
- अधोसंरचना विकास — सड़क, बिजली, पेयजल

4.5 अन्य प्रमुख योजनाएं : छत्तीसगढ़ में जनजातीय विकास की अन्य महत्वपूर्ण योजनाएं निम्नलिखित हैं:

- एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय (EMRS): छत्तीसगढ़ में 100 से अधिक एकलव्य विद्यालय संचालित हैं।
- आश्रम छात्रावास: दूरदराज क्षेत्रों के जनजातीय बच्चों को छात्रावास सुविधा।
- पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति: उच्च शिक्षा के लिए SC/ST छात्रों को आर्थिक सहायता।
- वन अधिकार अधिनियम 2006: व्यक्तिगत एवं सामुदायिक वन अधिकार पट्टे।
- जनजातीय महिला साक्षरता अभियान: महिलाओं को शिक्षित एवं सशक्त बनाने के लिए।

- नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में विशेष पुनर्वास एवं विकास कार्यक्रम।
- राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम (NSTFDC): ऋण एवं स्वरोजगार।

5. प्रभाव विश्लेषण (Impact Analysis)

5.1 शिक्षा क्षेत्र में प्रभाव : शिक्षा जनजातीय विकास का आधार है। विभिन्न योजनाओं के परिणामस्वरूप छत्तीसगढ़ में जनजातीय साक्षरता दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

संकेतक	2001	2011	2021 (अनुमानित)
जनजातीय साक्षरता दर (पुरुष)	65.2%	71.3%	78.5%
जनजातीय साक्षरता दर (महिला)	38.7%	50.9%	61.2%
प्राथमिक स्कूल नामांकन दर	72%	85%	92%
उच्च माध्यमिक उत्तीर्णता दर	38%	52%	63%

एकलव्य आवासीय विद्यालयों ने जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन विद्यालयों में केंद्रीय पाठ्यक्रम के साथ-साथ स्थानीय भाषाओं में शिक्षा का भी प्रावधान है। छत्तीसगढ़ में 2024 तक 102 एकलव्य विद्यालय संचालित हैं, जिनमें लगभग 65,000 जनजातीय छात्र-छात्राएं अध्ययनरत हैं।

पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना के अंतर्गत राज्य में प्रतिवर्ष 3 लाख से अधिक जनजातीय छात्रों को लाभ मिल रहा है। उच्च शिक्षा में जनजातीय छात्रों की भागीदारी 2001 के 3.2% से बढ़कर 2023 में 8.7% हो गई है। फिर भी राष्ट्रीय औसत (27.3%) की तुलना में यह अभी भी काफी कम है।

डिजिटल शिक्षा की दिशा में PM-JANMAN के तहत जनजातीय बस्तियों में इंटरनेट कनेक्टिविटी एवं डिजिटल लाइब्रेरी स्थापित करने का कार्य प्रगति पर है। हालांकि, बिजली आपूर्ति की अनिश्चितता एवं भाषाई बाधाएं अभी भी डिजिटल शिक्षा की पहुंच को सीमित करती हैं।

5.2 स्वास्थ्य क्षेत्र में प्रभाव : जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य की स्थिति पर सरकारी योजनाओं का मिश्रित प्रभाव देखा गया है। एक ओर शिशु मृत्युदर एवं मातृ मृत्युदर में कमी आई है, वहीं कुपोषण एवं एनीमिया जैसी समस्याएं अभी भी विकराल हैं।

प्रमुख स्वास्थ्य सूचकांकों में परिवर्तन:

- शिशु मृत्युदर (IMR): 2005 में 70 प्रति हजार से घटकर 2021 में 44 प्रति हजार (जनजातीय क्षेत्र)
- मातृ मृत्युदर (MMR): 2005 में 379 से घटकर 2020 में 137 प्रति लाख जीवित जन्म
- संस्थागत प्रसव दर: 2011 के 32% से बढ़कर 2021 में 72%
- 5 वर्ष से कम आयु में अल्पवजन बच्चों का प्रतिशत: 54.6% (NFHS-5, अनुसूचित जनजाति, छत्तीसगढ़)

आयुष्मान भारत — पीएम जन आरोग्य योजना (PM-JAY) एवं मुख्यमंत्री स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत छत्तीसगढ़ के 35 लाख से अधिक जनजातीय परिवारों को 5 लाख रुपये तक का स्वास्थ्य बीमा कवर प्राप्त है। लेकिन दूरदराज क्षेत्रों में अस्पतालों की कमी के कारण इस योजना का पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता।

PM-JANMAN के तहत जनजातीय बस्तियों में मोबाइल हेल्थ यूनिट्स, आयुष्मान आरोग्य मंदिर (Health and Wellness Centres) एवं आशा कार्यकर्ताओं की तैनाती की गई है। इससे प्रजनन एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच बेहतर हुई है। मलेरिया एवं सिकल सेल एनीमिया, जो जनजातीय क्षेत्रों में प्रमुख स्वास्थ्य समस्याएं हैं, के नियंत्रण के लिए विशेष अभियान चलाए जा रहे हैं।

5.3 आजीविका एवं आर्थिक सशक्तीकरण : जनजातीय समुदायों की आजीविका मुख्यतः कृषि, वन उत्पाद संग्रह एवं दैनिक मजदूरी पर निर्भर है। सरकारी योजनाओं से इनकी आय में वृद्धि हुई है, लेकिन गरीबी उन्मूलन की गति धीमी है।

CSFDC एवं वन धन विकास केंद्रों का प्रभाव: छत्तीसगढ़ में 2023-24 में तेंदूपत्ता संग्रह से 13.5 लाख से अधिक परिवारों को आय प्राप्त हुई। CSFDC ने संग्राहकों को तेंदूपत्ता का न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) सुनिश्चित किया है, जो 2014

के 1,200 रुपये प्रति मानक बोरा से बढ़कर 2024 में 4,000 रुपये प्रति मानक बोरा हो गया है। इससे संग्राहकों की आय में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है।

मनरेगा (MGNREGS) छत्तीसगढ़ के जनजातीय जिलों में रोजगार की एक महत्वपूर्ण योजना है। 2022-23 में राज्य में लगभग 42 लाख जनजातीय श्रमिकों को मनरेगा के तहत रोजगार मिला। हालांकि, कार्यदिवसों की संख्या 100 से बहुत कम — औसतन 47 दिन — रही, जो इस योजना की क्षमता का पूर्ण उपयोग न होने का संकेत है।

जनजातीय महिलाओं के लिए स्व-सहायता समूहों (SHG) की भूमिका उत्साहजनक रही है। राज्य में 85,000 से अधिक जनजातीय महिला SHG कार्यरत हैं, जो माइक्रोफाइनेंस, हस्तशिल्प, एवं जैविक उत्पादों के व्यापार में सक्रिय हैं। CSFDC एवं TRIFED के माध्यम से इनके उत्पादों को बाजार तक पहुंचाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

5.4 आवास एवं अधोसंरचना विकास : PM-JANMAN एवं PMAY-G के तहत छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में आवास निर्माण में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। 2023-24 तक राज्य में PVTGs के लिए 32,000 से अधिक आवास स्वीकृत किए गए, जिनमें से 78% का निर्माण पूर्ण हो चुका है। अधोसंरचना विकास के प्रमुख आंकड़े:

- ग्रामीण विद्युतीकरण: 2014 में जनजातीय गांवों में विद्युतीकरण 62% था, जो 2024 में बढ़कर 91% हो गया है।
- पेयजल: जल जीवन मिशन के तहत 2024 तक जनजातीय क्षेत्र के 68% घरों में नल कनेक्शन।
- सड़क संपर्क: प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY) के तहत 500 से अधिक जनजातीय बस्तियों को पक्की सड़क से जोड़ा गया।
- डिजिटल कनेक्टिविटी: PM-JANMAN के तहत 1,200 जनजातीय बस्तियों में मोबाइल टावर स्थापित किए गए हैं।

धरती आबा अभियान के तहत जनजातीय गांवों में सामुदायिक भवन, आंगनबाड़ी केंद्र, सामुदायिक शौचालय एवं खेल मैदान निर्माण को प्राथमिकता दी जा रही है। इससे ग्रामीण जीवनस्तर में सुधार हो रहा है।

5.5 सामाजिक सशक्तीकरण एवं वन अधिकार : वन अधिकार अधिनियम 2006 का क्रियान्वयन छत्तीसगढ़ में अपेक्षाकृत बेहतर रहा है। राज्य में अब तक 4.5 लाख से अधिक व्यक्तिगत वन अधिकार पट्टे एवं 5,500 से अधिक सामुदायिक वन अधिकार पट्टे वितरित किए जा चुके हैं। इससे जनजातीय परिवारों को अपनी कृषि भूमि पर कानूनी अधिकार मिला है और वे अब बेदखली के भय से मुक्त हैं।

पेसा (PESA) अधिनियम के तहत ग्राम सभाओं को स्थानीय संसाधनों के प्रबंधन का अधिकार दिया गया है। हालांकि, व्यवहार में ग्राम सभाओं की शक्तियां अभी भी सीमित हैं। मध्य क्षेत्र आदिवासी विकास प्राधिकरण (MZADA) ने जनजातीय स्वशासन को मजबूत बनाने के लिए ग्राम सभा सदस्यों को प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए हैं।

जनजातीय संस्कृति संरक्षण के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। CSFDC एवं जनजातीय कला संस्थाओं के माध्यम से जनजातीय हस्तशिल्प — घड़वा कला, बस्तर आर्ट, माड़िया गोंड कला — को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार में पहुंचाया जा रहा है। इससे न केवल आजीविका मिल रही है, बल्कि जनजातीय सांस्कृतिक पहचान भी सुरक्षित हो रही है।

5.6 समग्र विकास सूचकांक में परिवर्तन

विकास संकेतक	2011-12	2022-23	परिवर्तन
गरीबी रेखा से नीचे (जनजाति)	47.4%	29.3%	-18.1%
महिला साक्षरता दर	50.9%	63.1%	+12.2%
शिशु मृत्युदर (प्रति हजार)	58	41	-17
कुपोषित बच्चे (0-5 वर्ष)	59.2%	47.8%	-11.4%
वन अधिकार पट्टे (लाख में)	1.2	4.5	+3.3
एकलव्य विद्यालय (संख्या)	56	102	+46

6. चुनौतियां एवं सुझाव (Challenges & Recommendations)

6.1 प्रमुख चुनौतियां : जनजातीय विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में निम्नलिखित प्रमुख चुनौतियां हैं:

- भौगोलिक दुर्गमता: छत्तीसगढ़ के अनेक जनजातीय क्षेत्र अत्यंत दुर्गम पहाड़ी एवं वन क्षेत्रों में स्थित हैं। सड़क एवं संचार सुविधाओं के अभाव में योजनाओं की पहुंच सीमित रहती है।
- वामपंथी उग्रवाद (LWE): बस्तर संभाग के अनेक जिले — बीजापुर, सुकमा, दंतेवाड़ा, नारायणपुर — नक्सल प्रभावित हैं। सुरक्षा चिंताओं के कारण सरकारी कर्मचारी इन क्षेत्रों में जाने से हिचकिचाते हैं।
- क्रियान्वयन की कमजोरियां: CAG रिपोर्टों में बार-बार यह सामने आया है कि जनजातीय विकास कोष का उपयोग गैर-जनजातीय कार्यों में हो जाता है। लक्षित लाभार्थियों तक योजनाओं का लाभ नहीं पहुंचता।
- साक्षरता एवं जागरूकता का अभाव: अनेक जनजातीय परिवार अपने अधिकारों एवं उपलब्ध योजनाओं के बारे में जागरूक नहीं हैं। भाषाई बाधाएं (हिंदी बनाम स्थानीय जनजातीय भाषा) भी सूचना प्रसार में रुकावट डालती हैं।
- विस्थापन की समस्या: खनन, बांध एवं उद्योग परियोजनाओं के कारण जनजातीय समुदायों का विस्थापन जारी है। पुनर्वास नीतियां अपर्याप्त हैं।
- स्वास्थ्य एवं पोषण: सिकल सेल एनीमिया, मलेरिया एवं कुपोषण जनजातीय क्षेत्रों में गंभीर समस्या बनी हुई है। स्वास्थ्य बुनियादी ढांचे की कमी है।
- बिचौलियों की भूमिका: वन उत्पाद विपणन में बिचौलिये अभी भी सक्रिय हैं, जिससे जनजातीय संग्राहकों को उचित मूल्य नहीं मिल पाता।

6.2 सुझाव : जनजातीय विकास को सतत एवं समावेशी बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं:

- अभिसरण एवं समन्वय: विभिन्न मंत्रालयों की योजनाओं में बेहतर समन्वय आवश्यक है। 'एकल खिड़की प्रणाली' लागू की जाए ताकि लाभार्थियों को कई विभागों के चक्कर न लगाने पड़ें।
- प्रौद्योगिकी का उपयोग: डिजिटल पेमेंट, ड्रोन डिलीवरी एवं टेलीमेडिसिन के माध्यम से दुर्गम क्षेत्रों में सेवाएं पहुंचाई जाएं।
- स्थानीय भाषाओं में जागरूकता: योजनाओं की जानकारी गोंडी, हल्बी, कुड़ुख, बैगानी जैसी स्थानीय जनजातीय भाषाओं में दी जाए।
- ग्राम सभाओं को सशक्त बनाना: पेसा अधिनियम का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए। ग्राम सभाओं को वास्तविक वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकार दिए जाएं।
- तृतीय पक्ष मूल्यांकन: योजनाओं की नियमित एवं स्वतंत्र निगरानी की व्यवस्था की जाए। CSO एवं शोध संस्थाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जाए।
- जनजातीय उद्यमिता: जनजातीय युवाओं के लिए कौशल विकास एवं स्टार्टअप समर्थन कार्यक्रम प्रारंभ किए जाएं।

निष्कर्ष (Conclusion)

छत्तीसगढ़ में जनजातीय विकास की यात्रा जटिल, बहुआयामी एवं अभी भी अपूर्ण है। विभिन्न सरकारी योजनाओं — पीएम जनमन, धरती आबा जनजातीय ग्राम उत्कर्ष अभियान, CSFDC, MZADA एवं अन्य — के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका एवं अधोसंरचना में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। जनजातीय साक्षरता दर, संस्थागत प्रसव, विद्युतीकरण एवं पेयजल पहुंच जैसे सूचकांकों में सुधार इन योजनाओं की सफलता के प्रमाण हैं।

तथापि, गरीबी, कुपोषण, भौगोलिक अलगाव, वामपंथी उग्रवाद एवं क्रियान्वयन की कमजोरियां अभी भी विकास की गति को अवरुद्ध कर रही हैं। योजनाओं की संख्या तो बढ़ी है, लेकिन जमीनी स्तर पर उनका प्रभाव सुनिश्चित करना अभी भी एक बड़ी चुनौती है। विकास तभी सतत होगा जब जनजातीय समुदायों को विकास के 'लाभार्थी' मात्र नहीं, बल्कि 'सहभागी एवं निर्णायक' के रूप में देखा जाएगा।

PM-JANMAN एवं धरती आबा अभियान जैसी नई योजनाएं सही दिशा में उठाए गए कदम हैं, क्योंकि ये PVTGs एवं सुदूर बस्तियों को विशेष रूप से लक्षित करती हैं। आने वाले दशक में यदि इन योजनाओं का क्रियान्वयन प्रभावी रहा, तो छत्तीसगढ़ के जनजातीय समुदायों का जीवनस्तर राष्ट्रीय औसत के करीब पहुंच सकता है। इसके लिए सुशासन, पारदर्शिता, प्रौद्योगिकी, स्थानीय भागीदारी एवं राजनीतिक इच्छाशक्ति — सभी की समान आवश्यकता है।

संदर्भ सूची (References)

Bhatia, R., Mavalankar, D., Singh, P., & Mony, P. (2017). Healthcare for tribal communities in Bastar: Infra structure gaps and policy implications. *Indian Journal of Public Health, 61*(2), 115-122.

Bijoy, C. R. (2008). India: Adivasis and the Forest Rights Act. *Economic and Political Weekly, 43*(50), 14-16.

Burman, B. K. R. (2009). *Indigenous and tribal peoples: Deprived and dispossessed*. New Delhi, India: Mit tal Publications.

Chhattisgarh State Forest Development Corporation. (2023). *Annual report 2022-23*. Raipur, India: Author.

Comptroller and Auditor General of India. (2022). *Report on performance audit of tribal development sche mes in Chhattisgarh*. New Delhi, India: Author.

Dutta, P. (2022). MGNREGS as social protection: Evidence from tribal districts of Chhattisgarh. *Indian Jou rnal of Labour Economics, 65*(1), 87-110.

Government of Chhattisgarh. (2024). Economic survey of Chhattisgarh 2023-24. Raipur, India: Directorate of Economics and Statistics.

Gupta, M. (2018). Eklavya model residential schools: Educational outcomes for tribal children in Central In dia. *Indian Journal of Education, 12*(2), 88-105.

International Institute for Population Sciences (IIPS) and ICF. (2021). *National Family Health Survey (NFH S-5), 2019-21: India*. Mumbai, India: IIPS.

Ministry of Tribal Affairs, Government of India. (2024). *Annual report 2023-24*. New Delhi, India: Author.

Mishra, S. K. (2019). TRIFED and tribal livelihoods: A study of minor forest produce markets in Chhattisga rh. *Tribal Research Bulletin, 41*(1-2), 45-63.

Government of Chhattisgarh. (2024). *Economic survey of Chhattisgarh 2023-24*. Raipur, India: Directorate of Economics and Statistics..

Pati, B. (2020). Forest Rights Act implementation in Chhattisgarh: Ground realities. *Economic and Political Weekly, 55*(11), 32-40.

PM-JANMAN Portal. (2024). *Implementation status report*. Retrieved from https://pmjanman.gov.in

Rajan, S., Bhatt, A., & James, K. S. (2022). Health insurance and tribal populations: Evidence from Ayush man Bharat. *Health Policy and Planning, 37*(4), 420-431.

Sharma, A. K. (2021). Van Dhan Vikas Kendras and tribal entrepreneurship in Chhattisgarh. *Journal of For est Economics, 43*, 56-71.

Government of Chhattisgarh. (2024). Economic survey of Chhattisgarh 2023-24. Raipur, India: Directorate of Economics and Statistics.

Sundar, N. (2007). *Subalterns and sovereigns: An anthropological history of Bastar*. New Delhi, India: Oxf ord University Press.

Xaxa, V. (2001). Protective discrimination: Why scheduled tribes lag behind scheduled castes. *Economic an d Political Weekly, 36*(29), 2765-2772.

Received: 20.01.2026 | Accepted: 03.02.2026 | Published: 28.02.2026

मानवीय चेतना जागृति के प्रणेता 'संत रविदास जी'

डॉ. तेजराम पाल*

trpphi9@gmail.com

सारांश :

प्रस्तुत शोध पत्र में संत रविदास जी को मानवीय चेतना जागृति के महान प्रणेता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मध्यकालीन भारतीय समाज जाति-विभाजन, ऊँच-नीच, छुआछूत तथा सामाजिक असमानता जैसी गंभीर समस्याओं से ग्रस्त था। ऐसे समय में संत रविदास जी ने मानवता, समता, बंधुत्व और प्रेम का संदेश देकर समाज को नई दिशा प्रदान की। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि सभी मनुष्य एक ही सृष्टिकर्ता की संतान हैं, अतः जाति, धर्म, वर्ण और सामाजिक भेदभाव निरर्थक हैं। उनकी वाणी में आत्मज्ञान, भक्ति, श्रम की गरिमा, स्वतंत्रता, अहिंसा तथा सामाजिक न्याय का स्वर प्रमुखता से प्रकट होता है। उन्होंने मद्यपान, हिंसा, अंधविश्वास और सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया तथा नैतिक जीवन, सदाचार और प्रभु-भक्ति को श्रेष्ठ बताया। संत रविदास जी ने शोषित एवं वंचित वर्ग को आत्मसम्मान और अस्तित्व-बोध प्रदान किया। उनकी शिक्षाओं ने समाज में समरसता स्थापित करने तथा मानवीय मूल्यों को पुनर्जीवित करने का कार्य किया। आज भी उनके विचार सामाजिक समानता, मानवाधिकार और विश्वबंधुत्व की दृष्टि से अत्यंत प्रासंगिक हैं।

मुख्य शब्द :

संत रविदास, मानवीय चेतना, सामाजिक समता, जाति-विरोध, भक्ति आंदोलन, मानवतावाद, आत्मज्ञान, सामाजिक सुधार, बंधुत्व, अहिंसा।

मानव के अन्दर मानवीय चेतना का होना ही मानव है, और जिस मनुष्य में इसका अभाव होता है, उसके कृत्य मानव से गिरकर पशु के तुल्य हो जाती है। एक लम्बे समय से समाज में वर्ग भेद और जाति भेद की वेदना समाज के एक वर्ग को झेलनी पढ़ रही थी। समाज के एक वर्ग (सवर्ण) को ईश्वर के समकक्ष मान-सम्मान मिला किन्तु दूसरे एक वर्ग को निरा पशु के समान जीवन-यापन करना पड़ा। उन्हें श्रमिक मनुष्य होने का श्राप भोगना पड़ा, क्योंकि जो स्थिति समाज के एक वर्ग (श्रमिक वर्ग) की थी वह पशु की भी नहीं थी। एक वर्ग को सामान्य समाज से अलग उन्हें ग्राम से बाहर निवास करना पड़ा। सड़ा, गला व फेंका हुआ अन्न के द्वारा भी कभी-कभी उन्हें अपनी उदर पीड़ा को शान्त करनी पड़ी। पशु से भी ज्यादा दयनीय स्थिति में जीवन-यापन करने को मजबूर कर दिया गया। पशु को तो प्रकृति ने ऐसी अनुकूलता प्रदान की है, जिससे वह अपना अस्तित्त्व बनाये रखने के लिए सक्षम है, किन्तु मनुष्य में अतिसंवेदनशीलता के कारण प्रकृति से ज्यादा प्रभावित होता है। मनुष्य की संरचना प्रकृति ने उत्तम जीव के रूप में की है, जिसे पंचज्ञानेंद्रिया, पंचकर्मेंद्रिया और उत्तम बुद्धि प्रदान की है। जिससे वह अन्य जीवों में श्रेष्ठता को प्राप्त करता है किन्तु फिर भी उससे सामाजिक नीति निर्माण करने में कुछ चूक हो गयी थी।

जहां वर्गों का विभाजन कार्य में कुशलता व समाज का कार्य सुचारू रूप से चल सके यह उद्देश्य से किया गया होगा। जिसमें किसी की महत्ता को अधिक या कम नहीं आंका जा सकता। मानवीय समाज के प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा समता, समानता और बन्धुत्त्व के भाव से किया गया कार्य सृष्टि के कार्य में सहायक होता है। किसी भी समाज (वर्ग/धर्म) के वह कार्य जो समाज के विकास कार्यों को पूरा करते हैं उन कार्यों को तुच्छ समझना उनके कार्यों की उपेक्षा करना, उसे हीन मानना यह उचित नहीं है। सभी वर्गों को समान आदर व सम्मान मिलना चाहिए था किन्तु समाज के कुछ व्यक्तियों के कारण यह सम्भव नहीं हो

* **दर्शनशास्त्र विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) - 482001**

सका। समाज के जिस वर्ग के हाथों में ज्ञान, शिक्षा व सामाजिक नियम बनाने का कार्य सोंपा गया उनके द्वारा पद का दुरूपयोग कर समय के साथ-साथ वह ऐसे नियम बनाने में सफल हो गये जिससे एक वर्ग दूसरे वर्ग से और एक समाज दूसरी समाज से अलग होते चली गयी।

शिक्षा के कार्य करने वाले को ईश्वर के समकक्ष बना दिया गया, और दूसरा एक श्रमिक वर्ग को पशु से भी दयनीय स्थिति में पहुंचाने के पूरे नियम तैयार किये गये। यह मानवता का सबसे बुरा हश्र था। मानवता का स्तर इतना नीचे गिरे यह किसी भी धर्म के लिए शायद इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है? एक मनुष्य को छूने व देखने से दूसरा मनुष्य अपवित्र मानना यह जिस भी हीनबुद्धि, धर्म राजनीतिज्ञ ने धर्म शास्त्रों में हेर-फेर (संशोधन) कर किया होगा। वह मनुष्य कहलाने के योग्य ही व्यक्ति नहीं है। यह कार्य एक स्वस्थ सामाजिक मानसिकता वाले व्यक्ति का नहीं हो सकता, यह किसी स्वार्थ बुद्धि वाले व्यक्ति का कार्य होने की सम्भावना है। जहाँ शिक्षा का उपयोग सम्पूर्ण मानव का विकास होना चाहिए था, वहीं मानवता के हनन का कारण बना। यह समाज में सत्ता और शिक्षा का सबसे बड़ा दुरूपयोग था।

कुछ शास्त्रों में समाज के विभिन्न वर्ग को ईश्वर के विभिन्न अंगों (मुँख, भुजा, उदर और पैर) के रूप में दिखाने से तात्पर्य यह रहा होगा, कि एक स्वस्थ व्यक्ति के सभी अंग स्वस्थ व निरोग रहे तो वह व्यक्ति पूर्ण है और वह कोई भी कार्य करने में सक्षम है, इसी तरह समाज के सभी वर्ग सुमंगल भाव से समाज के सभी कार्यों को पूर्ण करें तो वह सुखद और समृद्ध समाज होगी। मनुष्य के सम्पूर्ण अंग का अपना एक महत्व है- आँखों का देखना, कानों का सुनना, हाथों का कार्य करना, मुख का भोजन चबाना, पैरों का चलना यह मानव शरीर के सभी अनिवार्य अंग है। इसमें किसी एक अंग का भी नही होने की कल्पना मात्र से आत्मा भयाक्रांत हो जाती है। इसी प्रकार समाज सुचारू रूप से कार्य करें इसके लिए वर्गों का विभाजन हुआ होगा। उस विभाजन का मुख्य उद्देश्य उस समय के विकास में सहायता प्रदान करना, उनका प्रयोजन रहा होगा, किन्तु परिणाम बहुत ही भयानक और समाज के एक वर्ग को पीड़ादायक रहा। किसी एक अंग का अभाव शरीर को विकलांग बना देता है और अपाहिज शरीर से सम्पूर्ण विकास संभव नहीं है और यह सब हमारे समाज में होते आया है।

शायद हमारे देश की प्रगती और समृद्धि पूरे विश्व में श्रेष्ठ होती किन्तु समाज में कुछ अनैतिक निर्णय के कारण आज हमारे देश में सर्वश्रेष्ठ साहित्य होते हुऐ भी गम्भीर दुर्दशा को प्राप्त कर रहा है। प्रगति तो सम्पूर्ण समाज से ही हो सकती है, न ही एकांकी चिन्तन, मनन, बुद्धि सृजन से और न ही अकेले श्रम से, दोनों का साथ होना अतिआवश्यक है। दोनो में ताल-मेल होना, दोनो का एक दूसरे का आदर सम्मान करना, देश, समाज और सम्पूर्ण मानवता के लिए आवश्यक है।

यह दुर्दशा तो शायद और तीव्र होती किन्तु समय-समय पर ऐसे समाज सुधारक इस भारत भूमि पर जन्म लेते रहे जिससे मानव समाज को सामाजिक चेतना में सुधार होते रहा। उनके द्वारा धर्म और राजनीतिज्ञ के विरूद्ध समय सापेक्ष मानवतावादी विचार से मानवता को गौरवान्वित किया गया। जिनके कारण मानवीय जीवन के इतने विरूद्ध नियम होते हुए शोषित वर्ग जीवित रह पाया।

मध्य युग जिसे भक्तिकाल भी कहते हैं, उस युग में एक शोषित परिवार में एक महान मानवतावादी संत का जन्म हुआ, जिन्होंने उस वर्ग को ही नहीं वरण सम्पूर्ण मानवता को गौरवान्वित करने वाले कार्य करते हुए मानव हितोपदेश दिए। मानवता को केंद्र में रखकर सम्पूर्ण मानव समाज को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किए। उन्होंने आत्म-तत्त्व के ज्ञान के साथ समाज को दिशा-निर्देश करने का कार्य भी किया गया। यह वह समय था जब समाज में अत्याधिक कुरीतियां व्याप्त थी और वर्ग भेद के कारण समाज में क्लेश और द्वैष उत्पन्न हो रहा था, ऐसे देश-काल में समाज के उत्थान के लिए कुछ दिव्य आत्माओं ने मानव शरीर में जन्म लिए, उनमें से एक महान आत्मा का सांसारिक नाम 'रैदास' रखा गया। जिसे बाद में 'संत रविदास एवं संत रैदास' नाम से विख्यात हुए। संत रविदास जी के जन्म के संबंध में कुछ भ्रान्तियां है। संत कर्मदास जी के अनुसार-

"चैदह सौ तैतिस की माद्य सुदी पन्दरास।

दुखियों के कल्याण हित प्रकटे श्री रविदास।।"[1]

सवंत् 1433 (1377 ई. लगभग) माद्य मास की पूर्णिमा दिन रविवार को पिता श्री रघु (संतोखदास) माता करमा देवी (कलसी देवी) के घर जन्म हुआ, किन्तु कुछ स्थान पर सन् 1388 ई. व कुछ स्थान पर सन् 1398 ई. का भी वर्णन मिलता है। लेकिन यह तय है कि उनके समकालीन महात्मा - संत नामदेव, संत कबीर व मीरा बाई जैसे महामानव ने भी जन्म लिया और सामाजिक चेतना को बढ़ावा दिए। संत रविदास जी का जन्म उत्तरप्रदेश के वाराणसी में हुआ था।

संत रविदास जी का जन्म व जीवन कई चमत्कारी घटनाओं से ओत-प्रोत है। वे पे्रमा भक्ति की महिमा का वर्णन जीवन-पर्यन्त करते रहे। वह निरंकारी ईश्वर की उपासना करते थे, किन्तु इनका निरंकारी ईश्वर जीव मात्र से अभिन्न नहीं है, बल्कि जीव-अजीव में समाहित है, उनमें स्थाई रूप से वास करता है। रविदास जी के काल में मुस्लिम साम्राज्य स्थापित था, दूसरी ओर हिन्दुओं में ब्राम्हणवादी मानसिकता का राज था। इस धर्म द्वन्द्व के बीच में मानवता का फूल रविदास जी द्वारा खिलाया गया। जिसकी सुगन्ध आज तक जनमानस में व्याप्त है। रविदास जी मानव स्वतंत्रता को अत्यधिक महत्व देते थे। उनका मानना था कि-

''पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीत।

रविदास दास पराधीनता से, कौन करैं हैं प्रीत।।''[2]

रविदास जी के अनुसार स्वाभिमान के साथ जीवन-यापन ही जीवन है, क्योंकि पराधीनता मृत्यु के समतुल्य है ऐसा जीवन निरर्थक है। हमें किसी भी परिस्थिति में पराधीनता को स्वीकार नहीं करना चाहिये। इससे मानवीय जीवन गरिमा की हानि होती है। उनके द्वारा मानव हित में आचार मूलक (नीतिशास्त्रीय) उपदेशों की महत्ता मानवीय जीवन तक बनी रहेगी -

''रविदास मदुरा का पीजियै जो चढ़ै-चढ़ै उतराय।

नाम महारस पीजियै जौ चढ़ै नांहि उतराय।।''[3]

रविदास जी जीवों को झूठे नशे-मदिरा इत्यादि का त्याग करने का उपदेश देते हैं एवं कहते हैं कि हे जीवों! मदिरा का क्या पीना? जिसके बार-बार पीने से नशा चढ़कर उतर जाता है। प्रभु के नाम रूपी महारस भाव श्रेष्ठ रसों को पीना चाहिए जो एक बार चढ़ जाता है तो उतरता ही नही। यहां नशे की तुच्छता का वर्णन कर मानव को परम प्रेम (भक्ति) रूपी शराब पीने को श्रेष्ठ मानते हैं जो मानवता के लिए आवश्यक है।

रविदास जी जाति धर्म के भेद को स्वीकार नहीं करते थे, उनके लिए तो सभी एक समान थे, एक ब्रम्ह के बनाये हुए एक ही मिट्टी के सभी जीव हैं -

''एक माटी के सभ भांडे एकौ सिरजनहारा।

रविदास व्यापै एकौ घट भीतर एकै घेड़े कुम्हारा।।''[4]

अर्थात एक कुम्हार एक ही मिट्टी से अनेक तरह के बर्तन तैयार करता है, ऐसे ही संसार के सब जीवों को एक ही मिट्टी भाव पाँच तत्वों - वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि और आकाश से एक प्रभु ने बनाया है तो भेद कैसा? भेद हमें मिथ्या प्रतीत हो रहा है, वास्तव में न हमारी कोई जात है, ना कोई धर्म है, ना कोई गोत्र है। यह संसारी भेद तो हम लोगों के द्वारा स्वार्थ बस बनाए हुए है, वास्तव में हम सभी उसी दिव्य प्रकार से प्रकाशित परम आलौकिक शक्तियां है। समाज में फैले जाति वादी रोग से मुक्ति के लिए उन्होंने जीवन पर्यन्त कार्य किए है-

''जात-पात के फेर में, उल्झी रहै सब लोग।

मनुष्यता कूं खात है, रैदास जाति का रोग।।''[5]

रविदास जी ने जातियता को एक भंयकर बीमारी कहकर पुकारा है, सभी लोग जाति-पाति के फेर में ही उल्झे हुए है। जातियता एक बीमारी है जो मानवता का भक्षण कर रही है। हमें इससे मुक्त होना हैं जैसे सूर्य और सूर्य के प्रकाश किरणों में कोई भेद नही हो सकता है। उसकी किरणों में असमानता नही हो सकती है सूर्य के एक किरण में उर्जा (विटामिन डी) मिलती है

तो दूसरी अन्य किरणों से जगत् दृश्यमान प्रतीत होता है। सूर्य ने प्रकाश को प्रकाशित करते समय कोई भेद उत्पन्न नही किया था, वह तो बस निरंतर प्रकाशित हो रहा है। भेद हम लोगों ने बनाया है (वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था) हमने किसी भी कार्य को सुचारू रूप से संचालन के लिये यह व्यवस्था तैयार की थी, इसलिए नहीं कि किसी को दास (गुलाम) बनाकर उन पर राज करें।

"रविदास जाति मत पूछिये का जात का पात।
ब्राह्मण खत्री वैश्य सूद सभन कि एक जात।।"[6]

रविदास जी कहते हैं कि हे संसार के जोवों! तुम मूर्ख जीवों की भांति जाति पाती क्यों पूछतें हो? क्योंकि जाति पाती कुछ भी नही है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी एक समान है। यह संसार में जीवों में स्वार्थ वश भेद बनाया है, जाति का भेद, धर्म का भेद और इनके कारण मानव-मानव का दुश्मन बनते जा रहा है। दुःख प्राप्त कर रहा हैं। न ही मानसिक शांति प्राप्त हो रही है और न ही शारीरिक सुख, क्योंकि शारीरिक सुख भी तभी आंनद देता है जब व्यक्ति का आचार शुद्ध हो और हमने अपने आचार को धर्म और जाति भेद के कारण अशुद्ध कर लिया है। उसे सिर्फ ज्ञान के द्वारा शुद्ध कर सकते हैं, भगवान बुद्ध भी कहते हैं कि "आत्म दिपो बनो, आत्म शरण जाओं धर्म दिपो बनो, धर्मशरण बनो"[7] अर्थात हमें स्वयं को जानना चाहिये जिससे यह संसारिक मिथ्या ज्ञान का नाश हो जाये और आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो। जिससे संसारिक भेद मिट जाये तत्व का ज्ञान हो जाये। भगवान बुद्ध कहते हैं कि "सब धर्म संस्कृत विनाशसील है, अप्रमाद्य के साथ प्राप्त करो।"[8] यह संसारिक भेद जो हमे प्रतीत हो रहा है यह सब विनाशसील है, हमारे संस्कार, हमारी जाति, हमारे धर्म सब मिथ्या है। हमें तो सिर्फ ज्ञान के दीये जलाकर स्वयं को प्रकाशित करना है, और वही हम कर सकते हैं।

"विद्यां च विद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।

अविद्यया मृंत्यु तीत्र्पा विद्ययामृतमश्नुते।।"[9]

विद्या और अविद्या, इन दोनों के साथ जो, आत्म तत्व को जानते हैं, वे उस आत्म तत्व के सहारे, अविद्या से मृत्यु को पार करके, विद्या से अमृत को पाते हैं। अविद्या रूपी अंधकार को सिर्फ विद्या रूपी प्रकाश से दूर किया जा सकता है। हमें ज्ञान के द्वारा हमारे अज्ञान का नाश कर मानवता रूपी प्रेम को प्रज्ज्वलित करना है। तभी अज्ञान से उत्पन्न रूप, जाति, वर्ण अंधकार दूर हो सकता है। हममें प्रेम की ज्योति प्रज्ज्वलित हो सकती है, तभी मानवता अपनी गरिमा को प्राप्त कर सकता है।

सत्य और अहिंसा के बिना मानव पशु तुल्य है। मन, कर्म और वचन से किसी के साथ हिंसा न करना ही अहिंसा है। यह मानवीय गुण है जो मानव में स्वभावतः होना चाहिये, किन्तु कभी-कभी मानव स्वार्थ बस अन्य मूक बधिर पशुओं की हिंसा, बली या कुर्बानी के नाम से करता है, यह उचित नही है। इसके लिए वह कहते हैं -

"रविदास जीव कूं मार कर कैसो मिलहि खुदाय।

पीर पैगम्बर औलिया, कोउ न कहइ समुझाये।।"[10]

किसी भी जीव के साथ हिंसा कर ईश्वर की प्राप्ति संभव नही है। यह किसी पीर पैगम्बर नही समझा पाये, कि क्या किसी की हिंसा से खुदा की प्राप्ति हो सकती है? नहीं यह सम्भव नहीं है। जैसे हम मानव में जीवन है उसी तरह अन्य जीवों में भी जीवन है। उनमें में भी परमात्मा और ईश्वर का वास है। रविदास जी की मानववादी दृष्टि और आध्यात्म से प्रभावित होकर संत कबीर जी ने उन्हें संतो का संत कहे थे -

"साधन में रविदास संत है, सुपच ऋषि से मानिया।

हिन्दु तुरक दुई दीन बने है, कछु नही पहिचानिया।।"[11]

संत स्वभावतः ही सरल व सहज हृदय होते हैं उनके ध्येय मानव कल्याण व उसी को प्रभु की आराधना मानना होता है, और यही मानवतावादी गुण है, जो रविदास जी में समाहित है।

आचार्य रजनीश जी (ओशो) नें संत रविदास जी को अद्वितीय संत एवं आकाश का ध्रुव तारा कहकर संबोधित किए हैं। उन्होंने कहे हैं कि "भारत का आकाश संतो के सितारों से भरा है। अनन्त-अनन्त सितारे है यद्यपि ज्योति एक है। संत रविदास जी उन सब सितारों में ध्रुव तारा है, इसलिये की शूद्र के घर में पैदा होकर भी काशी के पण्डितों को भी मजबूर कर दिया स्वीकार करने को। महावीर का उल्लेख नही किया ब्राह्मणों ने अपने शास्त्रों में। बुद्ध की जड़े काट डाली, बुद्ध के विचार को उखाड़ फेंका। लेकिन रविदास जी को नही उखाड़ सके और रविदास जी को स्वीकार करना पड़ा। ब्राह्मणों के द्वारा लिखी गई संतो की स्मृतियों में रविदास जी सदा स्मरण किये गये।"[12] वह सभी के मन में अमिट छाप छोड़कर गए हैं।

निष्कर्ष –

संत रविदास जी ने आत्म-ज्ञान के साथ-साथ समाज को एक मोती-माला के रूप में पिरोने का प्रयास किए। उनके प्रयास का फल यह रहा कि उस विसम परिस्थितियों में भी श्रमिक वर्ग अपना अस्तित्त्व को बचाए रख सके। उनके द्वारा सवर्ण वर्ग और श्रमिक वर्ग के बीच की खाई को भी पाटने का प्रयास किया गया और मानवतावाद के बीज को बोने का कार्य किया गया। उनके द्वारा दिए गए उपदेश मानवतावाद के बीज रूप में स्थापित हुए जो उनके पाश्चात्य सभी मानवतावादी दार्शनिकों के लिए सहायक हुए। संत रविदास जी के विचारों से उनके पश्चात्य सभी मानवतावादी संत व चिंतक प्रभावित रहे है। उनका निरंकारी प्रभु मानवता में ही बसता है अर्थात वह मानवता से परे नही है उसमें पूर्णता व्याप्त है। मावनता के सुगंधित पुष्पों को जनमानस तक रविदास जी ने बड़े ही सरल व सहज हृदय से पहुँचाया है। भक्ति से परिपूर्ण निरंकारी परंपरा के माध्यम से मानवतावादी चेतना को जनमानस में प्रस्फुटित करने में उनका जीवन पूर्ण समर्पित रहा है।

संदर्भ :-

[1] संत सुरिन्दर दास (टीकाकार), जगत्गुरू रविदास अमृतवाणी, श्रीमती सबरजीत कौर एवं श्रीमती नीलम (हिन्दी अनु.), श्री गुरु रविदास जन्म स्थान पब्लिक चैरिटेबल, वाराणसी, संस्करण 2011, पृ. 290

[2] रविश्री किशोर कुचे (सम्पा.), रविदास राज, पत्रिका, जुलाई - 2014, पृ. 10

[3] संत सुरिन्दर दास (टीकाकार), जगत्गुरू रविदास अमृतवाणी, श्रीमती सबरजीत कौर एवं श्रीमती नीलम (हिन्दी अनु.), श्री गुरु रविदास जन्म स्थान पब्लिक चैरिटेबल, वाराणसी, संस्करण 2011, पृ. 254

[4] संत सुरिन्दर दास (टीकाकार), जगत्गुरू रविदास अमृतवाणी, श्रीमती सबरजीत कौर एवं श्रीमती नीलम (हिन्दी अनु.), श्री गुरु रविदास जन्म स्थान पब्लिक चैरिटेबल, वाराणसी, संस्करण 2011, पृ. 255

[5] आज का सुलेख-भारत, पाक्षिक पत्रिका, फरवरी 2007, पृ. 2

[6] संत सुरिन्दर दास (टीकाकार), जगत् गुरु रविदास अमृतवाणी, श्रीमती सबरजीत कौर एवं श्रीमती नीलम (हिन्दी अनु.), श्री गुरु रविदास जन्म स्थान पब्लिक चैरिटेबल, वाराणसी, संस्करण 2011, पृ. 269

[7] दिघनिकाय, 16, महापरिनिब्बानसुत

[8] चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृष्ठ 57

[9] ईशावास्योपनिषद, 11, अष्टादशी, पृ. 8-9

[10] प्रेमदास जस्सल, परोपकारी सतगुरू रविदास, पृ. 38

[11] रविदास राज, पत्रिका, अप्रैल 2011, पृ. 8

[12] रविदास राज पत्रिका, अप्रैल 2012, पृ0 6

Received: 20.01.2026 | Accepted: 03.02.2026 | Published: 28.02.2026

प्राचीनभारतीयज्ञानसंस्कृतेः विश्वव्यापिनी प्रवाहधारा; तक्षशीला-नालन्दा-विक्रमशीलानां ऐतिहासिकमीमांसा तथा अन्तर्राष्ट्रीयशिक्षाव्यवस्थायाः आधुनिकप्रासङ्गिकता

उदयकर्मकारः[*]

udaykarmakar127@gmail.com

शोधनवनीतम्

प्राचीनभारते शिक्षा न केवलं सूचनासङ्ग्रहपर्यवसिता, अपि तु आध्यात्मिक-मौलिक-नैतिकमूल्यसमन्विता समग्रमानवविकासाय अभिप्रेताभूत् इति प्रतिपद्यते। तक्षशीला-नालन्दा-विक्रमशीला इत्येतेषां विश्वविद्यालयानां मूलभूतमात्मतत्त्वं ज्ञानोत्पादन-अनुसन्धान-तर्कसंवाद-सांस्कृतिकविनिमयेषु निहितम्, यैः प्राचीनभारतवर्षे एव वैश्विकबौद्धिकसंवादस्य केन्द्रत्वेन प्रतिष्ठितम्। बौद्धधर्मप्रसार-वाणिज्यपन्थानां विस्तार-राजकीयाश्रयादिभिः एषा ज्ञानपरम्परा चीन-तिब्बत-कोरिया-मध्य-एशियादिदेशेषु प्रसृता, येन अन्तराष्ट्रीयशैक्षिकसंपर्काः सुदृढीकृताः। प्राचीनभारतीयशिक्षादर्शः समन्वितवैश्विकदृष्ट्या अद्यतनशिक्षाविचारस्य मूलाधाररूपेण ग्राह्यः, यः बौद्धिकविकासं नैतिक-आध्यात्मिकमूल्यैः सह संयोज्य समग्रमानवोन्नतिमूलत्वेन इति परमलक्ष्यं साधयति।

एतस्मिन् प्रस्तूयमाने शोधप्रबन्धे प्राचीनभारतीयज्ञानसंस्कृतेः विश्वव्यापिनी प्रवाहधारा सम्यगनुशील्य त्रयाणां विश्वविद्यालयानाम् ऐतिहासिक-सांस्कृतिक-दार्शनिकस्वरूपस्य समालोचनात्मकमीमांसा तथा भारतीयशिक्षामूल्यानाम् अभ्यन्तरविषयकता, मुक्तसंवादपरम्परा, गुरुशिष्यसम्बन्धबन्धनं ज्ञानसहकारिता च आधुनिक-अन्तर्राष्ट्रीयशिक्षाव्यवस्थायां कथंकारं प्रासङ्गिकतां भजते इत्यादिकमन्वेष्टुमुद्दिश्यते।

सूचकशब्दाः

तक्षशीला, नालन्दा, विक्रमशीला, भारतीयज्ञानपरम्परा, अन्तर्राष्ट्रीयशिक्षा, गुरुशिष्यसम्बन्धः, समग्रमानवविकासः, भारतीयशिक्षापद्धतिः।

प्राचीनभारतीयसभ्यतायां शिक्षा न केवलं सूचनासङ्ग्रहस्य प्रक्रिया आसीत्, अपि तु सा ज्ञान-संस्कृति-मानवीयमूल्यानां समन्वितसाधनतया वरीवर्तते स्म। “ज्ञानम्” अत्र आध्यात्मिकमुक्तेः, नैतिकविकासस्य, सामाजिकदायित्वबोधस्य च सह गाढतया सम्बद्धम् आसीत्। अस्याः दृष्टेः परिणामस्वरूपेण भारते एतादृशी शिक्षाव्यवस्था विकसिताभूत् या भौगोलिकसीमनमतिक्रम्य अन्तर्राष्ट्रीयपरिसरे स्वकीयम् प्रभावं प्रसारयामास। अतः प्राचीनभारतं न केवलं क्षेत्रीयं ज्ञानकेन्द्रमासीत्, अपि तु वैश्विकबौद्धिकसन्मेलनभूमिरूपेण आत्मानं प्राकटयत्।

अस्य विश्वायनप्रक्रियायां त्रयाणां प्रमुखशिक्षाकेन्द्राणां—तक्षशीलाविश्वविद्यालयः, नालन्दा-महाविहारः, विक्रमशीला-महाविहारश्च विशेषोल्लेखमर्हन्ति। एते संस्थानानि केवलं पाठदानपर्यन्तं न सीमितानि आसन्; अपि तु ज्ञानोत्पादनस्य, अनुसन्धानस्य, वादविवादस्य, सांस्कृतिकविनिमयस्य च सजीवकेन्द्ररूपेण व्यराजन्त। अन्तर्राष्ट्रियेषु विश्वविद्यालयेषु ज्ञानमेव धर्मीयं सामाजिकं सांस्कृतिकं सीमनमतिक्रम्य उच्चस्थानामप्राप्नोत्, सर्वदेशेभ्यः आगच्छन्तो विद्यार्थिनः एकत्रस्थाने ज्ञानालोकमर्जयामासुः। यथोक्तं श्रीमद्भगवद्गीतायां ज्ञानमाहात्म्यम् –

“न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते”।[1]

---

[*]**शोधच्छात्रः, स्नातकोत्तरसंस्कृतविभागस्थः, राँचीविश्वविद्यालये, अधिराँचि**

विशेषतः बौद्धधर्मस्य प्रसारः, वाणिज्यमार्गाणां विकासः, राजकीयपोषणं च एतं ज्ञानविनिमयप्रक्रियायाः प्राखर्यं पुष्णाति। चीन-तिब्बत-कोरिया-मध्य-एशिया-दक्षिणपूर्व-एशियादेशेभ्यः आगताः भिक्षवः छात्राश्च भारतं समागत्य शिक्षां प्राप्नुवन्ति स्म, स्वदेशं प्रतिगत्य तस्य ज्ञानस्य संस्कृतेश्च प्रसारमकुर्वन्। इत्थं भारतीयदर्शन-भाषा-विज्ञान-शिल्पकलानाम् अन्तरराष्ट्रीयपरिचयः समभवत्। विश्वायनचिन्तनं प्राचीनभारतस्य ज्ञानसंस्कृतेः मूलभूतमासीत् –

"उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"॥[2]

अतः एतानि प्राचीनभारतीयशिक्षासंस्थानानि न केवलं ऐतिहासिकनिदर्शनरूपेण न विद्यन्ते , अपि तु वैश्विकीकृतज्ञानसंस्कृतेः प्राचीनस्य सुव्यवस्थितरूपस्य प्रतिफलनानि सन्ति। सन्दर्भेऽस्मिन् तक्षशीला-नालन्दा-विक्रमशीलानमैतिहासिकपरिशीलनं तथा तेषां आधुनिकान्तरराष्ट्रीयशिक्षाव्यवस्थायां प्रासङ्गिकतायाः विश्लेषणं अत्यन्तमहनीयत्वेन विधीयते।

संभवतः गुरुकुलम्, अरण्यविश्वविद्यालयाः, इष्टक-पाषाणनिर्मितविश्वविद्यालयाश्च—एते त्रिविधाः शिक्षाव्यवस्थाः एकस्मिन्नेव काले विद्यमानाः आसन्। श्वेतकेतोरिदं दृष्टान्तरूपेण प्रसिद्धमस्ति; स तक्षशीलायां "शिल्पकला"-विद्यां अधीतवान्। अनन्तरं स व्यावहारिकज्ञानप्राप्त्यर्थं समग्रदेशे परिभ्रम्य, पञ्चशतर्षिसमवायेन निर्मितेषु आश्रमेषु प्राप्नवान्, यत्र तस्मै विविधाः शास्त्रविद्याभ्यासाः गुरुभिः उपदिष्टाः। प्राचीनभारते सर्वत्र असंख्याकान् शिक्षाकेन्द्राणि विश्वविद्यालयाश्च विस्तीर्णानि आसन्। तेषु अद्यावधि पुरातत्त्वविद्भिः आविष्कृतं प्राचीनतमं केन्द्रं तक्षशीला, यस्य कालः ख्रिष्टपूर्व-षष्ठशताब्द्यां निर्धार्यते; तथापि तस्य मूलं सम्भवतः अधिकं प्राचीनम्। अन्यानि च प्रमुखानि केन्द्राणि सन्ति—नालन्दा (बिहारप्रदेशे), वलभी (गुर्जरदेशे), विक्रमशीला (बिहारप्रदेशे), पुष्पगिरिः (ओडिशाप्रदेशे), जगद्दलम् (बाङ्गलादेशे), उदन्तपुरी (बिहारप्रदेशे), सोमपुरम् (बङ्गदेशे), विक्रमपुर (बङ्गदेशे), वाराणसी (उत्तरप्रदेशे), शारदापीठम् (काश्मीरप्रदेशे), रत्नगिरिः (ओडिशाप्रदेशे), मिथिला (बिहारप्रदेशे), उज्जयिनी (मध्यप्रदेशे), काञ्चीपुरम् (तमिलनाडुप्रदेशे) इत्यादयः। एषा सूची सम्पूर्णा नास्ति; अद्यापि पुरातत्त्वविदः पूर्वोत्खातकेन्द्राणां समीपवर्तिषु प्रदेशेषु नूतनानां प्राचीनविश्वविद्यालयानां अवशेषान् अन्वेष्टुं प्रवर्तन्ते।

प्राचीनकालादेव तीर्थस्थानानि विद्यार्जनकेन्द्ररूपेण प्रसिद्धानि आसन्; तीर्थयात्रिणां समागमः तत्र स्थितानां प्रख्याताचार्याणां कृते अतिरिक्तं वित्तोपार्जनसाधनं ददाति स्म। एतस्मात् कारणात् वाराणसी, काञ्ची, नासिकः कर्नाटकप्रदेशः, गङ्गासागरश्च शिक्षाकेन्द्ररूपेण विख्याताः अभवन्। कदाचित् राजानः पण्डितब्राह्मणान् आमन्त्र्य नूतनेषु ग्रामेषु स्थापयन्ति स्म, तेषां जीविकां च व्यवस्थापयन्ति स्म। एते ग्रामाः "अग्रहाराः" इत्यकथ्यन्त, स्वभावतः ते शिक्षाकेन्द्ररूपेण परिणताः।

ख्रिष्टशताब्दीद्वितीयसहस्रके शङ्कराचार्य-रामानुजाचार्य-माध्वाचार्य-वीरशैवादयः विभिन्नहिन्दुसम्प्रदायानां मठाचार्याः अत्यधिकप्रभावं प्राप्नुवन्। एतन्मठानां प्रमुखाः राज्यसमाजाभ्यां विपुलं अनुदानं लभन्ते स्म, यत् मुख्यतया उच्चस्तरीयधार्मिकदार्शनिकशिक्षायाः प्रसारे विनियुज्यते स्म। अनेन प्रकारेण मध्ययुगे एते मठाः महत्वपूर्णशिक्षाकेन्द्ररूपेण अभवन्। बहुषु स्थलेषु एतेषां मठानां सम्बद्धाः पण्डिताः धार्मिकशिक्षाया सह लौकिकविषयेष्वपि अध्यापनं चक्रुः।

तक्षशीला-विश्वविद्यालयः

प्रारम्भिकइतिहासः :—

अद्यतन-पाकिस्तानदेशस्य पञ्जाबप्रान्ते रावलपिण्डिनगरात् प्रायः विंशतिमैलपरिमितं पश्चिमतः स्थितं तक्षशिला प्राचीनभारते निःसंशयं सर्वेषां प्राचीनशिक्षाकेन्द्राणां मध्ये अत्यन्तप्रामुख्यं भजते। एषा तक्षशीला गान्धारदेशस्य प्रमुखप्रान्तस्य राजधानी आसीत्, यस्य इतिहासः सुदूरप्राचीनकाले निहितः अस्ति। आख्यायिकानुसारं भरतेन अस्याः स्थापना कृता, तस्य पुत्रस्य तक्षस्य नाम्ना अस्याः नामकरणं जातम्; स एव अत्र अधिपतिरूपेण प्रतिष्ठापितः आसीत्। अस्मिन्नेव स्थले जनमेजयस्य सर्पसत्रमानुष्ठीयत।

प्राचीनकाले अस्याः शिक्षाव्यवस्थायाः विषये विशिष्टं किञ्चिन्न विज्ञायते; तथापि ख्रिष्टपूर्वसप्तमशताब्द्याः मध्ये एव सा एकस्मिन् ख्यातनामविद्यापीठरूपेण परिणता, यत्र राजगृह-वाराणसी-मिथिलादिभ्यः दूरस्थेभ्यः नगरेभ्यः अपि विद्वांसः आगच्छन्। सिकन्दरस्य (अलेक्जाण्डरस्य) कालेऽपि एतत् दार्शनिकानां कृते विशेषतया प्रसिद्धम् आसीत्। दौर्भाग्यवशात् जातकग्रन्थान् विना स्रोतान्तरान् अस्य शिक्षाकर्मणः विषये अस्मदीयज्ञानं न्यूनं वर्तते।

सुसंघटितसंस्थायाः अभावः :—

प्रथमतया उल्लेखनीयम् यत् तक्षशिलायां आधुनिकार्थे कश्चन महाविद्यालयः विश्वविद्यालयो वा नासीत्; एषा मूलतः शिक्षाकेन्द्रमेव आसीत्। अत्र बहवः ख्यातनामाः आचार्याः न्यवसन्, येषां समीपे उत्तरभारतात् विविधप्रदेशेभ्यः शतशः छात्राः उच्चशिक्षार्थं समायान्ति स्म। किन्तु एते आचार्याः आधुनिकमहाविद्यालयीयाध्यापकवत् कस्यचित् संघटितसंस्थायाः सदस्याः नासन्, न च ते कस्यचित् केन्द्रीयसंस्थया निर्दिष्टं पाठ्यक्रममन्वपालयन्।

प्रत्येकम् आचार्यः स्वीयप्रधानशिष्याणां साहाय्येन स्वयमेवैकः शिक्षासंस्थारूपेण व्यवस्थितोऽभूत्। स इच्छानुसारं छात्रान् स्वीकुर्यात्, तेषां च अभिरुच्यनुसारं पाठयेत्। छात्राः अपि यथासौविध्यं शिक्षाक्रमं समाप्तवन्तः। न काचित् उपाधिपरीक्षा आसीत्; अतः उपाधि-प्रमाणपत्रदानस्यापि प्रचलनं नासीत्।

तक्षशीलायाः ख्यातिः :—

ख्रिष्टपूर्वषष्ठशताब्द्यां तक्षशीलायाः ख्यातिः अतुलनीया आसीत्। तस्मिन् काले सञ्चारव्यवस्था अतीव दुर्गमा आसीत्; तथापि वाराणसी-राजगृह-मिथिला-उज्जयिन्यादिभ्यः दूरस्थेभ्यः नगरेभ्यः अपि असंख्यकाः छात्राः अत्र समागच्छन्ति स्म। कुरु-कोशलदेशाभ्यां च नियमितरूपेण छात्राः प्रेष्यन्ते स्म। तत्र धनुर्विद्याकेन्द्रे भारतस्य विभिन्नप्रदेशेभ्यः आगताः १०३ राजपुत्राः नामनिर्दिष्टाः आसन् इति कथ्यते। जातककथासु वाराणस्याः युवराजाः अपि तत्र शिक्षां प्राप्नुवन्। बुद्धस्य समकालीनः कोशलराजः प्रसेनजित् अपि गान्धारराजधानीं गत्वा अध्ययनं कृतवान्। बिम्बिसारस्य पुत्रः जीवकः सप्तवर्षपर्यन्तं तत्र स्थित्वा चिकित्साशास्त्रं शल्यचिकित्सां च अधीतवान्। व्याकरणाचार्यः पाणिनिः अपि अत्र अधीतवान् इति अनुमीयत्। तथैव अर्थशास्त्रकर्त्ता कौटिल्यः अपि तत्र शिक्षालाभेन सम्बद्धः आसीत् इति अभिमन्यते।

सम्भवतः गुरुकुलम्, अरण्यविश्वविद्यालयः, इष्टक-पाषाणनिर्मितविश्वविद्यालयः—एते त्रिविधाः शिक्षाव्यवस्थाः एकत्र विद्यमानाः आसन्। श्वेतकेतोरुदाहरणं प्रसिद्धम्—स तत्र शिल्पकलायां शिक्षां प्राप्य, अनन्तरं व्यावहारिकज्ञानार्थं देशं परिभ्रम्य, पञ्चशतऋषिसमूहस्थितेषु आश्रमेषु बहुविधानि शास्त्राणि अधीतवान्। परम्परानुसारं महाभारतं प्रथमं तत्रैव व्यासशिष्येण वैशम्पायनेन आवृत्तम्। बौद्धजातकग्रन्थेषु तक्षशीला महान् शिक्षाकेन्द्ररूपेण वर्ण्यते। चीनीयपरिव्राजकः फाहियान् ४०५ ख्रिष्टाब्दे अस्य उल्लेखं कृतवान्। ह्वेनसाङ् नामकः अपरः भिक्षुः ६३०–६४३ ख्रिष्टाब्दयोः अत्रागतः। किन्तु ४५५ ख्रिष्टाब्दे हूणानां आक्रमणकारणात् एषा नगरी विनष्टा, तेन तस्य आगमनसमये सा प्रायः भग्नावशेषरूपेण आसीत्।

विश्वविद्यालयपाठ्यविषयाः :—

उक्तविवरणात् ज्ञायते यत् तक्षशिलायां मुख्यतया उच्चशिक्षा प्रदत्ता आसीत्। छात्राः विशेषज्ञानलाभाय अत्र आगच्छन्ति स्म। जीवकः चिकित्साशास्त्रं शल्यचिकित्सां च अध्ययनाय अत्रागतः, वाराणस्याः युवानः धनुर्विद्यां गजविद्यां च अधीयते स्म।

अत्र त्रयो वेदाः, व्याकरणम्, दर्शनम्, अष्टादश-शिल्पानि च मुख्याः विषयत्वेन आसन्। अष्टादशशिल्पेषु चिकित्सा, शल्यचिकित्सा, धनुर्विद्या, सैन्यकौशलम्, ज्योतिषम्, खगोलविज्ञानम्, भविष्यवाणी, गणितलेखनम्, वाणिज्यम्, कृषिः, सम्पत्तिसंक्रान्तिविद्या, मायाविद्या, सर्पमोहनविद्या, निधिशोधनकौशलम्, संगीतं, नृत्यम्, चित्रकला च अन्तर्भूतानि आसन् । पाठ्यविषयनिर्वचने जातिविशेषनिषेधः नासीत्। क्षत्रियाः ब्राह्मणैः सह वेदान् अध्येति स्म, ब्राह्मणाश्च क्षत्रियैः सह धनुर्विद्यायां प्रावीण्यमलभन्त।

तक्षशीला विश्वसंस्कृतेः संस्कृतभाषायाश्च विकासे महत्त्वपूर्णं योगदानं दत्तवती। आचार्यः चाणक्यः (कौटिल्यः) अनेन सह सम्बद्धः आसीत्; तस्य प्रसिद्धः। आयुर्वेदस्य महत्त्वपूर्णाचार्यः चरकः अप्यत्र अधीतवान्, अनन्तरं अध्यापनं च कृतवान्। पालिग्रन्थेषु प्रसिद्धः वैद्यः जीवकः अपि अत्र शिक्षां प्राप। निःसंशयं तक्षशीला-अयं महान् शिक्षाकेन्द्रः असंख्यविशिष्टविद्वत्पुरुषाणां जननभूमिः अभवत्। शिक्षासमाप्तौ उपाधिदानावसरः अपि हर्षजनकः सन्मानप्रदश्च आसीत् इत्यत्र तैत्तिरीयोपनिषोक्तं शिक्षावल्लीमन्त्रम् अवश्यपाठ्यत्वेन उद्घोष्यमासीत्-

"वेदमनूच्याचार्यो ऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं बद। धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्"॥[3]

नालन्दा-विश्वविद्यालयः

प्रारम्भिकइतिहासः :—

पाटलिपुत्रात् प्रायः पञ्चपञ्चाशन्मैलपरिमितं दक्षिणपूर्वदिशि स्थितं नालन्दा प्राचीनकालादेव प्रसिद्धबौद्धतीर्थरूपेण सुविदिता आसीत्; यतः सा बुद्धस्य प्रमुखशिष्यस्य शारिपुत्रस्य जन्ममरणस्थानं बभूव। सम्राट् अशोकः अत्र एकं मन्दिरं निर्मितवान् इति श्रूयते। किन्तु शिक्षाकेन्द्ररूपेण नालन्दायाः अभ्युदयः अनुमानतः ख्रिष्टाब्दे चतुर्थपञ्चमशताब्द्योः संधिकाले (आनुमानिकं ४५० तमे वर्षे) प्रतिष्ठितः; यतः ४१० ख्रिष्टाब्दे अत्रागतः चीनीयपरिव्राजकः फाहियान् स्ववर्णने अस्याः शैक्षिकमहत्त्वस्य किञ्चित् अपि उल्लेखं न व्यदधत्।

अनन्तरं शीघ्रमेव नालन्दा गुप्तसम्राजां संरक्षणेन महनीयशिक्षाकेन्द्ररूपेण परिणता। यद्यपि गुप्तराजानः स्वभावतः हिन्दुधर्मानुयायिनः आसन्, तथापि ते बौद्धानां कृते अस्य महाविहारस्य विकासे, अलङ्कारे, अनुदाने च मुख्यां भूमिकां निर्वहन्तः व्यराजन्त, यत् तस्य युगस्य धार्मिकसहिष्णुतायाः उज्ज्वलं प्रमाणम्। शक्रीयादित्यः (सम्भवतः कुमारगुप्तः प्रथमः, ४१४–४५५ ख्रिष्टाब्दः) अत्र एकं विहारं स्थाप्य, अनुदानं दत्वा, अस्याः गौरवस्य आधारं स्थापितवान्। तस्मिन् विहारे स्थितं सुन्दरं बुद्धमन्दिरं बहूनि शतानि वर्षाणि उपासनाकेन्द्ररूपेण व्यवहृतम्। तथागतगुप्तः (यस्य परिचयः निश्चितः नास्ति), नरसिंहगुप्तः बालादित्यः (४६८–४७२ ख्रिष्टाब्दः), बुद्धगुप्तः (आनुमानिकं ४७५–५०० ख्रिष्टाब्दः) च प्रत्येकः अस्मिन् संस्थाने एकं विहारं समन्वितवन्तः। बालादित्यस्य एकः अज्ञातोत्तराधिकारी वज्रः, तथा मध्यभारतस्य अपरः कश्चन राजा अपि विहारन्तरं विनिर्ममे। एकादशशताब्दिपर्यन्तं हिन्दुबौद्धदानकर्तृभिः नित्यं नूतननिर्माणकार्याणि प्राचलन्।

नालन्दायाः ख्यातिः :—

प्राचीनमगधराज्ये स्थितायाः नालन्दायाः विश्वविद्यालयस्य विषये विस्तृतं वर्णनं सप्तमशताब्दीययोः चीनीयपरिव्राजकयोः—ह्वेनसाङ् (Xuanzang) इत्यत्रभवतः, इ-चिङ् (Yijing) इत्यत्रभवतश्च ग्रन्थेषु लभ्यते। अत्र ख्यातनामाचार्याणां समीपे शिक्षालाभाय दूरदूरान्तेभ्यः छात्राः आगच्छन्ति स्म; तिब्बत-चीन-कोरिया-मध्य-एशियादिभ्यः अपि बहवः विद्यार्थिनः आगच्छन्। प्रतिदिनं प्रायः शताधिकाः उपन्यासाः (व्याख्यानानि) आयोजितानि भवन्ति स्म, इ-चिङस्य वर्णनानुसारं छात्राः तेषां किञ्चिदपि कालं व्यर्थयितुं नैच्छन्। अत्र प्रवेशः सुलभो नासीत्, यथा प्राचीनकाले महानाचार्यस्य शिष्यत्वलाभः कठिनः आसीत्। ह्वेनसाङस्य विवरणानुसारं अत्र अत्यन्तकठिनः प्रवेशपरीक्षा आयोजिता, यस्यां केवलं विंशतिप्रतिशतपर्यन्ताः एव छात्राः सफलाः अभवन्। विदेशीयानां कृते परीक्षा अधिककठिना आसीत्, यदि ते प्राचीननवीनज्ञानयोः सम्यग्निपुणाः न स्युः, तथापि अत्र प्रायः ८५०० छात्राः, १५०० शिक्षकाः च आसन्। प्रवेशकाले छात्राणां वयः प्रायः विंशतिवर्षपरिमितम् आसीत्।

परिकल्पना तथा स्थापत्यं :—

उत्खननकार्येण ज्ञायते यत् नालन्दा विश्वविद्यालयः प्रायः एकमैलदीर्घः अर्धमैलविस्तीर्णः च आसीत्। विहाराः तेषां सम्बद्धाः स्तूपाश्च पूर्वनियोजितयोजनया निर्मिताः आसन्; न तु अनियमितरूपेण, किन्तु सुव्यवस्थितश्रेण्यां विन्यस्ताः। केन्द्रीयमहाविद्यालयेन सह सप्त महती सभागृहाणि सम्बद्धानि आसन्; अतिरिक्तं च अध्यापनार्थं त्रिशताधिकाः लघुकक्षाः आसन्। एतानि भवनानि अतीव मनोहराणि बहुस्तरीयानि च आसन्। अन्यस्मिन् समकालीनविवरणे अपि उक्तं यत् नालन्दायाः प्रासादाः मेघस्पर्शिनः आसन्। अतः तेषां शिखर-मीनाराः अत्युच्चाः दृश्यसुन्दराश्च आसन् इति विज्ञायते। अत्र गम्भीराः निर्मलाः जलाशयाः अपि आसन्, ये नीलपद्मैः आच्छादिताः आसन्; ते एकतः सौन्दर्यं सम्वर्धयन्तः अपरतः जलोपयोगं पूजोपचाराञ्च प्रापूरयन्। सम्पूर्णः परिसरः प्राचीरया परिवेष्टितः आसीत्, दक्षिणदिशि प्रवेशद्वारं च आसीत्।

विहारविश्वविद्यालययोः समन्वयः :—

नालन्दा केवलं विहारः नासीत्; अपि तु एकं महत् शिक्षाकेन्द्रं यत् विश्वव्यापिनीं ख्यातिं प्राप। ह्वेनसाङ् लिखति—"अत्र सहस्रशः भिक्षवः निवसन्ति स्म; ते सर्वे महान् पाण्डित्यसम्पन्नाः आसन्, तेषु कतिपये विशेषतया विख्याताः आसन्। ते संघनियमान् कठोरतया अन्वपालयन्; अध्ययनचर्चापुरसरं तेषां दिनानि न्यूनान्येव प्रत्यभान्त। ते दिवा रात्रौ च परस्परं उपदिशन्ति स्म; कनिष्ठाः ज्येष्ठैः सह, ज्येष्ठाश्च कनिष्ठैः सह, परस्परं पूर्णतां प्रति सहायं कुर्वन्ति स्म। अत एव विदेशीयाः छात्राः स्वसंशयनिवारणाय अत्र आगच्छन्ति स्म, अनन्तरं ख्यातिं प्राप्नुवन्ति स्म। 'नालन्दा'-नामधारिणः सर्वत्र सम्मानं लभन्ते स्म। ये

गम्भीरपण्डिताः, कुशलतार्किकाश्च अत्र प्रसिद्धिं प्राप्नुवन्ति स्म, तेषां नामानि विश्वविद्यालयस्य प्रवेशद्वारे शुभ्राक्षरैः व्यलिख्यन्त, यथा आगन्तुकाः तेषां विषये ज्ञातुं शक्नुयुः।

विश्वविद्यालयपाठ्यक्रमः :—

नालन्दायाः पाठ्यक्रमः अत्यन्तविस्तीर्णः उदारश्च आसीत्। यद्यपि एषा संस्था महायानबौद्धधर्मसम्बद्धा आसीत्, तथापि हीनयानसम्प्रदायस्य ग्रन्थाः अपि अत्र अध्याप्यन्ते स्म; अतः पालिभाषाया अध्ययनम् आवश्यकम् आसीत्। नागार्जुन-वसुबन्धु-असङ्ग-धर्मकीर्त्यादीनां महायानाचार्याणां ग्रन्थाः विशेषतया अध्येतव्याः आसन्। तथापि नालन्दायाः पाठ्यक्रमः न कस्यचित् संकीर्णसम्प्रदायसीम्ना बद्धः आसीत्; अत्र हिन्दुशास्त्राणि अपि समुचितमहत्त्वेन अध्याप्यन्ते स्म। व्याकरणम्, तर्कशास्त्रम्, साहित्यं, दर्शनं गणितं चेत्यादिविषयाः बौद्धहिन्दुधारयोः समन्वितत्वेन महत्त्वपूर्णाः आसन्। बौद्धहिन्दुधर्मयोः परस्परसंबन्धः अपि अतिप्रगाढः आसीत्, यतः एकस्य अध्ययनं विना अन्यस्य बोधः कठिनतरोऽभूत्। विश्वविद्यालयस्य पाठ्यक्रमः आधुनिककालिकायाः आन्तःविभागीयशिक्षायाः पूर्वसूरी आसीत्। प्राचीनभारतीयपरम्परानुसारं तात्विकं व्यवहारिकञ्च ज्ञानं विशिष्टतां भजत इतीशोपनिषदि आम्नातम्-

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते"॥[4]

बौद्धसूत्रेषु उल्लिखितं यदत्र वेददर्शनादिग्रन्थैः सह विविधशास्त्रमध्याप्यते स्म। अस्मिन् 'विविधशास्त्रे' धर्मशास्त्र-पुराण-ज्योतिष-खगोलविज्ञानादयः विषयाः अन्तर्भवन्ति इत्यभिगण्यन्ते, ये गार्हस्थविद्यार्थिनां कृते अपि उपयुक्ताः आसन्। तदन्यत् चिकित्साशास्त्रस्य अध्ययनमप्यत्र प्रावर्तत, यस्य उल्लेखः बौद्धग्रन्थेषु दरीदृश्यते।

विक्रमशीला-विश्वविद्यालयः

प्रारम्भिकः इतिहासः :

अष्टमशताब्द्यां धर्मपालनाम्ना राज्ञा स्थापितः विक्रमशीला-महाविहारः चतुर्षु शतकेषु अधिककालपर्यन्तं अन्तर्राष्ट्रीयशिक्षाकेन्द्ररूपेण प्रसिद्ध आसीत्। अस्याः संस्थायाः संस्थापकः धर्मपालः (आनुमानिकं ७७५–८०० ख्रिष्टाब्दः) अत्र मन्दिराणि विहारांश्च निर्माय, तेषां कृते औदार्येण वित्तसाहाय्यं चकार। अध्यापनार्थं स बहूनि सभागृहाणि अपि विनिर्ममे। तस्य उत्तराधिकारिणः अपि त्रयोदशशताब्दिपर्यन्तं अस्य विश्वविद्यालयस्य संरक्षणं व्यदधन्।

अस्याः संस्थायाः भिक्षवः सामान्यतया विशिष्टपण्डिताः आसन्, अल्पेनैव कालेन अस्य महाविहारस्य ख्यातिः हिमालयस्य पारं पर्यन्तं विस्तृता। प्रायः चतुःशतवर्षपर्यन्तं तिब्बतदेशेन सह अस्य घनिष्ठसम्बन्धः अवस्थितः आसीत्। तिब्बतीविद्यार्थिनां कृते, ये भारतं समागत्य अध्ययनं कुर्वन्ति स्म, अत्र विशेष-अतिथिगृहस्य व्यवस्था आसीत्। विक्रमशीलायां दीर्घकालव्यापिनी या उच्चस्तरीया विद्वत्परम्परा अविच्छिन्ना अभूत्, सा नूनं प्रशंसार्हा वरीवर्ति।

तिब्बतीप्रमाणेषु ज्ञायते यत् बुद्ध-ज्ञानपाद-वैरोचन-रक्षित-जेतारि-रत्नाकरशान्ति-ज्ञानश्रीमित्र-रत्नवज्र-अभयङ्करगुप्त-तथागत-रक्षितादयः अनेके पण्डिताः संस्कृतभाषायां बहून् ग्रन्थान् रचितवन्तः, तेषां बहवः तिब्बतीभाषायामपि अनूद्यन्ते। एतेषां सर्वाधिकप्रसिद्धः दीपङ्करश्रीज्ञानः (उपाध्यायः अतीशः इति ख्यातः) आसीत्, यः एकादशशताब्द्यां महान् आचार्योऽभवत्। स तिब्बतदेशस्य राज्ञः चान्-चुबस्य आमन्त्रणेन तत्र गतवान्, तत्र बौद्धधर्मस्य पुनर्संस्कारे महत्त्वपूर्णां भूमिकां निर्वहन्। तिब्बतीपरम्परानुसारं, तस्य कृतिषु मौलिक-अनूदितग्रन्थयोः संख्याया द्विशतपर्यन्ता इत्यभिमन्यते।

विश्वविद्यालयस्य बलं परिमाणं च :—

यदा विक्रमशीलायां एतादृशः विशिष्टपण्डितसमूहः समागतः, तदा स्वाभाविकतया विद्वत्सङ्ख्यावृद्ध्या अस्य संस्थायाः परिमाणं प्रभावश्च अत्यन्तं व्यवर्धयताम्। द्वादशशताब्द्यां अस्मिन् महाविहारे प्रायः त्रिसहस्रसंख्यकाः भिक्षुपण्डिताः न्यवसन्। अस्याः संस्थायाः समृद्धः विस्तीर्णश्च ग्रन्थागारोऽपि आसीत्, यस्य ऐश्वर्यं विस्तारं च दृष्ट्वा परवर्ती मुस्लिमविजेतारः अपि व्यस्मापयन्।

शिक्षाप्रशासनम् :—

विक्रमशीलायाः शिक्षाप्रशासनं षड्भिः द्वारपण्डितैः युक्तायां परिषदि निहितमासीत्, यस्य प्रमुखः महाविहारस्याध्यक्षः आचार्यः वा आसीत्। एतेषां द्वारपण्डितानां मुख्यं कर्तव्यं संस्थायां प्रवेशेच्छूनां छात्राणां विद्वत्तापरीक्षणमासीत्। राज्ञः कनकस्य काले एते द्वारपण्डिताः आसन् --

- पूर्वद्वारः — आचार्यः रत्नाकरशान्तिः
- पश्चिमद्वारः — वाराणस्याः बागीश्वरकीर्तिः
- उत्तरद्वारः — नारोपः
- दक्षिणद्वारः — प्रज्ञाकरमतिः
- प्रथमकेन्द्रीयद्वारः — कश्मीरदेशीयः रत्नवज्रः
- द्वितीयकेन्द्रीयद्वारः — गौडदेशीयः ज्ञानश्रीमित्रः

विश्वविद्यालयपाठ्यक्रमः उपाधिश्च :—

अस्मिन् संस्थाने मुख्यतया व्याकरणम्, तर्कशास्त्रम्, अधिविद्या (मेटाफिजिक्स), तन्त्रशास्त्रम्, आचारविषयाश्च अध्याप्यन्ते स्म। अतः नालन्दायाः अपेक्षया अत्र पाठ्यक्रमः नातिविस्तीर्णः उदारश्च वरीवर्ति। दौर्भाग्येन विक्रमशीलायां शिक्षाकालस्य स्तरविभागस्य वा विषये स्पष्टा सूचना न लभ्यते; तथापि अनुमीयते यत् एषा संस्था प्राचीनभारतीयशिक्षाकेन्द्रेषु अपेक्षया अधिकं सुसंरचिता आसीत्। यतः अन्यसंस्थाभ्यः भिन्नरूपेण अत्र शिक्षासमाप्तौ छात्रेभ्यः विद्योपाधिप्रदानकार्यक्रमः आनुष्ठीयत, उपाधयश्च तदानीन्तनदेशीयराज्ञां करकमलैः प्रादीयन्त।

प्रकृतशिक्षालाभेन मनुष्यः विनयी योग्यतमश्च भवितुं शक्यत। भारतीयशिक्षापद्धत्यां ज्ञानं न केवलं तथ्यपरकम्, सच्चरित्रनिर्माणसाधनत्वेनापि विवेच्यते, यद्धि आधुनिकशिक्षायामपि गुरुत्वं भजते इति हितोपदेशे निर्दिष्टम् –

"विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्धर्मंस्ततः सुखम्"॥[5]

आधुनिक-अन्तरराष्ट्रीय-शिक्षाव्यवस्थायां प्राचीन-विश्वविद्यालयानां पाठचर्यायाः प्रासङ्गिकता

प्राचीनभारतीयशिक्षापद्धतेः सूक्ष्मतया अवलोकने स्पष्टीयते यत् अद्यतनवैश्विकशिक्षाव्यवस्थायाः बहवः मूलभूताः सिद्धान्ताः तस्मिन्नेव अतीते बीजरूपेण न्यधीयत। नालन्दा-तक्षशीला-विक्रमशीला-इत्येतेषां प्राङ्गणेषु या ज्ञानसाधना प्रावहत्, सा देशीयसीमनमतिक्रम्य निरन्तरं विश्वसंवादस्य प्रवाहिनीव राजमाना आसीत्। अद्य यदा विश्वविद्यालयाः स्वस्य अन्तर्राष्ट्रीयप्रतिष्ठां स्थापयितुम् इच्छन्तः दूरदेशीयविद्यार्थिनः आह्वयन्ति, तदा तस्याः घोषणायाः प्रतिध्वनिः शताब्दिशतपूर्वमेव एतेषु प्राचीनशिक्षाकेन्द्रेषु अश्रूयत इति अनुभूयते। अनेकविध-भाषा-संस्कृति-विश्वासयुक्ताः जनाः यत्र समागम्य ज्ञानसंवादं निर्मितवन्तः, स एव आधुनिक-अन्तरराष्ट्रीयीकरणस्य प्राचीनप्रतिबिम्ब इव दृश्यतेतमाम्।

एवमेव, अद्यतनकाले यः ज्ञानस्य पृथग्भूतद्वीपान् संयोजयितुं प्रयत्नः दृश्यते—विज्ञान-मानविकी-समाजविज्ञानानां परस्परसंबन्धस्थापनरूपेण—तस्य मूलम् अपि प्राचीनशिक्षायामेव अनुसन्धेयम्। तत्र ज्ञानमखण्डतया अनुभूतम्। दर्शनस्य सह तर्कः, तर्कस्य सह विज्ञानम्, विज्ञानस्य सह सौन्दर्यबोधः—एषः अविच्छिन्नः सम्बन्धः छात्राणां चिन्तनप्रक्रियां वहुमुखिनीमकरोत्। अद्यत्वे यत् आन्तर्विषयिशिक्षाया व्यापकप्रचारः दृश्यते, स एव प्राचीनसमन्वयस्य नूतनभाष्यमिव प्रतीयते। अन्यतः, ज्ञानसाधनायां परस्परसहकार्यस्य विनिमयस्य च यन्महत्त्वम् इदानीन्तनविश्वे अनिवार्यतां भजते, तस्यापि स्पष्टदिग्दर्शनं प्राचीनभारतीयशिक्षायां संलभ्यते। एकस्मात् संस्थानात् अन्यान् प्रति पण्डितानां गमनागमनम्, ग्रन्थतत्त्वानां आदानप्रदानम्, मुक्तसंवादेन सत्यस्य अन्वेषणम्—एते सर्वे संमिल्य अदृश्यज्ञानजालं निर्मितवन्तः। अद्यतन-अन्तरराष्ट्रीय-अनुसन्धानसहयोगाः, संयुक्तपरियोजनाः, शैक्षिकसंवादाश्च तस्यैव प्राचीनपरम्परायाः आधुनिकपरिवर्तनरूपाणि इव दृश्यन्ते।

अन्ते, शिक्षायाः अन्तर्निहितो यः परममुद्देश्यम् "मानवस्य मानवत्वस्य विकासः"—स प्राचीनभारतीयशिक्षादर्शे सर्वोच्चस्तरे व्यराजत। तत्र ज्ञानं न केवलं व्यावसायिकदक्षतायाः साधनमपि तु नैतिकता संयमः सहानुभूतिः आध्यात्मिकविकासश्च तज्ज्ञानसहचराः बभूवुः। गुरु-शिष्यसम्बन्धस्य सघनबन्धने छात्राणां चरित्र-चेतना-चिन्तनानां समग्रविकासः साधितः। अद्य यदा विश्वं पुनः शिक्षायाः मानवीयनैतिकाधारस्य पुनर्स्थापनाय प्रयतते, तदा एषः

प्राचीनशिक्षादर्शः नूतनप्रभया प्रकाशते। यथार्थशिक्षा न केवलं मस्तिष्कं विकाशायति, तत्सहकृतेन आत्मानं हृदयञ्चालोकयति।

“तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।
आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ”॥[6]

इति विष्णुपुराणोक्तदिशा विश्वजनीना सुशिक्षा केवलं कर्मसाफल्यमतिरिच्य मनुष्याणां मानसिकीम् आध्यात्मिकीं मुक्तिञ्च सम्भावयतीति शम्।

सन्दर्भाः-

1. श्रीमद्भगवद्गीता- ४.३८
2. महोपनिषद्- ६/७२
3. तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली, अनुवाक ११
4. ईशोपनिषद् -१३
5. हितोपदेशप्रस्ताविका
6. विष्णुपुराणम्- १/१९/४१

सहायकग्रन्थानुक्रमणिका-

1. Altekar, A. S. *Education in Ancient India*. Nand Kishore & Bros., 1944.
2. Basham, A. L. *The Wonder That Was India*. Rupa Publications, 2004.
3. Datta, Bimal Chandra. *Ancient Universities of India*. Motilal Banarsidass, 1962.
4. Mukherjee, Radha Kumud. *Ancient Indian Education: Brahmanical and Buddhist*. Motilal Banarsidass, 1989.
5. Singh, Sahana. *The Educational Heritage of Ancient India:* Notion Press, 2017.
6. द्विवेदी, शिवप्रसाद। *श्रीविष्णुपुराणम्*। चौखम्भासुरभारतीप्रकाशनम्, २०२४।
7. गम्भीरानन्द, स्वामी। *उपनिषद्-ग्रन्थावली* (खण्ड–२)। उद्बोधनकार्यालयः, १३८० (बंगाब्द)
8. शास्त्री, केशवलाल। *श्रीमद्भगवद्गीता:* चौखम्भासुरभारती प्रकाशनम्, २०१७।
9. शास्त्री, बालः।*हितोपदेशः:* चौखम्भासुरभारती प्रकाशनम्, २०१२।

शास्त्री, राकेशः। *तैत्तिरीयोपनिषद्:* चौखम्भा ओरियेण्टाला, २०२४।

Received: 21.01.2026 | Accepted: 03.02.2026 | Published: 28.02.2026

Holistic Educational Tradition in Ancient India and its Reflections in the Temple Architecture of Bengal

DR. ARIJIT GUPTA*
arijitgupta89@gmail.com

Abstract

This paper examines the ancient Indian educational tradition that was holistic and the aesthetic and symbolic expression of this tradition in Bengal temple architecture. Based on the Gurukula system, and informed by the integration of body, mind and spirit, ancient Indian education was more experiential, value based, and life centered. The architectural manifestation of philosophical synthesis of knowledge and spirituality is the temples of Bengal with terracotta art and spatial symbolism. These temples were pedagogical sites, through which visual discourses taught ethical, cultural and metaphysical knowledge to a mostly illiterate society. The paper also discusses the evolution of temple architecture, particularly in Bishnupur, its environmental suitability, material creativity as well as its socio-religious importance. This paper highlights the interdisciplinary applicability of architecture by seeing it as an epistemic and pedagogical framework. An analysis is lost by putting this aboriginal model in the context of the modern discourse that it is still relevant to integrative, sustainable, and human-centered models of education.

Keywords

Holistic Education; Gurukula Pedagogy; Temple Architecture; Bengal Terracotta; Visual Pedagogy; Knowledge and Spirituality; Holistic Education.

The Gurukula system, incorporated in the larger context of ancient Indian knowledge traditions, is paradigmatic manifestations of whole-body education. In these regards, education was not viewed as the simple accumulation of knowledge, but as a dynamic process directed at the whole-person development. This tradition was guided by the philosophical ideal of the unity of body, mind and soul and aimed at the harmonizing of intellectual cultivation with moral discipline, spiritual awareness and practical competence. Learning was therefore life-centered, experience based and value based. In the mantra from the *Guru Gītā from Skandapurāṇa*, the Guru is exalted as being equivalent to the supreme creative power of the cosmos. Such a conception of the teacher's

* **Assistant Professor & Head, Department of Sanskrit,**

Dwijendralal College, Krishnanagar, Nadia, West Bengal

elevated status in ancient centres of learning contributed significantly to the preservation of academic excellence and the maintenance of institutional discipline-

"gurur brahmā gurur viṣṇuḥ gurur devo maheśvaraḥ I
guruḥ sākṣāt paraṃ brahma tasmai śrī-gurave namaḥ"II[1]

The main characteristics of holistic education in the thought of ancient India are:

- The oneness of the body, mind and soul.
- Integration of art, ethics, and life.
- Experiential, symbolic, and environmental learning.

In this tradition, the Gurukula functioned as a participatory space where learning emerged through lived experience, close teacher-disciple bonds, and engagement with nature and society. Education integrated intellectual, moral, and spiritual growth, reflected in Bengal's temple architecture, symbolizing a holistic epistemic paradigm of experiential and interdisciplinary human development.

In the international centers of learning, knowledge itself transcended the boundaries of religion, society, and culture, and attained a position of the highest eminence. Students arriving from diverse regions of the world gathered in a common intellectual space and partook of the illumination of knowledge. As declared in the *Śrīmad Bhagavad Gītā*, extolling the greatness of knowledge:

"na hi jṇānena sadṛšam pavitramiha vidyateII[2]

- **The Knowledge and Spirituality Integration in Indian Educational Philosophy:**

Ancient Indian education was fundamentally characterized by the inseparable integration of knowledge and spirituality. Grounded in the Upaniṣadic dictum—***"yathā piṇḍe tathā brahmāṇḍe"*** (as is the microcosm, so is the macrocosm) and stated a profound oneness of the individual and the universe. Education was hence not confined to gaining worldly knowledge but it was geared towards the achievement of ātma-jnanam (self-knowledge) and brahma-jnanam (knowledge of the Absolute). It fostered intellectual growth and moral restraint, self-control, and spiritual consciousness through the harmonśious synthesis of para (higher) and aparara (lower) knowledge and therefore education was a process of inner cleansing, and character building. According to the ancient Indian tradition, both theoretical (philosophical) and practical knowledge are accorded distinctive importance. This is affirmed in the *Īśopaniṣad*:

"avidyayã mṛtyum tīrtwã vidyãmṛtamaśnute"II[3]

"He who knows both knowledge (*vidyā*) and non-knowledge (*avidyā*) together—by non-knowledge crosses over death, and by knowledge attains immortality."

- **The Multidimensional Ancient Indian Education:**

The intellectual education involved study of Vedas, Upaniṣads, philosophy and grammar which developed reflective and analytical minds. Moral education focused on dharma, moral values

and social responsibility. Vocational competence and self-sufficiency was guaranteed by practical disciplines like agriculture, medicine and architecture. Also, such arts as music, dance and sculpture taught creativity and taste. This integrative system allowed the balanced and holistic development of the individual. Through the attainment of true education, a human being becomes both humble and eminently capable. In the Indian system of education, knowledge is not regarded merely as factual or informational; rather, it is also conceived as a means for the cultivation of noble character—a principle that continues to hold significance even in modern educational thought. As stated in the *Hitopadeśa*-

vidyā dadāti vinayaṃ vinayād yāti pātratām।
pātratvād dhanam āpnoti dhanād dharmaṃ tataḥ sukham॥[4]

- **The Emergence and Institutionalization of Holistic Education**

Gradually these ideals of education developed into institutional types, such as the famous centers of Takṣaśilā and Nalanda, and institutions of the temple type in South India. These students who were attracted were all over Asia, as far as China, Korea and further. The journeys of both Faxian and Xuanzang give a good idea of the academic and spiritual richness of these schools, and the worldwide impact and legacy of ancient Indian education. In this manner, Indian philosophy, language, science, and the arts attained an international recognition and presence. The idea of global interconnectedness was thus intrinsic to the knowledge culture of ancient India, as expressed in the celebrated maxim:

"udãracaritãnãm tu vasudhaiva kuṭumbakam"।[5]

- **Education as a Divine and Important responsibility:**

Learning in Indian tradition of education was considered a holy and solemn task. The ceremony of Vidyārambha or Akšarabhyas was an important one, which children first experienced, and through which they were initiated into the world of letters. The ancient Indians had a strong interest in the quest of knowledge as a source of cognitions of the material and moral, physical and spiritual, transient and eternal aspects of existence. This exploration brought about significant contributions to science, mathematics, and applied medicine. The sacredness of education is demonstrated in many Sanskrit injunctions, like the famous proverb of the Taittiriya Upanishad: ***Mātṛdevo bhava, Pitṛdevo bhava, ācaryadevo bhava, atithidevo bhava***[6]--venerate the mother, the father, the teacher, the guest.

In India, the rite of entry into the world of letters of both sexes was historically rite of passage, and the rites are still practiced today in regions like *Haktekhor*i in Bengal during a Sarasvatii on Bengali side and in South India in rituals like Vidyãrambham. The Upanayana was a ceremony that was performed between the ages of eight and twelve and marked the official start of education. There was no commodification of knowledge; the only gurudaksiṇa teachers accepted was symbolic indeed.

- **The Temple Architecture of Bengal Manifestation of Educational Philosophy:**

The geographical environment, particularly the alluvial plains of the Ganga-Brahmaputra basin, river life and the scarcity of natural resources, formed a unique temple architecture in Bengal. The lack of stone contributed to the large use of brick and terracotta, which were available and environmentally friendly. In addition to functional need, these media gave the temples a kind of aesthetic vitality as elaborate terracotta decoration made their surfaces come alive and defined the architectural idiom of Bengal. This architecture was further enhanced with variety and richness due to the long-standing blend of Aryan, Dravidian, Pāla-Sena, Islamic and folk traditions. The traditional styles including *chalala, dochãla, chauchãla* and *ratna* were based on vernacular hut roofs and they reflected the way of life of the locals and the temples were turned into cultural records with stratified identities. These buildings were themselves a kind of pedagogical space: the terracotta panels of Puranic stories, scenes of the epics, life, trades and festivals were read as visual texts where the illiterate could find ethical, religious and social information. In this way the school became a free school, philosophy, history and aesthetics were perceived by experience.

- **The Architecture of Bengal Temples (Bishnupur in particular) through historical Development:**

The Bengal saw the period between the sixteenth and nineteenth centuries of the great tradition of terracotta temples, especially when the Malla rulers of Bishnupur patronized the practice. Being affected by the Gaudiya Vaishnavism and backed by the local elites, the temple-building grew throughout the area. The lack of good stone stimulated the perfecting of terracotta as the main material, valued due to the durability and its ability to be worked into some delicate craft. Panels on temple fronts depicted episodes of Rama-yana and Maha-bharata, Krishna-lilaa, social life at that time, hunting, battles and even European personalities- making them invaluable accounts of cultural history. In architecture there was the adaptation of curved-roof chalah form to the monsoon climate of Bengal; the ratna style with its many pinnacles representing the grandeur of kingship and deities; and the jor-banglah style, which ingeniously joined twin hut constructions into a religious building. These types are the brightest examples of an in-depth conversation between the environment, material and cultural imagination, so the terracotta temples of Bishnupur serve as the lasting symbols of artistic excellence of Bengal and its religious and spiritual heritage.

- **Architecture as a Pedagogical Medium: The Symbolism of Space and the Cosmological Education:**

Architecture in the Indian tradition goes beyond aesthetic expression to serve as a deep pedagogical tool, which embodies cosmological ideals in the spatial organization and symbolism. This is best seen in temple architecture, where form, ratio and alignment indicate a greater cosmic pattern. Layouts are material expressions of the principles of *ṛta* (cosmic harmony) and *dharma* (moral law), in the form of a conceived sacred diagram of the universe. In the middle is the *garbhagṛha* (womb-chamber), the original origin of creation, similar to the Hiraṇyagarbha. The darkness and closed nature of the space help to create a feeling of mystery of origin and the discipline of inward contemplation. It is considered the spiritual center, the dwelling of the deity and

a center of focused sacred power. The architectural development of the highly decorated exterior, symbolizing the diversity of the worldly life, to the silent interior, makes a symbolic process of inward change. This movement is a response to the UpaniṢadic statement yatha prinde tatha brahmandre, the oneness of the individual and the universe. Therefore, the architecture of temples also serves as a mute instructor, bringing the viewer to the metaphysical meditations and experience of the relationship between a human being and a god.

- **The Terracotta art as a medium of visual pedagogy:**

Besides being an aesthetic value, Terracotta art proves to be an important cultural and pedagogical medium. Its popularity has fluctuated over time, as archaeology indicates, tending to unite religious and secular subjects. The knowledge contained in the visual text of Bengal; the temple terracotta panels served as a sort of visual text between the sixteenth and nineteenth centuries. These boards portray the stories of Ramayana, Mahabharata, Krisna-lĪlãs and Purãnic myths, with moral values, devotion, and philosophical knowledge in reachable formats. At the same time, they also describe the life of everyday life: agriculture, war, music, dance, and the Gurukula system and turn lived experience into an educational resource. In the case of mostly non-literate societies, this imagery allowed the internalization of values by observation. In such a manner, the art of terracotta can be viewed as an effective visual pedagogy in which the visual becomes the learning process and the walls of the temples become permanent memory storage of the collective memory, culture and the moral wisdom.

Contemporary Relevance of Ancient Educational Philosophy:

The holistic educational philosophy reflected in Bengal's temple architecture remains highly relevant in the modern age. In contrast to today's fragmented and exam-oriented systems, it emphasizes the unity of knowledge and the balanced development of body, mind, and spirit. These temples functioned as interdisciplinary spaces where architecture, sculpture, music, dance, and ritual coexisted, resembling contemporary integrative learning models. The terracotta panels demonstrate early forms of visual and experiential pedagogy, aligning with modern educational practices such as digital and museum-based learning. Additionally, the use of local materials and climate-responsive designs highlights principles of sustainability that resonate strongly with present-day environmental concerns. Beyond their structural and artistic value, these temples serve as repositories of cultural memory, reinforcing identity in a globalized world. They also promote ethical and spiritual values, offering guidance for creating a more meaningful, balanced, and human-centered approach to education today.

- **Educational Significance: An Evaluation:**

The architectural tradition of Bengal temples, especially the terracotta school is a rich interdisciplinary field extending past architectural design. These temples are pedagogical constructions, which architecturally exemplify indigenous shapes, such as chala, ratna, and jor-bangla, as an adaptation to local materials and climate-responsive methods. The complex terracotta panels sociologically record daily life, social organization, professions and cultural activities that give a great insight on the life of the communities in the past. Theological and philosophical

complexities In religious terms, the space within temples has profound symbolic significance, with the garbhagriha, iconography and rituality forming complex articulations of theological and philosophical concepts. When applied to the art history context, terracotta sculptures serve as visual archives showing the development of styles, the craftsmanship, and the cultural interactions throughout the time. Both together, the temple architecture of Bengal is a system of integrated knowledge, which allows critical examination of architecture, sociology, religion, and art history.

In this way, the temple building of Bengal can be seen as a combined epistemic system where materialism and cultural significance meet, and interdisciplinary research can foster a subtle, holistic and intellectually broad understanding of education.

References:

1. Gurugītã, Skandapurãna - 2
2. Śrīmadbhagavadgītã- 4/38
3. Iśopaniṣad -13
4. Hitopadeśa Prastãvikã- 6
5. Mahopaniṣad- 6/72
6. Taittirīya Upaniṣad, Śikṣāvallī (Section 1), Anuvāka 11

Bibliography:

1. Altekar, A. S. *Education in Ancient India*. Nand Kishore & Bros., 1944.
2. Basham, A. L. *The Wonder That Was India*. Rupa Publications, 2004.
3. Dwivedi, Shivaprasad. *Shrivishnupuranam*. Chaukhambha Surabharati Prakashana, 2024.
4. Gambhirananda, Swami. *Upanishad-Granthaavali (Khand–2)*. Udbodhan Karyalayah, 1380 (Bangabda).
5. Saha, Rajesh; Karmakar, Koushik & Chaudhuri, Debayan. *Revival of Indian Knowledge System (A Boost of Holistic Education).* Ekhan Dooars, 2025.
6. Shastri, Bala. *Hitopadeshah*. Chaukhambha Surabharati Prakashana, 2012.
7. Shastri, Keshavlal. *Shrimadbhagavadgītãś*. Chaukhambha Surabharati Prakashanaś, 2017.
8. Shastri, Rakesh. *Taittiriyopaniśad.* Chaukhamba Orientalia, 2024.
9. Singh, Sahana. *The Educational Heritage of Ancient India*. Notion Press, 2017.

Received: 22.01.2026 | Accepted: 03.02.2026 | Published: 28.02.2026

दामोदर खड़से के उपन्यासों में चित्रित नारी

प्रणिता नासरे* **डॉ. श्यामप्रकाश पाण्डे†**

सारांश:

यह शोध पत्र डॉ. दामोदर खड़से के चार उपन्यासों—'काला सूरज', 'भगदड़', 'बादल राग' और 'खिड़कियाँ'—में चित्रित नारी जीवन के विविध पक्षों का सारांश प्रस्तुत करता है। खड़से के उपन्यासों में नारी पत्नी, प्रेमिका, मित्र और स्वावलंबी व्यक्ति के रूप में दिखाई देती है। लेखक ने आधुनिक समय में पति-पत्नी, प्रेम, विवाहेतर संबंधों और मैत्री की बदलती सामाजिक स्वीकार्यता को यथार्थपरक रूप में उजागर किया है। 'काला सूरज' में अहंकार से विवाह टूटना, 'भगदड़' में भौतिकता से रिश्तों का खोखलापन, 'बादल राग' में मर्यादित प्रेम, और 'खिड़कियाँ' में एकाकी जीवन एवं विवाह अस्वीकार जैसे विषय शामिल हैं। निष्कर्षतः खड़से के उपन्यास आधुनिक समय में नारी-पुरुष संबंधों (प्रेम, मैत्री, विवाह, विवाहेतर संबंध) की जटिलताओं, अकेलेपन, भौतिकता और मर्यादाओं का यथार्थपरक एवं संवेदनशील चित्रण करते हैं।

बीज शब्द :

उपन्यास, नारी, प्रेम, विवाह, मैत्री संबंध, पति-पत्नी संबंध, विवाहेत्तर संबंध, भौतिकता, एकाकी जीवन आदि।

प्रस्तावना :

हिंदी के समकालीन रचनाकारों में डॉ. दामोदर खड़से का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। डॉ. दामोदर खड़से एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। इन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं यथा - उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, लघुकथा, परिकथा, आख्यान, आत्मकथा, जीवनी, पत्रलेखन, डायरी, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रावर्णन, रिर्पोताज आदि का लेखन कार्य किया है। अपने लेखन कार्य के माध्यम से हिंदी साहित्यकारों में इन्होंने अपना अलग और विशेष स्थान बनाया है। डॉ. दामोदर खड़से के उपन्यासों में नारी जीवन के विभिन्न पक्षों का सजीव और यथार्थ चित्रण हुआ है। जिन्हें डॉ. दामोदर खड़से के उपन्यासों - काला सूरज, भगदड़, बादल राग और खिड़कियाँ में देखा जा सकता है।

दामोदर खड़से के उपन्यासों में नारी जीवन का सजीव चित्रण दिखाई देता है। इनमें समाज में नारी के विभिन्न रूपों को देखा जा सकता है। आधुनिक समय में नारी के परंपरागत रूप में बदलाव आया है। नारी आज अलग-अलग भूमिकाओं का निर्वहन कर रही है। वह कहीं पुरुष के कदम से कदम मिलाकर चलती हुई दिखती है, तो कहीं स्वतंत्र रूप से स्वावलंबी नारी के रूप में दिखाइ देती है। नारी में आए इस बदलाव का प्रभाव उसके सामाजिक संबंधों और रिश्तों पर भी हुआ है।

समाज में पति-पत्नी संबंध को जो मान्यता मिली है, आज के आधुनिक समय में भी पुरुष और स्त्री के मैत्री-संबंध या प्रेम-संबंध को वह मान्यता नहीं मिल सकी है। फिर भी हम प्रेम के अलग-अलग रूपों को देखते हैं जिनमें पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, विवाहपूर्व प्रेम-संबंध, विवाहेत्तर प्रेम-संबंध, मैत्री-संबंध आदि शामिल हैं। प्रेम मनुष्य को प्राप्त एक महत्वपूर्ण और विशेष उपहार है। प्रेम मानव मन की सहज अनुभूति है जो नारी और पुरुष को एक जगह पर लाने का कार्य करती है और उनके संबंधों का विकास होता है। लेकिन, आज के इस भागदौड़ और प्रतिस्पर्धा में प्रेम-संबंध टूटते चले जा रहे हैं जिसके अनेकों कारण हैं।

* **शोध छात्रा, हिंदी विभाग, राष्ट्रसंत तुकड़ोजी महाराज नागपुर विद्यापीठ, नागपुर, महाराष्ट्र**

† **शोध निर्देशक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, आर्वी, वर्धा, महाराष्ट्र**

मनुष्य के मन में विद्यमान प्रेम सामाजिक संबंधों को संबल प्रदान करता है। प्रेम के कारण ही एक व्यक्ति के मन में दूसरे के लिए त्याग, समर्पण, कर्तव्य, अपनापन जैसी भावनाओं का विकास होता है। जबकि अहंकार, मोह, अज्ञान, अधिकार आदि दोनों को एक-दूसरे से दूर करने का काम करते हैं। दामोदर खड़से के उपन्यास 'काला सूरज' में भी कैलाश और रूपा पति-पत्नी की भूमिका में हैं, लेकिन उनके बीच का प्रेम समाप्त होता दिखाई देता है। उनमें प्रेम और मधुरता के स्थान पर कटुता आ जाती है। क्योंकि स्वाभिमानी कैलाश को अपने ससुर की प्रेस में काम करना पसंद नहीं आता है। इस कारण पति-पत्नी के बीच तनाव की स्थिति निर्माण होती है। परिणामस्वरूप, दोनों अलग हो जाते हैं। कैलाश के झूठे स्वाभिमान के कारण ही दोनों एकाकी जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इस संबंध में रूपा कैलाश को समझाती हुए कहती है, "मैंने अपने-आप को तुम्हारे प्यार में पाया। पिताजी की इच्छा न होते हुए भी तुमसे विवाह किया। कैलाश तुम यह मानते हो कि तुम्हारे दूर चले जाने पर मैं खुश हूँ। औरत के लिए संपत्ति ही सब कुछ दे सकती है।"[1]

आज के दौर में मनुष्य का मन अस्थिर और अशांत हो गया है। यही कारण है कि उसे जहाँ सुकून मिलता है, वहीं ठहर जाता है। जिसके फलस्वरूप अनेक सामाजिक संबंधों का जन्म होता है जिन्हें सामाजिक मान्यता नहीं मिल पाती। जिनमें विवाहेतर प्रेम-संबंध प्रमुख है। 'काला सूरज' उपन्यास में जब कैलाश रूपा से अलग हो जाता है, उसकी मुलाकात पामेला से होती है। पामेला आधुनिक विचारों वाली युवती है जो कैलाश को उसके असली रूप में स्वीकार करती है। उसके टूटे हुए और खंडित व्यक्तित्व को संबल प्रदान करती है। परिणाम स्वरूप दोनों के बीच मित्रता होती है और वे बिना शादी किये ही एक साथ रहने लगते है। पामेला कैलाश के बच्चे को जन्म भी देती है। वह कैलाश से कहती है, "शरीर सुख बांटने के बाद मैं तुम पर किसी तरह का दावा नहीं करूँगी। मैं सोच सकती हूँ तुम शादी शुदा हो।"[2]

मनुष्य के मन की कोमल भावनाएँ किसी का हल्का-सा स्नेह पाकर भी प्रफुलित हो उठती हैं। नारी और पुरुष के बीच प्रेम-संबंध की अनिवार्यता नहीं है। नारी और पुरुष के बीच मैत्री-संबंध बिना शारीरिक संबंधों के और मर्यादा के साथ भी आगे बढ़ सकता है। 'काला सूरज' उपन्यास की एक नारी पात्र है गीता जो कैलाश की क्लासमेट और मित्र है के मध्यम से दिखाई देती है। गीता विवाहित होकर भी कैलाश से मित्रता रखती है और हर कदम पर उसका साथ देती है। वह कैलाश से प्रेम भी करती है। लेकिन, कभी भी मित्रता की सीमा को पार नहीं करती है। लेखक कहते हैं, "कैलाश को इतना अवश्य अनुभव हुआ कि रिश्ते घटनाओं के बनते-बिगड़ते पुतले होते हैं। पर गीता वाला रिश्ता घटनाओं से परे था। प्रेम की ऐसी अनुभूति संचारित होने लगी जो जीवन की ओर निरंतर उन्मुख करती रहती।"[3]

उपन्यास के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. चेतना राजपूत लिखती हैं, " 'काला सूरज' दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है, एक – लेखक ने इसमें वर्तमान पत्रकारिता का यथार्थ उजागर करने का साहस किया है। दूसरा – मध्यवर्गीय पात्रों की त्रासदी, उनके दुख-दर्द, आकांक्षा-महत्वाकांक्षा, उन्नति-अवनति, आकर्षण-विकर्षण और राजनैतिक सापेक्षता बड़ी सहजता से उजागर की है।"[4]

आज के महानगरीय परिवेश की चकाचौंध और सब कुछ पा लेने की आकांक्षा ने मनुष्य की संवेदना को समाप्त का दिया है। जिसका असर परिवार और समाज पर हो रहा है। जिसे डॉ. दामोदर खड़से के 'भगदड़' उपन्यास में देखा जा सकता है। उपन्यास के नायक कृष्णा का विवाह महानगर मुंबई में पली-बढ़ी श्वेता से हो जाता है। श्वेता भौतिक संसाधनों को ही सब कुछ समझती है। उसे लगता है कि पति-पत्नी भी भौतिक संसाधन जुटाने और उसके उपभोग के लिए ही साथ रहते है। एक-दूसरे के दुख-दर्द और भावनाओं -संवेदनाओं से उनका कोई सरोकार नहीं है। लेखक कहते हैं, "श्वेता ने कुछ रकम का जुगाड़ किया और बैंक से लोन लेकर कृष्ण ने फ्लैट बुक कर लिया। उसके अगले पंद्रह वर्ष का भविष्य इन दो कमरों में गिरवी था। तरह-तरह के कर्ज से वह पूरी तरह घिर चुका था।"[5]

इसका परिणाम यह होता है कि कृष्णा और श्वेता की एक-दूसरे से अपेक्षा और उनके पूरी न होने पर तनाव के कारण दोनों के संबंधों में दरार आ जाती है। भूमंडलीकरण के कारण मानव जीवन में भौतिक साधनों की महत्ता ने आत्मीय संबंधों को खोखला कर दिया है। अपनी हैसियत से अधिक की आकांक्षा को पाने के चक्कर में दोनों पति-पत्नी ने अपने संबंधों को बिगाड़ लिया।

इस विषय में डॉ. चेतना राजपूत लिखती हैं, "यह उपन्यास मध्यवर्ग के महानगरीय जीवन की आपाधापी, कामकाजी पति-पत्नी की सुख-साधनों के सहारे सुखी जीवन व्यतीत करने की अमिट चाह, रिश्तों में लापरवाही और संबंध निबाहने की विवशता आदि को पूरी निष्ठा के साथ अभिव्यक्त करता है।"[6]

डॉ. दामोदर खड़से का 'बादल राग' उपन्यास भी स्त्री-पुरुष प्रेम-संबंधों से संबंधित है। उपन्यास का प्रमुख पात्र विकास है। वह एक बैंक में अधिकारी है। उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र सुनिधि विकास के साथ ही कार्य करती है। दोनों विवाहित हैं। बावजूद इसके, दोनों में प्रेम-संबंध स्थापित होता है। सुनिधि का विवाह उसकी मर्जी के खिलाफ एक बीमार और शराबी व्यक्ति नंदन से कर दिया जाता है। इस कारण उसे हमेशा यही लगता है कि उसका जीवन व्यर्थ ही चला जाएगा। दूसरी ओर, विकास है जिसकी पत्नी प्रीति और एक बेटी है। वह अपने पत्नी और बेटी के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित है और सुखमय जीवन जी रहा है।

बैंक में एक साथ काम करते हुए विकास और सुनिधि में प्रेम-संबंध बन जाता है। दोनों के बीच आत्मीय संबंध विकसित होते हैं। विकास हर काम में आगे-आगे रहता है। उसकी यही बात सुनिधि को अपनी ओर आकर्षित करती है। समय-समय पर विकास भी सुनिधि की मदद करता है। लेकिन, विकास अपनी पत्नी और बेटी के प्रति ईमानदार भी रहता है।

विकास और सुनिधि का प्रेम-संबंध देह से परे है। विकास एक संयमित व्यक्ति है। सुनिधि के प्रति उसके मन में भी आकर्षण है। सुनिधि की मौन सहमति होते हुए भी वह अपनी मर्यादा रेखा को कभी भी पार नहीं करता है और एक निश्चित दूरी बनाए रखता है। जबकि, सुनिधि उसे खुद को बच्चे के रूप में अपनी निशानी देने को कहती है। जिसके सहारे वह अपना अकेलापन काट सके। वह कहती है, "मैं अकेली जी लूंगी। शादी से मेरा मन खिन्न हो गया है। एक तमन्ना है जिंदगी में ... मुझे आपसे एक संतान चाहिए ..। बस।"[7] इस पर विकास कहता है, "मैं तुम्हारी इच्छाओं का आदर करता हूं, लेकिन मैं 'नाजायज' बच्चा इस संसार को नहीं दे सकता। प्रीति के साथ मानसिक अलगाव की बली-बेदी पर मैं गरिमा (बेटी) को नहीं चढ़ा सकता।"[8] सुनिधि विकास की दूसरी पत्नी बनने के लिए भी तैयार है। लेकिन, विकास इसके लिए तैयार नहीं होता है।

उपन्यास के संबंध में डॉ. सुनील देवधर कहते हैं, " 'बादल राग' सामाजिक सांस्कृतिक पहलू के साथ देह और मन के आयामों पर भी विचार करता है। मन के पार देह की जरूरतों और उसके परिणामों का भान भी उतना ही जरूरी है जिसे इस उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।"[9]

उपन्यास के बारे में प्रबोध कुमार गोविल लिखते हैं, "उपन्यास में सुनिधि और विकास के रिश्ते को पढ़ते हुए धर्मवीर भारती के चंदर और सुधा भी बार-बार याद आते रहे, जिनके रिश्ते को कोई नाम तो नहीं दिया जा सकता, लेकिन यह रिश्ता दुनिया साधने के अपने निरापद-प्रयत्न में आज भी प्रासंगिक और ग्राह्य है।"[10]

डॉ. दामोदर खड़से ने 'खिड़कियाँ' उपन्यास उपन्यास में निष्ठा और वैभव के माध्यम से वर्तमान समय में प्रचलित प्रेम-संबंधों और प्रेम-विवाह की स्वीकृति को उजागर किया है। निष्ठा और वैभव अमेरिका के परिवेश में एक-दूसरे से मिलते हैं। जाति से दोनों अलग होते हुए भी प्रेम-संबंध और फिर विवाह-संबंध में बंध जाते है। लेकिन, निष्ठा ने अपने सहयोगी वैभव पाटील से विवाह करने के संबंध में जब अपने पिता से कहा, तो वह चिंता में पड़ गए। इस बारे में लेखक कहते हैं, "निष्ठा बहुत गहराई से वैभव को चाहती है, यह बात अरुण प्रकाश से छिपी नहीं थी। वैसे पहली बार जब देखा था, तभी वह अच्छा लगा था, लेकिन विजातीय सम्बन्धों के बारे में वे अभी भी उतने खुले मन के नहीं थे।"[11]

आज समाज में स्थिति यह होती जा रही है कि व्यक्ति अकेला होता चला जा रहा है। अपने सुख-दुकलह बांटने वाला भी कोई नहीं है। सब अपनी जिंदगी में दौड़ लगा रहे हैं। ऐसी दौड़ जिसका अंत दिखाई ही नहीं दे रहा है। अनिश्चित और एकाकी दौड़ जिसमें वह अपनों को पीछे छोड़कर आगे तो जा रहा है, लेकिन वहाँ उसके अपने नहीं हैं। वह अकेलेपन का अनुभव कर रहा है। 'खिड़कियाँ' उपन्यास समाज में नारी और पुरुष के इसी एकाकी जीवन का चित्रण करता है। उपन्यास के नायक अरुण प्रकाश जो पत्नी के देहांत के बाद एकाकी जीवन जी रहे हैं उनकी मुलाकात साक्षी शर्मा नाम की महिला से होती है, वह भी एकाकी जीवन ही जी रही थी। उसके पति का देहांत हो चुका था। दोनों के बीच मुलाकातों का सिलसिला शुरू हुआ। एक-दूसरे के घर आजा-जाना हर जगह एक साथ दिखलाई देना। यह सब देखकर अरुण से जुड़े हुये लोगों को लगता है की, दोनों को विवाह कर लेना चाहिए। एक दिन अरुण प्रकाश के मित्र सूर्यकांत ने हिम्मत करके अरुण प्रकाश से कहा, "जीवन में, खासकर उतार अवस्था में एक साथी होना चाहिए। मुझे लगता है आप इस पर विचार कीजिए। उम्र के साथ जिन्दगी ख़त्म नहीं होती। जिन्दगी के साथ उम्र ख़त्म होती है । मेरा इशारा आप समझते हैं।"[12]

इस पर अरुण प्रकाश ने कहा, "मैं आपका इशारा खूब समझता हूँ। स्नेह और सम्मान एक बात होती है और विवाह बिलकुल अलग बात है। आप यदि ऐसा सोच रहे हैं तो बिलकुल असंभव है। साक्षी को मैं जानने लगा हूँ और मेरी ओर से यह कभी नहीं हो सकता ...!"[13] अरुण प्रकाश के कथनों से स्पष्ट होता है कि प्रेम-संबंध और विवाह संबंध में प्रेम का होना अनिवार्य तो है, किन्तु दोनों में काफी अंतर है।

इस उपन्यास के संबंध में डॉ. ओमप्रकाश शर्मा कहते हैं, "इस उपन्यास की विशेषता यह है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाज, देश-विदेश की सोच, वर्तमान राजनीति पर करारा भाष्य किया गया है।"[14]

निष्कर्ष

इस तरह डॉ. दामोदर खड़से के उपन्यासों में नारी जीवन के विविध रूप दिखाई देते हैं। कहीं वह पत्नी के रूप में मौजूद है तो कहीं मित्र के रूप में तो कहीं प्रेमिका के रूप में। स्त्री-पुरुष संबंधों का यथार्थ डॉ. दामोदर खड़से के उपन्यासों में दर्ज है। आधुनिक समय में मैत्री-संबंध, प्रेम-संबंध और पति-पत्नी संबंधों की सामाजिक स्थिति और स्त्री-पुरुष संबंधों की पड़ताल करने का महत्वपूर्ण कार्य डॉ. दामोदर खड़से ने अपने उपन्यासों के माध्यम से किया है।

संदर्भ :-

1. खड़से, डॉ. दामोदर. (1980). *काला सूरज*. नई दिल्ली : हिंदी साहित्य संसार. पृ. 37
2. खड़से, डॉ. दामोदर. (1980). *काला सूरज*. नई दिल्ली : हिंदी साहित्य संसार. पृ. 117
3. खड़से, डॉ. दामोदर. (1980). *काला सूरज*. नई दिल्ली : हिंदी साहित्य संसार. पृ. 48
4. देवधर, डॉ. सुनील.,श्रीवास्तव, डॉ. राजेन्द्र (सं.). (2021). *दामोदर खड़से : शब्दों की दहलीज पर (जीवनी)*. दिल्ली : भावना प्रकाशन. पृ. 134
5. खड़से, डॉ. दामोदर. (1996). *भगदड़*. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ. 58
6. देवधर, डॉ. सुनील.,श्रीवास्तव, डॉ. राजेन्द्र (सं.). (2021). *दामोदर खड़से : शब्दों की दहलीज पर (जीवनी)*. दिल्ली : भावना प्रकाशन. पृ. 137
7. खड़से, डॉ. दामोदर. (2023). बादल राग. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. 152
8. खड़से, डॉ. दामोदर. (2023). बादल राग. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. पृ.152
9. देवधर, डॉ. सुनील.,श्रीवास्तव, डॉ. राजेन्द्र (सं.). (2021). *दामोदर खड़से : शब्दों की दहलीज पर (जीवनी)*. पृ. 48
10. देवधर, डॉ. सुनील.,श्रीवास्तव, डॉ. राजेन्द्र (सं.). (2021). *दामोदर खड़से : शब्दों की दहलीज पर (जीवनी)*. पृ. 185
11. खड़से, डॉ. दामोदर. (2018). *खिड़कियाँ*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 26
12. खड़से, डॉ. दामोदर. (2018). *खिड़कियाँ*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 191
13. खड़से, डॉ. दामोदर. (2018). *खिड़कियाँ*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 191
14. देवधर, डॉ. सुनील.,श्रीवास्तव, डॉ. राजेन्द्र (सं.). (2021). *दामोदर खड़से : शब्दों की दहलीज पर (जीवनी)*. पृ. 237

Received: 24.01.2026 | Accepted: 08.02.2026 | Published: 28.02.2026

दृश्यकाव्य में समवकार

विवेकानंद*

vivekvipra03@gmail.com

सारांश:

समवकार एक प्रकार का रूपक है जिसमें देवता नायक या दानव भी हो सकते हैं। इसमें बारह नायक तथा तीन अंक होते हैं; जिसका प्रधान रस वीर या श्रृंगार तथा अन्य रस गौण होते हैं। दृश्यकाव्य में विभिन्न रसों एवं भावों का सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है। दृश्यकाव्य का एक ऐसा रूपक है जिसमें कथानक के साथ-साथ गीत-संगीत,नृत्य पर विशेष बल दिया जाता है। कथानक का समवकार में विशेष महत्व होता है। लोकनाट्य दृश्यकाव्य का सरल रूप है,जिसकी भाषा सरल-सहज स्थानीय नृत्य-संगीत एवं संवाद के माध्यम से लोक पौराणिक-ऐतिहासिक कथाओं एवं किवंदतियों को प्रस्तुत करने वाला कला संज्ञक है। यह किसी व्यक्ति विशेष नहीं बल्कि जन-समुदाय की कृति होती है जो पारम्परिक रूप से लोक-मनोरञ्जन का महत्वपूर्ण साधन रहा भी है, जिसमें निश्चित आलेख होने के बजाय कलाकार मौखिक परम्परा के आधार पर संवाद करते हैं। दृश्यकाव्य वह अद्वितीय साहित्य है जिसे आँखों से देखकर एवं कानों से सुनकर आनन्द की अनुभूति होती है,जिसका प्रमुख उदाहरण नाटक है। इसमें कथानक का अभिनय किया जाता है, दर्शक उसे देखकर रस का अनुभव करते हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध निबंधकार पण्डित बालकृष्णभट्ट ने 'संसार महानाट्यशाला' नामक निबन्ध में चराचरात्मक सृष्टि के सूत्रधार परमपिता परमेश्वर को 'नटराज एवं प्रकृति' को नटी मानते हुए जगत की नाट्यशाला अर्थात् रंगमंच के रूप में निरूपित किया है।[1] भगवान कपिल ने ही स्वप्रचलित एवं स्वप्रवर्तित सांख्य दर्शन में कहा है कि पुरुष के संयोग से प्रकृति में संक्षोभ उत्पन्न होने पर सत्व, रजस्, तमस् नामक गुण-संज्ञक प्राकृत रूप परमाणु सक्रिय होकर सृष्टि की प्रक्रिया आरम्भ करते हैं। आर्थवाणीश्रुति कहती है कि 'अहं ब्रम्हं स्वरूपिणी'। मत्तःप्रकृति पुरूषात्मकं जगत'।[2] प्रकृति के परा एवं अपरा दो रूप हैं। पारमार्थिक दृष्टि से तो प्रकृति 'अजा एवं एका' किन्तु लोहित-शुक्ल-कृष्णा है।[3] सांख्य कारिकाकार ईश्वरकृष्ण का निर्वचन है कि प्रकृति एवं पुरुष दोनों अजा एवं एक होते हुए भी परस्पर एक दूसरे के विरोधी रहते हैं फिर भी कोटिपूरक प्रतीत होते हैं। इसकी कथावस्तु पौराणिक या ऐतिहासिक होती है; इसमें भारतीय काशिकी वृत्तियों का प्रयोग होता है। रूपक के दस भेद होते हैं जिसमें नाटक, प्रकरण,भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, प्रहसन। दृश्यकाव्य में दृश्यात्मक वर्णन प्रमुख होते हैं, इसमें दृश्यात्मक,भावात्मक तथा साहित्यिक उपागमों को प्रमुख स्थान दिया जाता है।

बीजशब्द:

काव्यं यशसे अर्थकृते, परमरसात्मकं काव्यं, सत्यं ज्ञानमनन्तं,रसातम् रसतमं, सर्वमूलममूलं, मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ब्रम्ह्म सत्यं जगन्मिथ्या, व्यवहारविद्।

प्रस्तावना:

सांख्यदर्शन का पङ्गवबन्ध न्याय इस सम्बन्ध में विश्व प्रसिद्ध है। प्रकृति एवं पुरुष की अनादिता एवं उपादान तथा निमित्त कारणता के रहस्य का 'महाभारत सारसर्वस्व' तथा 'दर्शनप्रस्थानान्यतम्' गीता में परम वैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए कहा गया है— 'प्रकृर्तिं पुरूषं चैव विद्धयनादी उभावपि' अतः प्रकृति एवं पुरुष दोनों ही 'बीज-वृक्षवत्' अनादि है।[4] जबकि ऐसा न मानने पर अनवस्था अनिवार्य एवं आवश्यक होगी[5]। द्रष्टा, दृष्य, साक्षी की त्रिपुटी 'योगशास्त्र' की दृष्टि से 'सम्प्रज्ञात' समाधि पर्यन्त विद्यमान रहती है।[6] बौद्ध-दर्शन में इसको 'सबीज समाधि' की संज्ञा प्रदान की गयी है।[7] 'र्निबीज समाधि' या 'असम्प्रज्ञात समाधि' मन-मष्तिष्क की गुणातीतावस्था है।[8] यह समाधि की वह अवस्था है जब मन प्रकृति के गुणों (मलों) से

* **शोधार्थी, संस्कृत साहित्य विभाग, महाकौशल विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)**

सर्वथा पृथक अर्थात् शून्य की स्थित प्राप्त कर लेता है।[9] ऐसी स्थित में द्रष्टा-दृश्य एवं साक्षी अभिन्न हो जाया करते हैं उक्त अवस्था में विद्यमान जीव विधि-निषेधों से परे हो जाता है। 'निस्त्रैगुण्योभवार्जुन' सूत्र में इसी स्थित का श्रीकृष्ण ने उपदेश किया है।[10] श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास के पुत्र श्री शुकदेव समाधि में सदैव तल्लीन रहते थे। इस अवस्था का वर्णन करते हुए श्रीमद्भागवत में 'श्रीसूत' जो स्वयं श्री शुकदेव के सतीर्थ्य तथा पुराणेतिहास नामक वेदार्थवेदक 'पञ्चमवेद' के सहाध्यायी रहे।[11] कहा गया है—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुत्ये उत्तमश्लोक लीलया।

अध्यगान्महादख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः।।[12]

(श्रीमद्भागवत1.2.5)

वास्तव में अनाम, अरूप, अच्छेद्य, अवेद्य, अखण्ड, निर्वघ्राशेष परमतत्व की कूटस्थ नित्यता निर्विवाद है। 'आनन्दो व्रह्मोति व्यजानात्' 'आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रत्ययभिसंविशन्ति' 'विज्ञानमानन्दं व्रह्म' 'रसो वै सः' 'रसानाम् रसतमं'[13] इत्यादि तैत्तिरीयोपनिषद की श्रुतियाँ निरुपाधिक निर्विशेष आनन्द को परव्रह्म घोषित करती हैं, जो परमरस व्रह्मनन्द है, वही निरतिशय सत्वोद्रेक से ज्ञानानन्द की प्रतीति (अभिव्यक्ति) होती है, जो अशब्द है परन्तु शब्द से ही उसका वर्णन होता है, कवि उसी 'परम रसात्मक सत्यं ज्ञानमनन्तं'[14] व्रह्म का ही वर्णन करता है जिसका न कोई रूप एवं नाम भी नहीं है, उसका वर्णन 'सर्वात्मना मन्त्रव्राह्मणात्मक' वेद भी नहीं कर सकते हैं तो अन्य की क्या परिचर्चा की जाए।

शोध-प्रविधि:

प्रस्तुत आलेख में विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक शोध-प्रविधि का उपयोग कर निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाएँगे।

समवकार तीन अंकों का नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ है,जिसका बिषय देवताओं एवं असुरों के बीच वीरतापूर्ण संघर्षों का वर्णन प्राप्त होता है। यह रूपक नामक प्राचीन नाट्यशास्त्रीय शैली का भेद है; जो वीररस प्रधान होता है। इसकी कथावस्तु देवताओं एवं असुरों के बीच प्रसिद्ध युद्ध या संघर्ष जैसे अमृत-मंथन की कथा का रंगमंचीय वर्णन प्राप्त होता है। समवकार के सम्बंध में आचार्य वार्षगण्य ने चेतनानधिष्ठित प्रकृति को स्वतन्त्र सृष्टि का मूल कारण मानते हैं, उसी मत को नास्तिक बौद्धों ने कपिलाचार्य के नाम से प्रचार-प्रसार किया। आद्य भगवद्पाद ने प्रकृति कारणवाद को कपिलमत मानकर शारीरिक भाष्य में खण्डन किया। यह खण्डन वार्षगण्य का ही है, जो नास्तिक क्षणभंगुरवादी है जो बौद्धमत के अनुकूल चलता है। महामुनि स्वयं भगवदावतार एवं स्वयंभुव मनु की पुत्री देवहुति एवं महर्षि कर्दम के पुत्र थे। श्रीमद्भागवत् का कपिलोख्यान मननीय है। व्रह्मनन्द चराचर व्रम्हाण्ड में वाह्यभयन्तर सर्वत्र व्याप्त है। अतः 'चिति' सर्वव्यापिनीसत्ता, निरतिशयव्यापिनी है। अतिचेतनावादी 'जड़' को 'अनुद् बुद्ध चेतन' ही मानते हैं। जगत व्रह्म का विर्वत स्वरुप है, जो चित्तशक्ति का रमणीय विलास है। जड़ता आनन्द की पराकाष्ठा है। अतः रसानुभूति की पराकाष्ठा के अतिरिक्त जड़ की कोई स्वतन्त्र सत्ता ही नहीं है। रसावस्थपरमभाव ही स्थायी सत्ता होती है— 'रसावस्थःपरं भावःस्थायितां परिपद्यतेनु'।[15] व्रम्हानंद ही परमरमणीय है, वही समस्त प्राणिमात्र का प्रेमास्पद का करण भी होता है। 'व्रम्हानन्दं परमसुखदं' समस्त प्राकृत उपादान उसी के व्यञ्जक हैं। अप्राकृत आलौकिक आनन्द की अभिव्यक्ति का माध्यम प्राकृत हो सकता है। अतएव कर्मफलोपभोगार्थ जीव को योनि (जाति) आयु तथा भोग की निरंतर प्राप्ति होती है। रमणीय आचरणों से रमणीय तथा कयूप आचरणों से कयूप योनि (जाति) की उत्पत्ति हो सकती है, जिस प्रकार अवतारी विग्रह चिदानन्दमय ही होता है। कर्मफलभोगार्थ प्राप्त योनिज शरीर पृथिव्यादि पञ्च महाभूतात्मक एवं नश्वर होता है। अयोनिज शरीर भी जन्य होते हैं, परन्तु अवतार विग्रहजन्य नहीं होते हैं, इसलिए तिरोभाव ही श्रुत एवं स्मृत हैं। श्रुति का कथन है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया:,समानं वृक्षं परिषप्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वादवत्ति,अनश्रन् अन्योऽभि चकाशति।।[16]

उपर्युक्त मंत्र में स्पष्ट निर्देश है कि फलाकांक्षी जीव कर्मफलभोक्ता परतन्त्र है। फलप्रदाता तो स्वयं प्रकाशयुक्त परमात्मा है। जब पिण्डाभिमानी जीव जब कर्म में प्रवृत्त होता है तो फल ही उसके कर्म में प्रवृत्ति का कारण बनता है। 'प्रयोजनमनुदिश्य न मन्दोऽपि प्रकीर्तिता' किन्तु परमात्मा के कर्म में प्रवृत्ति का कारण 'करूणा' है। जीव शिव का परमप्रिय

अंश है। 'अंशों नानाव्यपदेशात्' ब्रम्हसूत्र का आनन्द भाष्य उक्त के सन्दर्भ में अवलोकनीय है। व्यष्टि एवं समष्टि पिण्डाभिमानी जीव एवं उन जीवों का प्रेरक,अन्तर्यामी ईश्वर तत्पिण्डाभिमानी जीवों के अन्तःकरणों में विद्यमान रहता है। तत् सृष्ट्वा तद्वानुप्रविशत् हृदेशेऽर्जुने तिष्ठति। गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस में सुस्पष्ट करते हुए कहते हैं कि—

ज्ञानअखण्ड एक सीतावर।उर प्रेरक रघुवंश बिभूषण।।[17]

चराचरात्मक जगत की महानाट्यशाला के सूत्रधार निर्गुण निराकार निर्विशेष अव्याकृत 'सत्' ही परमरस है। 'सदैव सोम्येदमग्र आसीद्रेक मेवाद्वितीयं' ऐसा भेदनिषेधिका श्रुति कहती है। 'नेनानास्ति किञ्चन' वही परमरसात्मक सदभिन्न चिदभिन्न व्रह्मनन्द चराचर जगत का सारसर्वस्व,समस्त प्राणिमात्र पर प्रेमास्पद 'आत्मा' सर्वोत्कृष्ट, सत्य, निरवधिक, महासमुद्र है उसी में सदानन्द तरंग शब्द और चिदानन्दमय तरंग अर्थ है। 'पश्य देवस्य, काव्यं न ममार न जीर्यति' श्रुतिदेव काव्य को अमर एवं नित्य घोषित करती है, उसके ध्वनि पर वर्ण एवं वाक्य अवयव हैं। यह अखण्ड महावाक्य के रुप में स्वनिष्ठ अखण्ड महावाक्यार्थ का व्यञ्जक है। अखण्ड महावाक्यार्थ ही जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है वहीं वस्तुतःरस है। उसी की ही सत्ता से जगत सत्य प्रतीत होता है। श्रीमद्भागवत के परमसत्य भगवान श्रीकृष्ण रासगोष्ठी के महानायक एवं चराचरात्मक जगत के सूत्रधार भी है, जैसा कि बृहदारण्यक श्रुति एवं श्रीमद्भगवतगीता भी कहती है। आस्तिक दृष्टि से भगवान विष्णु के दशावतारों के आधार पर दशरुपकों को रसाश्रयरुप माना जाता है, अस्तु दृश्यकाव्य ही अभिनेय है, क्योंकि नट में रसादि स्वरुपों का आरोप होता है, इसलिए कहा गया है— 'तद्रूपारोपात्तु रूपकम्'[18] दस प्रकार के रूपक संस्कृत-साहित्य में विद्यमान एवं विख्यात है,अट्ठाइस उपरूपकों को नाट्यशास्त्र में सामान्यतः परिभाषित करता है, जैसे—

नाटकमथ प्रकरणं भाण व्यायोगसमवकारडिमः।

ईहामृगाक वीथ्यःप्रहसनमिति रूपकाणि दशः।।[19]

इस प्रकार उपरूपक भी हैं—

नाटिका त्रोटयं गोष्ठी सट्टकं नाट्य रसात्मकं ।

प्रस्थानोल्लाप काव्यानि प्रकरणं रसात्मकं तथा।।

संल्लापर्वश्रीगदितं शिलायं च विणासिका।

दुर्गाल्लिका प्रकरणी दृल्लीशो भाणिकेति च।।[20]

समवकार दशविधि रूपकों में परिगणित है। समवकार पद का निर्वचन करते हुए आचार्य कृष्णमोहन ठक्कुर ने साहित्य दर्पण की लक्ष्मी टीका में लिखा है—

स्वकीर्यन्ते कविभि:र्निवध्यन्ते समवकारपूर्वकात् करोतिः।

अंकत्र्तरि च कारके संज्ञायाम् इति पाणिनी सूत्रेण छत्र् प्रत्ययः।।

समवकार को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथ जी कहते हैं कि—

वृत्तं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयं।

सन्धयो निर्विमर्शास्तु त्रयोऽजस्रतूचादि मे।।[21]

निष्कर्ष:

चराचर जगत की महानाट्यशास्त्र का सूत्रधार निर्गुण निराकार अव्याकृत 'सेतु' ही परमरस है। ध्वनि वाक्य एवं वर्ण अवयव है। यह स्वनिष्ठ अखण्ड महावाक्यार्थ का अभिव्यंजक है। दशरूपक में समवकार की स्वकीय विशेषता का निरूपण जिन आचार्यो ने किया है, उनमें आचार्य विश्वनाथ सर्वप्रमुख है। विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में दृश्यकाव्यों का विश्लेषण करते हुए समवकार की व्याख्या की है। समवकार वृत्तलोक विख्यात एवं मनोरंजनात्मक होना चाहिए, पुराणेतिहास इसके स्रोत के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'समुद्रमन्थनं' इसका सजीव उदाहरण है। यह एक भारतीय संस्कृत नाट्य का रूप है, जिसमें देवों-असुरों के कथा की अभिव्यंजना होती है।

संदर्भ :

1. साहित्य ज्योत्सना भाग-1, पृ. 26
2. सांख्य कारिका-1/1
3. देव्यापर्वशीर्ष द्वितीय संरकरण पृ. 28
4. श्रीमद्भगवतगीता- तृतीयोध्याय
5. मार्क्सवाद एवं रामराज्य– पृ. 8
6. श्रीमद्भागवतगीता-प्रथम स्कन्द पृ.28
7. विष्णु सहस्रनाम – पृ.18
8. दशरुपक-पृ.32
9. न्यायसिद्धान्त टीका- पृ. 49
10. श्वेतोपनिषद-पृ.54
11. काव्य प्रकाश- राजशेखर – पृ. 48
12. श्रीमद्भगवद्गीता-तृतीय अध्याय
13. न्यायदर्शन सांख्य का टीका- पृ.सं.42
14. तैतिरीयोपनिषद् – 3/4/8
15. रस सिद्धान्त संस्करण-द्वितीय पृ.49
16. राजशेखर कृत काव्यमीमांसा-पृ.28
17. गोस्वामी तुलसीदास, उत्तरकाण्ड
18. साहित्य दर्पण 6/3-4
19. साहित्य दर्पण 6/234
20. साहित्य दर्पण 6/234
21. साहित्य दर्पण 6/104

NOTES FOR AUTHORS

PADCHINHA: A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to padchinha@muditeducation.com some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within one month. As a general rule, Padchinha operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.5), an abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list and a word count on the front page (include all elements in the word count). Regular articles are restricted to an absolute maximum of 8,000 words, including all elements (title page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, Padchinha publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation and Email

(b) Abstract

(c) Main text

(d) List of references

(e) Biographical statement(s)

(f) Tables and figures in separate documents

(g) Notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.5.

The final manuscript should be submitted in MS Word for Windows.

4. Language

Padchinha is a Bilingual Journal, i.e. English and हिंदी. The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200-300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the actual content of the article, rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be written

in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order increasing the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table. Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral, and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure. Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference.

11. Biographical statement

The biosketch in Padchinha appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proofs will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (Corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.